हिन्दी

कामसूत्रम्

श्रीवात्स्यायनमुनिप्रणीत
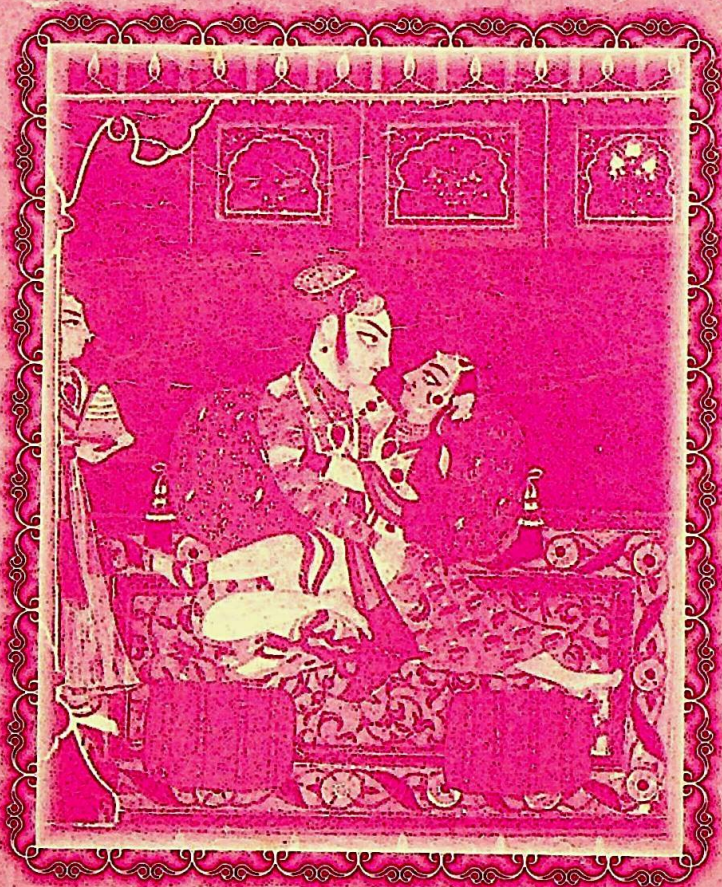
हिन्दीटीकाकार :

डॉ० रामानन्द शर्मा

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

॥ श्रीः ॥

बिट्ठलदास संस्कृत सीरीज

४

****

हिन्दी
कामसूत्र

श्रीवात्स्यायनमुनिप्रणीत

हिन्दीटीकाकार :

डॉ० रामानन्द शर्मा

एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत)

पी-एच० डी०, डी० लिट् (लब्धस्वर्णपदक)

रीडर, हिन्दी विभाग, हिन्दू कालेज, मुरादाबाद

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, सन् २००१
मूल्य : रु० १००.००

ISBN : 81-218-0085-4

पोस्ट बॉक्स नं० ११९८
के. ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास, वाराणसी–२२१ ००१ (भारत)
फोन : ३३५०२०
e-mail : cssoffice@satyam.net.in

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक
पोस्ट बॉक्स नं० १००८, के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१ ००१ (भारत)
फोन : ३३३४५८ (आफिस), ३३४०३२ एवं ३३५०२० (आवास)

BITTHALDAS SANSKRIT SERIES

4

*****

HINDI

KĀMASŪTRAM

OF

SRI VATSYAYANA MUNI

Hindi Commentary By

Dr. Ramanand Sharma

M. A. (Hindi-Sanskrit)

Ph-D., D. Litt. (Gold Medalist)

Reader, Hindi Deptt., Hindu College, Moradabad

KRISHNADAS ACADEMY

VARANASI

आत्मकथ्य

परम्परा से माना जाता है कि प्रजापति ब्रह्मा ने मानवजीवन को नियमित और व्यवस्थित बनाने के उद्देश्य से, त्रिवर्ग के साधनभूत, एक लाख अध्यायों वाले एक शास्त्र का प्रवचन किया था। इस सुविशाल संविधान के सहारे से मनु ने 'मनुस्मृति' की रचना की, बृहस्पति ने बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र की रचना की और महादेव के अनुचर नंदी या नन्दिकेश्वर ने कामविषयक अंश को पृथक् कर कामसूत्र की रचना की। इन तीनों आचार्यों ने वस्तुत: उस संविधान का पृथक्करण किया जिससे उनकी रचनाएँ भिन्न नामों से प्रचलित हुईं।

नन्दिकेश्वर के कामसूत्र में एक सहस्र अध्याय थे। उद्दालक के पुत्र **श्वेतकेतु** ने पाँच सौ अध्यायों में उसका संक्षेप किया। इसके पश्चात् पांचालनिवासी **आचार्य बाभ्रव्य** ने इस शास्त्र को साधारण, साम्प्रयोगिक, कन्यासम्प्रयुक्तक, भार्याधिकारिक, पारदारिक, वैशिक और औपनिषदिक—इन सात अधिकरणों में विभक्त कर, एक सौ पचास अध्यायों में उसका संक्षेप किया।

नन्दिकेश्वर से लेकर बाभ्रव्य तक कामशास्त्र एक अखण्ड परम्परा के रूप में विकसित हुआ, किन्तु बाभ्रव्य द्वारा अधिकरणों में विभक्त कर देने और अधिकरणविशेष की अधिक माँग होने पर परवर्ती आचार्यों ने एक एक अधिकरण को लेकर स्वतन्त्र चिन्तन-मनन प्रारम्भ किया और उन पर स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना होने लगी।

पटना की वेश्याओं के अनुरोध पर आचार्य दत्तक ने वैशिक भाग का स्वतन्त्र सम्पादन किया। तदनन्तर चारायण ने साधारण को, आचार्य सुवर्णनाभ ने साम्प्रयोगिक को, आचार्य घोटकमुख ने कन्यासम्प्रयुक्तक को, आचार्य गोनर्दीय ने भार्याधिकारिक को, आचार्य गोणिकापुत्र ने पारदारिक को और आचार्य कुचुमार ने औपनिषदिक को बाभ्रव्य के शास्त्र से पृथक् कर उसका स्वतन्त्र विकास एवं सम्पादन किया। इन खण्डग्रन्थों में अलग अलग वर्गों की रुचि होना स्वाभाविक थी। उदाहरणार्थ, वेश्याओं को वैशिक से ही प्रयोजन था, तो नवविवाहित दम्पति साम्प्रयोगिक में विशेष रुचि लेते थे। उच्छृंखल और निर्मर्याद पुरुषों के लिए पारदारिक ही सर्वस्व था, तो मंगेतर कन्यासम्प्रयुक्तक को ही महत्त्व देते थे। इस प्रकार बाभ्रव्य का शास्त्र अत्यधिक विशाल होने के कारण उपादेय नहीं था और अन्य खण्डग्रन्थों में विषय का सांगोपांग विवेचन उपलब्ध नहीं था, अत: महर्षि वात्स्यायन ने समाज की आवश्यकता को ध्यान में रखकर संक्षिप्त एवं पूर्ण शास्त्र की रचना का प्रयास किया। इसे उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है : 'सर्वमर्थमल्पेन ग्रन्थेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम्।' (१.१.१४)

'कामसूत्र' : विषयवस्तु

इस 'कामसूत्र' की रचना अधिकरणों में हुई है। प्रत्येक अधिकरण अनेक अध्यायों

में विभक्त हुआ है और प्रत्येक अध्याय में एक या अनेक प्रकरण संगृहीत किये गये हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण 'कामसूत्र' में ७ अधिकरण, ३६ अध्याय, ६४ प्रकरण और १२५० सूत्र या श्लोक हैं। 'कामसूत्र' मूलतः सूत्रों में रचा गया था, किन्तु वात्स्यायन ने कुछ श्लोकों की रचना भी की है और कुछ आनुवंश्य श्लोक उद्धृत भी किये हैं।

प्रथम अधिकरण का नाम **साधारण** है जो पाँच अध्यायों में विभक्त है, और एक एक अध्याय में एक एक प्रकरण ही लिया गया है। यह अधिकरण कामशास्त्र की पीठिका या प्रारम्भिका ही है। इसमें कामशास्त्र की परम्परा, त्रिवर्गप्रतिपत्ति, चौंसठ कलाएँ, नागरकवृत्त और नायक-नायिका भेद आदि विषय संगृहीत किये गये हैं।

द्वितीय अधिकरण में सम्प्रयोग विषय बनाया गया है। इस अधिकरण में दस अध्याय और सत्रह प्रकरण हैं। सम्प्रयोग का अर्थ है सम्भोग या समागम। इसमें आलिंगन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत, संवेशन, प्रहणन, सीत्कार आदि की विवेचना करते हुए सफल एवं सानन्द सम्भोग की समुचित व्याख्या की गयी है। शास्त्रकार के मतानुसार सफल एवं सानन्द सम्भोग ही दाम्पत्य जीवन की सफलता का रहस्य है।

तृतीय अधिकरण 'कन्यासम्प्रयुक्तक' है। इस अधिकरण में पाँच अध्याय और प्रकरण हैं। विवाह के लिए कैसी कन्या का चयन किया जाये? चयनित कन्या को किस प्रकार अनुरक्त कर विवाह-बन्धन में बाँधा जाये? विवाहित पत्नी में किस प्रकार विश्वास उत्पन्न कर दाम्पत्य जीवन प्रारम्भ किया जाये? — इन प्रश्नों का सुन्दर विश्लेषण इस अधिकरण में किया गया है। इस अधिकरण में उन कन्याओं और पुरुषों का भी मार्गदर्शन किया गया है ज़िनका विवाह नहीं हो पा रहा है।

चतुर्थ अधिकरण 'भार्याधिकारिक' है। इसमें दो अध्याय और आठ प्रकरण हैं। विवाहसूत्र में बँधकर कन्या या नवविवाहिता पत्नी भार्या कहलाती है। यह एकचारिणी और सपत्नी—दो प्रकार की हो सकती है। इसमें पति का पत्नी के प्रति और पत्नी का पति एवं सपत्नी के प्रति समुचित व्यवहार दिखाया गया है।

पञ्चम अधिकरण 'पारदारिक' है। इससें छह अध्याय और दस प्रकरण हैं। इस अधिकरण में परस्त्री और परपुरुष के प्रेमसम्बन्धों की गहन विवेचना की गयी है। शास्त्रकार का मत है कि इस अधिकरण का प्रयोजन विट लोगों से अपनी स्त्रियों की रक्षा करना है, किसी शीलसम्पन्न स्त्री को पतित बनाना नहीं।

षष्ठ अधिकरण 'वैशिक' है। इसमें छह अध्याय और बारह प्रकरण हैं। इसमें वेश्याओं के चरित्र, अर्थप्राप्ति के उपाय, विरक्त नायक को मिलाने के उपाय, लाभविशेष आदि की चर्चा है। महर्षि वात्स्यायन ने अधिकरण के प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर दिया है कि इसमें कथित योगों के प्रयोग का अधिकार वेश्या को है, वैशिक नायक को नहीं। वस्तुतः यह अधिकरण वेश्याओं का मार्गदर्शन करने के लिए ही लिखा गया है, किन्तु

आनुषंगिक रूप से यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि वेश्यावृत्ति भयंकर दुर्व्यसन है जिससे अर्थ और शरीर, दोनों की हानि होती है। वास्तव में इस अधिकरण में एक अध्याय वैशिक नायक के दिग्दर्शन के लिए भी होना चाहिए था, क्योंकि वैशिक नायक समाज का अंग है।

सप्तम एवं अन्तिम अधिकरण 'औपनिषदिक' है। इसमें दो अध्याय और छह प्रकरण है। वस्तुतः यह 'कामसूत्र' का अंग न होकर, उसका परिशिष्ट मात्र है। इसके प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि पूर्वकथित रीति से नायिका या सफल सम्भोग प्राप्त न हो, तभी इस अधिकरण में बताये गये योगों का प्रयोग करना चाहिये।

इसमें रूपलावण्य को बढ़ाने के उपाय, वशीकरण और बाजीकरण के योग, नष्टराग को पुनरुज्जीवित करने के उपाय, कृत्रिम साधन आदि के उपयोगों को बताया गया है, किन्तु अन्त में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि अपवित्र एवं निन्दित योगों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

'कामसूत्र' का रचनाकार :

परम्परा से प्रसिद्ध है कि मगधसम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के महामन्त्री महामति चाणक्य ने कौटिल्य नाम से 'अर्थशास्त्र', चाणक्य नाम से 'नीतिशास्त्र' और वात्स्यायन नाम से 'कामसूत्र' तथा न्यायभाष्य की रचना की। 'अर्थशास्त्र' के रचयिता कौटल्य चन्द्रगुप्त के महामन्त्री चाणक्य ही हैं—यह 'अर्थशास्त्र' के निम्न श्लोक से स्पष्ट है—

"येन शस्त्रं च शास्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥"

कामन्दकीय नीतिसार के निम्न श्लोकों से स्पष्ट है कि नीतिशास्त्र के रचयिता भी अर्थशास्त्रकार से अभिन्न हैं—

"यस्याभिचारवज्रेण वज्रज्वलनतेजसः।
पपात मूलतः श्रीमान् सुपर्वानन्दपर्वतः॥

एकाकी मन्त्रशक्त्या यः शक्तः शक्तिधरोपमः।
आजहार नृचन्द्राय चन्द्रगुप्ताय मेदिनीम्॥

नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्रे महोदधेः।
य उद्दध्रे नमस्तस्यै विष्णुगुप्ताय वेधसे"॥

स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्य और नीतिशास्त्र के रचयिता चाणक्य परस्पर अभिन्न हैं, और मगध साम्राज्य के महामन्त्री चाणक्य ही हैं।

'अर्थशास्त्र' और 'कामसूत्र' की रचनाशैली में अत्यधिक साम्य है और कहना न होगा कि कामसूत्रकार ने 'अर्थशास्त्र' की रचनापद्धति का पर्याप्त अनुकरण किया है। इस साम्य को कई रूपों में देखा जा सकता है :

(१) दोनों ही ग्रन्थ अधिकरण, अध्याय और प्रकरणों में विभक्त हैं। (२) दोनों ही ग्रन्थों में अपने मत की पुष्टि के लिए आनुवंश्य श्लोक—प्राचीन प्रचलित श्लोक—उद्धृत किये गये हैं। (३) दोनों ही ग्रन्थों में परिशिष्ट रूप में औपनिषदिक प्रकरण रखा गया है जिसमें कथित अभद्र एवं निन्द्य योगों को आपद्धर्म के रूप में ही अपनाने का निर्देश दिया गया है और (४) दोनों ही ग्रन्थों में प्राचीन आचार्यों के मतों का दिग्दर्शन कराते हुए 'इति कौटिल्यः' या 'इति वात्स्यायनः' कहकर स्वमत की स्थापना की गयी है।

किन्तु इसी आधार पर अर्थशास्त्रकार और कामसूत्रकार को अभिन्न मान लेना उचित नहीं है। वस्तुतः 'कामसूत्र' 'अर्थशास्त्र' की अपेक्षा परवर्ती ग्रन्थ है और उसमें शैली का अनुकरण भले ही किया गया हो, लेकिन कई मौलिक अन्तर भी हैं। उदाहरणार्थ, अर्थशास्त्रकार सर्वत्र निर्मम दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे 'इति कौटिल्यः' ही नहीं लिखते, बल्कि, 'नेति कौटिल्यः' कहकर अपनी असहमति भी प्रकट कर देते हैं। अपनी व्यवस्था के प्रति असन्तोष या उसका उल्लंघन उन्हें स्वीकार्य नहीं है, जबकि वात्स्यायन उदार और लचीला दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे 'इति वात्स्यायनः' तो लिखते हैं, किन्तु 'नेति वात्स्यायनः' लिखने का साहस नहीं बटोर पाते। वे अनेक पूर्व मान्यताओं का उल्लेखमात्र करके छोड़ देते हैं, न उसका समर्थन करते हैं और न विरोध ही। अनेक अभद्र एवं अशिष्ट देशगत प्रवृत्तियों को उस देश में ही स्वीकार्य मान लेते हैं। वस्तुतः उनमें अर्थशास्त्रकार-सदृश निर्मम एवं दृढ़ निषेध या विरोध का स्वर नहीं मिलता। दोनों ग्रन्थों की भौगोलिक एवं सामाजिक स्थिति में भी भिन्नता है, आचार-विचार और मान्यताएँ भी किञ्चित् परिवर्तित हैं, दोनों के नागरक भी कुछ विभिन्नता रखते हैं।

सारतः कौटिल्य और वात्स्यायन को अभिन्न मानना तर्कसंगत नहीं है। वस्तुतः वात्स्यायन परवर्ती हैं और उन ने कौटल्य की रचनाशैली का अनुकरण नहीं किया है।

विद्वानों का मत है कि कामसूत्रकार वात्स्यायन और न्यायभाष्यकर्ता वात्स्यायन एक ही हैं।

वात्स्यायन का स्थितिकाल : कुछ विद्वानों ने उन्हें ईस्वी प्रथम शताब्दी का माना है तो कुछ तीसरी और चौथी शताब्दी का स्वीकार करते हैं। 'नाट्यशास्त्र' में 'कामसूत्र' का शब्दशः उल्लेख और कालिदास के नाटकों पर इसका प्रभाव देखकर वात्स्यायन को इन से पूर्ववर्ती ईस्वी शताब्दी का ही मानना उचित होगा, परवर्ती नहीं।

काल और नामविषयक विवादों पर अभी गहन अनुसन्धान की आवश्यकता है।

'कामसूत्र' का प्रयोजन :

महर्षि वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में धर्म, अर्थ और काम—तीनों की समन्वित व्याख्या की है। उनका स्पष्ट मत है कि धर्म संसार का नियामक है, इसलिये उसे प्रथम स्थान देना चाहिये। धर्म के अविरुद्ध ही अर्थार्जन करना चाहिये और जब अर्थार्जन करने लगे तो

धर्माविरुद्ध काम का सेवन करना चाहिये। जब ये तीनों ही पुरुषार्थ हैं, तो इनमें पौर्वापर्य की भावना क्यों? यही भारतीय संस्कृति की उच्चता, उदात्तता और पावनता है कि वह धर्म के विरुद्ध अर्थार्जन या कामसेवन की अनुमति नहीं देती। यद्यपि 'कामसूत्र' मुख्यतः कामतत्त्व का ही प्रतिपादन करता है, लेकिन धर्म को प्रतिबन्ध के रूप में स्वीकारता है और उसके विरुद्ध जाने—उच्छृंखल आचरण या निर्मर्याद कार्य करने—की अनुमति नहीं देता।

महर्षि वात्स्यायन सम्भोग का वास्तविक आनन्द स्त्री और पुरुष के सफल एवं सानन्द मिलने में स्वीकारते हैं जिससे दोनों में परस्पर स्नेह एवं श्रद्धा का विकास हो। रतिसुख सम्भोग का तात्कालिक उद्देश्य अवश्य है, लेकिन उसका दूरगामी प्रयोजन जीवनसहचर के प्रति उच्च एवं उदात्त भाव, सात्त्विक भावों का विकास और सन्तानोत्पत्ति ही है। सफल एवं सानन्द सम्भोग से ही स्त्री-पुरुष में परस्पर अन्तरङ्गता एवं आत्मीयता का विकास होता है, नैतिकता उत्पन्न होती है जो पारस्परिक कलह, सम्बन्ध-विच्छेद, प्रच्छन्न सम्बन्ध, अवैध सन्तति, वेश्यावृत्ति, परनारीगमन, अप्राकृतिक व्यभिचार आदि असंख्य दोषों से गृहस्थ को बचाती है और उसकी गृहस्थी को स्वर्गोपम बनाती है।

वस्तुतः 'कामसूत्र' में महर्षि वात्स्यायन का उद्देश्य स्त्री एवं पुरुष की अनर्गल एवं उच्छृङ्खल पाशविक प्रवृत्तियों को नियन्त्रित कर उनमें उच्चता, उदात्तता एवं पवित्रता की भावना उत्पन्न करना एवं उन्हें सभ्य एवं संस्कृत नागरिक बनकर गृहस्थजीवन को सुखी एवं सानन्द बनाते हुए विश्वकल्याण का मार्ग प्रशस्त करना ही है।

आदान-प्रदान :

महर्षि वात्स्यायन ने ग्रन्थ के अन्त में (७।२।५२।५६) स्पष्ट कर दिया है कि उन्होंने पूर्ववर्ती शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन और उनके प्रयोगों का परीक्षण करके ही संक्षेप में इस शास्त्र का निर्माण किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने आचार्य **बाभ्रव्य** का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। ग्रन्थ के आन्तरिक परीक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने आचार्य बाभ्रव्य और **श्वेतकेतु** के अखण्ड ग्रन्थों का ही नहीं, **सुवर्णनाभ, चारायण, गोनर्दीय, गोणिकापुत्र** आदि आचार्यों के खण्डग्रन्थों का भी सम्यक् अध्ययन किया है और अनेक स्थलों पर उनके मतों को उद्धृत किया है। आज ये पूर्ववर्ती ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते, जबकि महर्षि वात्स्यायन का ग्रन्थ संसारभर में प्रख्यात है। इसका एक प्रमुख कारण कदाचित् यह भी है कि महर्षि वात्स्यायन के संक्षिप्त एवं सारपूर्ण विश्लेषण के समक्ष ये पूर्ववर्ती ग्रन्थ महत्त्वहीन हो गये हों।

महर्षि वात्स्यायन ने जहाँ पूर्ववर्ती ग्रंथों को महत्त्वहीन बना दिया, वहीं परवर्ती परम्परा को भी प्रेरित एवं प्रभावित किया है। परवर्ती ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। कोक्कोक रचित 'रतिरहस्य' जो 'कामसूत्र' के साम्प्रयोगिक, पारदारिक, भार्याधिकारिक और औपनिषदिक—इन चार अधिकरणों को उपजीव्य बनाकर लिखा गया है। कोक्कोक ने न केवल उपजीव्य में वात्स्यायन का सश्रद्ध स्मरण किया है, बल्कि उनके लिये प्रायः मुनि

या मुनीन्द्र शब्द का प्रयोग किया है और उनके मत को मुनिमत या मुनिगिरा भी कहा है। परवर्ती आचार्यों ने 'रतिरहस्य' के मार्ग का ही अवलम्बन किया है और बौद्धभिक्षुक श्रीपद्मश्री रचित 'नागरसर्वस्व' कल्याणमल्ल कृत 'अनङ्गरङ्ग', ज्योतिरीश्वर कृत 'पञ्चसायक' आदि ग्रन्थों में प्राय: ये ही विषय लिखे गये हैं।

कहने का आशय यह है कि 'कामसूत्र' ऐसा असाधारण ग्रन्थ है जो अपनी गुरुता एवं गम्भीरता से न केवल पूर्ववर्ती ग्रन्थों को आभाविहीन कर देता है, अपितु परवर्ती ग्रन्थों को भी गौरवान्वित नहीं होने देता। यह सहस्रों वर्षों से आज तक सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत मानवजाति के हृदय पर अधिकार किये हुए हैं।

हमने इस कामसूत्र का, जयमङ्गला संस्कृत टीका के साथ, विस्तृत हिन्दी अनुवाद भी किया है। आवश्यकता पड़ने पर, पाठकगण उसका उपयोग भी कर सकते हैं।

कृष्णदास अकादमी के नियामक श्रीकमलेशकुमारजी गुप्त और चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस के संचालक श्रद्धेय श्री ब्रजमोहनदास जी गुप्त ने विशेष रुचि लेकर इस ग्रन्थ को अल्पावधि में प्रकाशित कर जनताजनार्दन तक पहुँचाया है, अतएव वे आभार के पात्र हैं। मैं उनकी नित्य नवीन उन्नति की कामना करता हूँ।

विनीत—

रामानन्द शर्मा
रीडर हिन्दी विभाग
हिन्दू कालेज, मुरादाबाद-२४४ ००१

कामसूत्र की
विषयानुक्रमणिका

२. साम्प्रयोगिक द्वितीय अधिकरण

३. कन्यासम्प्रयुक्तक तृतीय अधिकरण

मिथुनदर्शन, जलक्रीड़ा में अभिप्रायज्ञापन, नवपत्रिका में अभिप्रायज्ञापन, दुःखनिवेदन, स्वप्नकथन, बहाने से अङ्गस्पर्श, चरणपीड़न, अंगुलिस्पर्श, आन्तरिक एवं बाह्य उपाय, अभिज्ञान, प्रेमपूर्ण छेड़छाड़, भावनिवेदन, वाणी से कहने की रीति, आभ्यन्तर उपाय, गृह आमन्त्रण, उपचारों का प्रयोग, इस प्रपञ्च का उद्देश्य, आचार्य घोटकमुख का मत, समागमकाल, वात्स्यायन की व्यवस्था।

प्रयोज्योपावर्तनप्रकरण—विवाह न हो पाने के कारण, धर्मशास्त्र द्वारा कन्या को स्वयं विवाह करने की अनुमति, समान पति चुनने के उपाय, वर में दर्शनीय गुण, माता का कर्तव्य, बाह्य उपचार, सम्भोग के लिये पहल घातक, नायक के प्रयासों को स्वीकृति, आभ्यन्तर उपचार, महत्त्वपूर्ण परामर्श।

एकप्रतिपत्तिप्रकरण—सुखों का आश्रय, अनुकूल और वश्य, अर्थलिप्सा, विशेष महत्त्वपूर्ण, एकनिष्ठ ही वरणीय, धनवान् की पत्नी बनने में दोष, नीच, वृद्ध एवं प्रवासी वरणीय नहीं, बलात्कारी, कपटी और जुआरी अवरणीय, अवरणीयों में अनुरागशील ही उत्तम।

पञ्चम अध्याय १०१–१०५

विवाहयोगप्रकरण—कन्यासिद्धि की विधि, निसृष्टार्था दूती के कार्य, अन्य प्रतिद्वन्द्वियों में दोषदर्शन, अभिभावकों की भर्त्सना, स्वयंवरण के उदाहरण, नायक की प्रशंसा, विधिवत् विवाह आवश्यक, गुप्त रूप से दूषित कर विवाह, इससे गान्धर्व ही उत्तम, मध्यस्थों के माध्यम से गुप्त विवाह, माता की सहमति से गुप्त विवाह, भाई की सहमति से गुप्त विवाह, पैशाच विवाह, एकाकी को दूषित कर प्राप्त करना, राक्षस विवाह, उत्कृष्टता का विचार, गान्धर्व विवाह की श्रेष्ठता।

४. भार्याधिकारिक चतुर्थ अधिकरण

प्रथम अध्याय १०६–११२

एकचारिणीवृत्तप्रकरण—सामंजस्य आवश्यक, घर की स्वच्छता और पूजाकार्य, पंच महायज्ञ, आचार्य गोनर्दीय का मत, गुरुजन का सम्मान, गृहवाटिका की व्यवस्था, त्याज्य स्त्रियाँ, भोजन की व्यवस्था, पति का स्वागत, पादप्रक्षालन, अलंकृत दिखे, पति के मान-सम्मान का ध्यान, बहिर्गमन के लिये अनुमति, उत्सवों में सम्मिलित होने के लिये अनुमति, सोना और जागना, पाकशाला, पति के अपराध करने पर भी अकलुषित रहना, जादू-टोनों से दूर, आचार्य गोनर्दीय का मत, वर्जित कृत्य, शरीरसंस्कार और शृंगार, समागम का वेश, गोष्ठीविहार का वेश, व्रतोपवास, समयानुसार क्रय, उपयोगी सामग्री का संग्रह, गोपनीयता को अक्षुण्ण रखना, समानता वाली स्त्रियों का अतिक्रमण, आय के अनुरूप ही व्यय, व्यवस्था-विषयक निर्देश, वात्स्यायन द्वारा गृहिणियों के कार्य का सारसंक्षेप, पुरातन वस्त्रों का उपयोग, पेय की व्यवस्था, पति के मित्रों से व्यवहार, सास-श्वसुर से व्यवहार, परिजनों के साथ व्यवहार।

६. वैशिक षष्ठ अधिकरण

७. औपनिषदिक नामक सप्तम अधिकरण

॥ श्रीः ॥

वात्स्यायन-कामसूत्र

१.

साधारण नामक प्रथम अधिकरण

प्रथम अध्याय

शास्त्रसंग्रह

धर्मार्थकामेभ्यो नमः ॥ १ ॥

मङ्गलाचरण—धर्म, अर्थ और काम को नमस्कार है ॥ १ ॥

शास्त्रे प्रकृतत्वात् ॥ २ ॥

(क्योंकि) इस शास्त्र में मूलतः धर्म, अर्थ और काम का ही उपदेश किया गया है, अतएव उन्हें ही नमस्कार किया गया ॥ २ ॥

तत्समयावबोधकेभ्यश्चाचार्येभ्यः ॥ ३ ॥

और जिन आचार्यों ने धर्म, अर्थ और कामशास्त्र के तत्त्व को समझाने के लिये तद्विषयक ग्रन्थ लिखे हैं, उन्हें भी नमस्कार है ॥ ३ ॥

तत्सम्बन्धात् ॥ ४ ॥ इति ॥

त्रिवर्ग से सम्बद्ध ग्रन्थों की रचना करने वाले आचार्यों को नमस्कार करने का कारण यह है कि उन के ग्रन्थों से संग्रह कर इस 'कामसूत्र' की रचना कर रहे हैं, अतएव उपजीव्य ग्रन्थों के रचयिताओं के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन भी आवश्यक है ॥ ४ ॥

प्रजापतिर्हि प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच ॥ ५ ॥

कामशास्त्र की प्राचीनता—प्रजापति ने प्रजाओं की सृष्टि कर त्रिवर्ग के साधनभूत शास्त्र का, जो उनकी स्थिति का कारण या व्यवस्थित जीवन का संविधान है, एक लाख अध्यायों में प्रवचन किया था ॥ ५ ॥

तस्यैकदेशिकं मनुः स्वायम्भुवो धर्माधिकारिकं पृथक् चकार ॥ ६ ॥

प्रजापति ब्रह्मा द्वारा रचित उस शास्त्र के धर्मशास्त्रविषयक अंश को स्वयंभू के पुत्र मनु ने पृथक् कर लिया ॥ ६ ॥

बृहस्पतिरर्थाधिकारिकम् ॥ ७ ॥

बृहस्पति ने अर्थशास्त्रविषयक अंश को पृथक् किया ॥ ७ ॥

महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक् कामसूत्रं प्रोवाच ॥ ८ ॥

कामशास्त्र की परम्परा—महादेव के अनुचर नन्दी ने प्रजापति ब्रह्मा के उस शास्त्र से

एक सहस्र अध्याय वाले कामसूत्र को पृथक् कर कहा, अर्थात् एक सहस्र अध्यायों में उसका स्वतन्त्र एवं विशद विवेचन किया॥ ८॥

तदेव तु पञ्चभिरध्यायशतैरौद्दालकिः श्वेतकेतुः सञ्चिक्षेप॥ ९॥

महर्षि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने नन्दिकेश्वर के उस कामसूत्र को पाँच सौ अध्यायों में संक्षिप्त करके निरूपित किया॥ ९॥

तदेव तु पुनरध्यर्धेनाध्यायशतेन साधारण-साम्प्रयोगिक-कन्यासम्प्रयुक्तक-भार्याधिकारिक-पारदारिक-वैशिक-औपनिषदिकैः सप्तभिरधिकरणैर्बाभ्रव्यः पाञ्चालः सञ्चिक्षेप॥ १०॥

इसके पश्चात् पांचाल देश के निवासी बभ्रु के पुत्र बाभ्रव्य ने श्वेतकेतु के पाँच सौ अध्याय वाले कामसूत्र को साधारण, साम्प्रयोगिक, कन्यासम्प्रयुक्तक, भार्याधिकारिक, पारदारिक, वैशिक और औपनिषदिक—इन सात अधिकरणों में विभक्त कर, एक सौ पचास अध्यायों में संक्षिप्त किया॥ १०॥

तस्य षष्ठं वैशिकमधिकरणं पाटलिपुत्रिकाणां गणिकानां नियोगाद् दत्तकः पृथक् चकार॥ ११॥

पटना की वेश्याओं के अनुरोध पर, आचार्य दत्तक ने बाभ्रव्य द्वारा संक्षिप्त किये गये कामशास्त्र के षष्ठ भाग—वैशिक अधिकरण को पृथक् किया (अर्थात् उसका स्वतन्त्र विवेचन किया)॥ ११॥

तत्प्रसङ्गात् चारायणः साधारणमधिकरणं पृथक् प्रोवाच। सुवर्णनाभः साम्प्रयोगिकम्। घोटकमुखः कन्यासम्प्रयुक्तकम्। गोनर्दीयो भार्याधिकारिकम्। गोणिकापुत्रः पारदारिकम्। कुचुमार औपनिषदिकमिति॥ १२॥

(जिस प्रकार बाभ्रव्य के संक्षिप्त कामशास्त्र से आचार्य दत्तक ने वैशिक अधिकरण का स्वतन्त्र विवेचन किया, उसी प्रकार) विशेष प्रयोजनवश चारायण ने साधारण अधिकरण, सुवर्णनाभ ने साम्प्रयोगिक अधिकरण, घोटकमुख ने कन्यासम्प्रयुक्तक अधिकरण, गोनर्द देश के निवासी गोनर्दीय ने भार्याधिकारिक अधिकरण, गोणिकापुत्र ने पारदारिक अधिकरण और कुचुमार ने औपनिषदिक अधिकरण का स्वतन्त्र विवेचन किया॥ १२॥

एवं बहुभिराचार्यैस्तच्छास्त्रं खण्डशः प्रणीतमुत्सन्नकल्पमभूत्॥ १३॥

कामशास्त्र बनाने का प्रयोजन—इस प्रकार बाभ्रव्यरचित वह शास्त्र विभिन्न आचार्यों द्वारा विभिन्न खण्डों में पृथक् पृथक् लिखे जाने के कारण बिखर-सा गया॥ १३॥

तत्र दत्तकादिभिः प्रणीतानां शास्त्रावयवानामेकदेशत्वात् महदिति च बाभ्रवीयस्य दुरध्येयत्वात् संक्षिप्य सर्वमर्थमल्पेन ग्रन्थेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम्॥ १४॥

क्योंकि दत्तक आदि आचार्यों ने पृथक्-पृथक् अधिकरणों को लेकर अपने ग्रन्थों की रचना की थी, फलतः वे समस्त शास्त्र के अंशमात्र थे और आचार्य बाभ्रव्य का शास्त्र साङ्गोपाङ्ग, किन्तु विशाल होने के कारण दुरध्येय (जिसका कठिनता से अध्ययन किया जा

सके) था, अतएव बाभ्रव्य के उस विशाल शास्त्र को संक्षिप्त कर, एक संक्षिप्त एवं पूर्ण इस 'कामसूत्र' की रचना की गयी है ॥ १४ ॥

तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः ॥ १५ ॥

इस 'कामसूत्र' के प्रकरण, अधिकरण और समुद्देश की सूची इस प्रकार है ॥ १५ ॥

शास्त्रसंग्रहः। त्रिवर्गप्रतिपत्तिः। विद्यासमुद्देशः। नागरकवृत्तम्। नायक-सहायदूतीकर्मविमर्शः। इति साधारणं प्रथमाधिकरणम्। अध्यायाः पञ्च। प्रकरणानि पञ्च ॥ १६ ॥

'कामसूत्र' की विषयवस्तु—'साधारण' नामक प्रथम अधिकरण है, इसमें पाँच अध्याय और पाँच ही प्रकरण हैं—(१) शास्त्रसंग्रह, (२) त्रिवर्गप्रतिपत्ति, (३) विद्यासमुद्देश, (४) नागरकवृत्त और (५) नायकसहायदूतीकर्मविमर्श ॥ १६ ॥

प्रमाणकालाभावेभ्यो रतावस्थापनम्। प्रीतिविशेषाः। आलिङ्गनविचाराः। चुम्बनविकल्पाः। नखरदनजातयः। दशनच्छेद्यविधयः। वेश्या-उपचाराः। संवेशनप्रकाराः। चित्ररतानि। प्रहणनयोगाः। तद्युक्ताश्च। सीत्कृतोपक्रमाः। पुरुषायितम्। पुरुषोपसृप्तानि। औपरिष्टकम्। रतारम्भावसानिकम्। रतविशेषाः। प्रणयकलहः। इति साम्प्रयोगिकं द्वितीयमधिकरणम्। अध्याया दश। प्रकरणानि सप्तदश ॥ १७ ॥

'साम्प्रयोगिक' नामक द्वितीय अधिकरण है, इसमें दश अध्याय और सत्रह प्रकरण हैं—(१) प्रमाण, काल और भावों के अनुरूप रमण (सम्भोग) की व्यवस्था, (२) प्रीतिविशेष या प्रीतिवर्णन, (३) आलिङ्गनविचार, (४) चुम्बनप्रकार, (५) नखक्षतप्रकार, (६) दन्त-क्षतप्रकार, (७) विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित बाह्योपचार सम्बन्धी परम्पराएँ, (८) सम्भोग-विधियाँ (९) विचित्र रत, (१०) प्रहणनप्रकार, (११) सीत्कार, (१२) पुरुषायित या विपरीत रति, (१३) पुरुषोपसृप्त या पुरुष का निकट आना (सम्भोग से पूर्व की छेड़छाड़), (१४) औपरिष्टक (मुखमैथुन), (१५) सम्भोग के समारम्भ और समापन के कर्तव्य, (१६) रतविशेष और (१७) प्रणयकलह।

वरणविधानम्। सम्बन्धनिर्णयः। कन्याविस्त्रम्भणम्। बालाया उपक्रमाः। इङ्गिताकारसूचनम्। एकपुरुषाभियोगः। प्रयोज्यस्योपावर्तनम्। अभियोगतश्च कन्यायाः प्रतिपत्तिः विवाहयोगः। इति कन्यासम्प्रयुक्तकं तृतीयाधिकरणम्। अध्यायाः पञ्च। प्रकरणानि नव ॥ १८ ॥

'कन्यासम्प्रयुक्तक' नामक तृतीय अधिकरण है, इसमें पाँच अध्याय और नौ प्रकरण हैं—(१) कन्यावरण, (२) विवाह-सम्बन्ध का निर्णय, (३) कन्याविस्त्रम्भण—कन्या में विश्वास जगाना, (४) कन्या में प्रेमोत्पत्ति, (५) इंगित और आकारविषयक सूचनाएँ, (६) ईप्सित कन्या से विवाह करने का प्रयत्न, (७) कन्या द्वारा मनोवाञ्छित को आकर्षित करना, (८) अपने प्रेमी की अभियोगों द्वारा प्राप्ति और (९) विवाह-सम्बन्ध ॥ १८ ॥

एकचारिणीवृत्तम्। प्रवासचर्या। सपत्नीषु ज्येष्ठावृत्तम्। कनिष्ठावृत्तम्।

पुनर्भूवृत्तम्। दुर्भगावृत्तम्। आन्तःपुरिकम्। पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिः। इति भार्याधिकारिकं चतुर्थमधिकरणम्। अध्यायौ द्वौ। प्रकरणान्यष्टौ॥ १९॥

'भार्याधिकारिक' नामक चतुर्थ अधिकरण है, इसमें दो अध्याय और आठ प्रकरण हैं—(१) पतिपरायणा पत्नी के कर्तव्य, (२) पति के बाहर जाने पर पत्नी के कर्तव्य, (३) सपत्नियों में ज्येष्ठा का कनिष्ठा के प्रति व्यवहार, (४) सपत्नियों में कनिष्ठा का ज्येष्ठा के प्रति व्यवहार, (५) पुनर्विवाहित पत्नी का व्यवहार, (६) दुर्भाग्यशालिनी पत्नी का पति एवं सपत्नियों के प्रति व्यवहार, (७) अन्तःपुर के प्रति कर्तव्य और (८) पुरुष का अनेक पत्नियों के प्रति कर्तव्य॥ १९॥

स्त्री-पुरुषशीलावस्थापनम्। व्यावर्त्तनकारणानि। स्त्रीषु सिद्धाः पुरुषाः। अयत्नसाध्या योषितः। परिचयकारणानि। अभियोगाः। भावपरीक्षा। दूतीकर्माणि। ईश्वरकामितम्। अन्तःपुरिकं दाररक्षितकम्। इति पारदारिकं पञ्चममधिकरणम्। अध्यायाः षट्। प्रकरणानि दश॥ २०॥

'पारदारिक' नामक पञ्चम अधिकरण है, इसमें छह अध्याय और दश प्रकरण हैं—(१) स्त्री-पुरुष के स्वभाव की विवेचना, (२) परपुरुष-सम्बन्ध में अवरोध उत्पन्न करने के कारण, (३) परनारी को वशीभूत करने में सिद्ध पुरुष, (४) अनायास साध्य स्त्रियाँ, (५) परिचय बनाने के उपाय, (६) अभियोग, (७) भावों की परीक्षा, (८) दूतीकर्म, (९) ऐश्वर्यशाली पुरुषों की इच्छा पूरी करने के उपाय और (१०) अन्तःपुर में प्रवेश और व्यभिचारी एवं दुष्ट पुरुषों से अपनी स्त्रियों की रक्षा॥ २०॥

गम्यचिन्ता। गमनकारणानि। उपावर्तनविधिः। कान्तानुवर्तनम्। अर्थागमोपायाः। विरक्तलिङ्गानि। विरक्तप्रतिपत्तिः। निष्कासनप्रकाराः। विशीर्णप्रतिसन्धानम्। लाभविशेषः। अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारः। वेश्याविशेषाश्च। इति वैशिकं षष्ठमधिकरणम्। अध्यायाः षट्। प्रकरणानि द्वादश॥ २१॥

'वैशिक' नामक षष्ठ अधिकरण है, इसमें छह अध्याय और बारह प्रकरण हैं—(१) गम्यपुरुष-चिन्तन, (२) सम्भोग के कारण, (३) अपनी ओर आकृष्ट करने की विधि, (४) अपने प्रेमी के साथ पत्नी के समान आचरण, (५) अर्थार्जन के उपाय, (६) विरक्त पुरुष के चिह्न, (७) विरक्त पुरुष की पुनः प्राप्ति, (८) निष्कासन के उपाय, (९) निष्कासित का प्रतिसन्धान, (१०) विशेष लाभ की युक्ति, (११) अर्थानर्थपरक अनुबन्ध और संशय-सम्बन्धी विचार और (१२) वेश्याओं के विभिन्न प्रकार॥ २१॥

सुभगङ्करणम्। वशीकरणम्। वृष्याश्च योगाः। नष्टरागप्रत्यानयनम्। वृद्धिविधयः। चित्राश्च योगाः। इत्यौपनिषदिकं सप्तममधिकरणम्। अध्यायौ द्वौ। प्रकरणानि षट्॥ २२॥

'औपनिषदिक' नामक सप्तम अधिकरण है, इसमें दो अध्याय और छह प्रकरण हैं—(१) रूप, गुण, आयु आदि सौभाग्य-प्राप्ति के उपाय, (२) यन्त्र, मन्त्र और तन्त्र से वश में

करना, (३) वाजीकरण के योग, (४) नष्टराग का पुनः उत्पादन, (५) सम्भोग-साधन की वृद्धि के उपाय और (६) कुछ विचित्र अलौकिक योग॥ २२॥

एवं षट्त्रिंशदध्यायाः। चतुःषष्टिः प्रकरणानि। अधिकरणानि सप्त। सपादं श्लोकसहस्त्रम्। इति शास्त्रस्य संग्रहः॥ २३॥

इस प्रकार इस 'कामसूत्र' में छत्तीस अध्याय, चौंसठ प्रकरण, सात अधिकरण और एक हजार दो सौ पचास श्लोक हैं। इस प्रकार शास्त्रसंग्रह, विषयवस्तु (का सामान्य उल्लेख) समाप्त हुआ॥ २३॥

संक्षेपमिममुक्त्वास्य विस्तरोऽतः प्रवक्ष्यते।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासभाषणम्॥ २४॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकरणे शास्त्रसंग्रहः प्रथमोऽध्यायः।

इस शास्त्र के संक्षिप्त उल्लेख—अधिकरण, अध्याय और प्रकरणों के नामोल्लेख को कहकर, अब उसे विस्तारपूर्वक कहा जा रहा है, क्योंकि लोक में विद्वानों को संक्षेप और विस्तार दोनों की इच्छा होती है॥ २४॥

प्रथम अधिकरण में शास्त्रसंग्रह नामक प्रथम अध्याय सम्पन्न॥

●

द्वितीय अध्याय

त्रिवर्गप्रतिपत्ति

शतायुर्वै पुरुषो विभज्य कालमन्योन्यानुबद्धं परस्परस्यानुपघातकं त्रिवर्गं सेवेत॥ १॥

कालविभाग—शतंजीवी विचारशील मनुष्य को चाहिये कि अपने जीवन को आश्रमों में विभक्त कर धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों का इस प्रकार सेवन करे कि ये एक दूसरे से सम्बद्ध भी रहें और परस्पर अनिष्टकर भी न हों॥ १॥

बाल्ये विद्याग्रहणादीनर्थान्॥ २॥

अवस्थानुरूप कालविभाग—बाल्यावस्था में विद्योपार्जन आदि बाल्योचित अर्थों का सेवन करना चाहिये॥ २॥

कामं च यौवने॥ ३॥

युवावस्था में काम का सेवन करना चाहिये॥ ३॥

स्थाविरे धर्मं मोक्षं च॥ ४॥

वृद्धावस्था में धर्म और मोक्ष का सेवन करना चाहिये॥ ४॥

अनित्यत्वादायुषो यथोपपादं वा सेवेत॥ ५॥

अथवा जीवन की अनित्यता के कारण जिस समय भी जो सम्भव हो उसका ही सेवन करना चाहिये ॥ ५ ॥

ब्रह्मचर्यमेव त्वा विद्याग्रहणात् ॥ ६ ॥

ब्रह्मचर्यपालन—विद्योपार्जन काल में ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है ॥ ६ ॥

अलौकिकत्वाददृष्टार्थत्वादप्रवृत्तानां यज्ञादीनां शास्त्रात् प्रवर्तनम्, लौकिकत्वाद् दृष्टार्थत्वाच्च प्रवृत्तेभ्यश्च मांसभक्षणादिभ्यः शास्त्रादेव निवारणं धर्मः ॥ ७ ॥

धर्म का स्वरूप और उसका उपाय—अलौकिक एवं फल के अदृष्ट होने से यज्ञादि में स्वभावतः प्रवृत्त न होने वाले मनुष्य का शास्त्र के आदेश से प्रवृत्त होना तथा लौकिक एवं प्रत्यक्ष फल वाला होने के कारण मांस-भक्षणादि कार्यों में प्रवृत्त मनुष्य का शास्त्र के आदेश से निवृत्त होना—यह प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप द्विविध धर्म है ॥ ७ ॥

तं श्रुतेर्धर्मज्ञसमवायाच्च प्रतिपद्येत ॥ ८ ॥

धर्म के विषय में शास्त्र ही प्रमाण क्यों मानते हो ?—उस धर्म को विद्वान् लोग वेद के अध्ययन से और साधारण लोग धर्मज्ञ पुरुषों से जान लें ॥ ८ ॥

विद्याभूमिहिरण्यपशुधान्यभाण्डोपस्करमित्रादीनामर्जनमर्जितस्य विवर्धनमर्थः ॥ ९ ॥

अर्थ का स्वरूप और उसका उपाय—विद्या, भूमि, हिरण्य (स्वर्ण), पशु, धान्य, बर्तनादि गृह-उपकरण, मित्रों आदि का सम्पादन करना तथा अर्जित को बढ़ाना ही अर्थ कहलाता है ॥ ९ ॥

तमध्यक्षप्रचाराद्वार्तासमयविद्भ्यो वणिग्भ्यश्चेति ॥ १० ॥

उस अर्थ को अध्यक्षप्रचार (स्वयं दर्शन) से, कृषि-वाणिज्य आदि के तत्त्वज्ञों से और व्यापारियों से जानना चाहिये ॥ १० ॥

श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिकामः ॥ ११ ॥

काम का स्वरूप और उसका उपाय—आत्मा से संयुक्त हुए मन से अधिष्ठित श्रोत्र (कान), त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की अपने अपने विषय—क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—में अनुकूल प्रवृत्ति को काम कहते हैं ॥ ११ ॥

स्पर्शविशेषविषयात्त्वस्याभिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थप्रतीतिः प्राधान्यात् कामः ॥ १२ ॥

चुम्बनादि के प्रासङ्गिक सुख के साथ, परस्पर स्तन, नितम्ब आदि विशेष अङ्गों के स्पर्श से आनन्द की जो फलवती प्रतीति होती है, उसे काम कहते हैं ॥ १२ ॥

तं कामसूत्रान्नागरिकजनसमवायाच्च प्रतिपद्येत ॥ १३ ॥

उस काम-विषयक ज्ञान को 'कामसूत्र' से तथा सम्भ्रान्त नागरिकों से सीखना चाहिये ॥ १३ ॥

एषां समवाये पूर्वः पूर्वो गरीयान्॥ १४॥

धर्म, अर्थ और काम के समुदाय में उत्तर से पूर्व पूर्व श्रेष्ठ है, अर्थात् काम से अर्थ श्रेष्ठ है और अर्थ से धर्म श्रेष्ठ है॥ १४॥

अर्थश्च राज्ञः। तन्मूलत्वाल्लोकयात्रायाः। वेश्यायाश्चेति त्रिवर्गप्रतिपत्तिः॥ १५॥

राजा के लिए धर्म और काम की अपेक्षा अर्थ ही बड़ा है, क्योंकि उसकी लोकयात्रा का मूल धन ही है। वेश्या के लिए भी अर्थ ही बड़ा है। इस प्रकार त्रिवर्ग की प्रतिपत्ति (प्राप्ति) पूर्ण हुई॥ १५॥

धर्मस्यालौकिकत्वात् तदभिधायकं शास्त्रं युक्तम्; उपायपूर्वकत्वादर्थसिद्धेः। उपायप्रतिपत्तिः शास्त्रात्॥ १६॥

धर्मादि की प्रतिपत्ति—धर्म अलौकिक है, इसलिये उसके स्वरूप का बोध कराने वाले शास्त्र का होना युक्तिसङ्गत भी है और आवश्यक भी। अर्थ की सिद्धि भी उपायों से ही होती है, अतएव इन उपायों को बताने वाले अर्थशास्त्र की भी आवश्यकता है॥ १६॥

तिर्यग्योनिष्वपि तु स्वयं प्रवृत्तत्वात् कामस्य नित्यत्वाच्च न शास्त्रेण कृत्यमस्तीत्याचार्याः॥ १७॥

कामशास्त्र की आवश्यकता—पशु-पक्षियों में भी काम की स्वतः प्रवृत्ति पायी जाती है तथा यह नित्य (अविनाशी) है, अतः इसे सिखाने के लिये शास्त्र की आवश्यकता नहीं है—ऐसा कुछ आचार्यों का मत है॥ १७॥

सम्प्रयोगपराधीनत्वात् स्त्रीपुंसयोरुपायमपेक्षते॥ १८॥

सम्भोग में स्त्री-पुरुष के पराधीन होने के कारण, उन्हें पराधीनता से बचने के लिये शास्त्ररूप उपाय की आवश्यकता होती है॥ १८॥

सा चोपायप्रतिपत्तिः कामसूत्रादिति वात्स्यायनः॥ १९॥

दाम्पत्य जीवन को सफल बनाने वाले उपायों का परिज्ञान कामसूत्र से ही होता है—ऐसा महर्षि वात्स्यायन का मत है॥ १९॥

तिर्यग्योनिषु पुनरनावृतत्वात् स्त्रीजातेश्च, ऋतौ यावदर्थं प्रवृत्तेरबुद्धिपूर्वकत्वाच्च प्रवृत्तीनामनुपायः प्रत्ययः॥ २०॥

मनुष्यों में शास्त्ररूपी उपाय की आवश्यकता क्यों है?—पशु-पक्षियों में स्त्री जाति अनावृत—स्वतन्त्र, बन्धनरहित एवं आवरणरहित रहती है, ऋतुकाल में ही उनकी सोद्देश्य प्रवृत्ति होती है, और यह प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक नहीं होती, अतः उनका सहज धर्म किसी शास्त्ररूपी उपाय की आवश्यकता नहीं रखता॥ २०॥

न धर्मांश्चरेत्; एष्यत्फलत्वात्। सांशयिकत्वाच्च॥ २१॥

त्रिवर्ग के आचरण की आवश्यकता पर शंका—क्योंकि धर्म का फल भविष्य में मिलने वाला (अनिश्चित) होता है, अतः धर्मों का आचरण नहीं करना चाहिये। उनके फल मिलने में भी संशय रहता है॥ २१॥

को ह्यबालिशो हस्तगतं परगतं कुर्यात्॥ २२॥

लोकरीति—कौन ऐसा मूर्ख होगा जो हस्तगत पदार्थ को दूसरे से हाथ सौंपेगा॥ २२॥

वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्॥ २३॥

कल मिलने वाले मयूर से आज मिलने वाला कबूतर अच्छा है॥ २३॥

वरं सांशयिकान्निष्कादसांशयिकः कार्षापणः। इति लौकायतिकाः॥ २४॥

पारस्परिक असहमति के द्वितीय हेतु की लोकप्रसिद्धि बताते हैं—सन्दिग्ध निष्क (स्वर्णमुद्रा) की अपेक्षा असन्दिग्ध कार्षापण (ताम्रमुद्रा या ताँबे का सिक्का) का लाभ अधिक अच्छा है—ऐसा लौकायतिकों (लोकायत अर्थात् नास्तिक दर्शन के अनुयायी लोगों) का मत है॥ २४॥

शास्त्रस्यानभिशङ्क्यत्वादभिचारानुव्याहारयोश्च क्वचित्फलदर्शनान्नक्षत्रचन्द्र-सूर्यताराग्रहचक्रस्य लोकार्थं बुद्धिपूर्वकमिव प्रवृत्तेर्दर्शनाद् वर्णाश्रमाचार-स्थितिलक्षणत्वाच्च लोकयात्राया हस्तगतस्य च बीजस्य भविष्यतः सस्यार्थे त्यागदर्शनाच्चरेद्धर्मानिति वात्स्यायनः॥ २५॥

धर्म पर की गयी शंकाओं का उत्तर—क्योंकि—(१) धर्म का उपदेश करने वाले शास्त्र (वेद, स्मृति आदि) अपौरुषेय (ईश्वरकृत या मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा प्रणीत) हैं, इसलिये उनमें शंका नहीं की जा सकती, वे निश्चय ही सत्य है।

(२) कहीं शास्त्रों द्वारा निर्देशित अभिचार कर्मों, शान्ति एवं पुष्टिवर्धक कर्मों का फल भी स्पष्ट देखा जाता है।

(३) नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, तारागण एवं ग्रहचक्रों की लोकहित में बुद्धिपूर्वक के समान प्रवृत्ति देखी जाती है।

(४) वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था एवं उनके समस्त करणीय कर्मों का प्रतिपादन धर्म में ही किया गया है।

(५) लोकयात्रा में हस्तगत बीज को भविष्य में उत्पन्न होने वाले अन्न के लिये भावी उत्पादन (फसल) हेतु छोड़ दिया जाता है।

अतएव धर्म का आचरण अवश्य करना चाहिये—ऐसा महर्षि वात्स्यायन का मत है॥ २५॥

नार्थांश्चरेत्। प्रयत्नतोऽपि ह्येतेऽनुष्ठीयमाना नैव कदाचित् स्युः, अननुष्ठीयमाना अपि यदृच्छया भवेयुः॥ २६॥

अर्थार्जन के लिए प्रयत्न नहीं करना चाहिये, क्योंकि कभी अर्थ प्रयत्न करने पर भी तो प्राप्त नहीं होता, और कभी विना प्रयत्न के भी अकस्मात् प्राप्त हो जाता है॥ २६॥

तत्सर्वं कालकारितमिति॥ २७॥

क्या यह पूर्वकृत है? नहीं; यह सब काल के अधीन है॥ २७॥

काल एव हि पुरुषानर्थानर्थयोर्जयपराजययोः सुखदुःखयोश्च स्थाप-यति॥ २८॥

काल ही मनुष्यों को अर्थ और अनर्थ में, जय और पराजय में तथा सुख और दुःख में स्थापित करता है ॥ २८ ॥

कालेन बलिरिन्द्रः कृतः। कालेन व्यपरोपितः। काल एव पुनरप्येनं कर्तेति कालकारणिकाः ॥ २९ ॥

काल ने बलि को इन्द्र बनाया, काल ने ही उसे अपदस्थ किया और वही सम्भवतः उसे फिर इन्द्र बना दे—ऐसा काल को ही सब कुछ का कारण मानने वाले आचार्य कहते हैं ॥ २९ ॥

पुरुषकारपूर्वकत्वात् सर्वप्रवृत्तीनामुपायः प्रत्ययः ॥ ३० ॥

सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ पुरुषार्थ से सम्पन्न होती हैं, अतः उनके उपाय का जानना आवश्यक है ॥ ३० ॥

अवश्यं भाविनोऽप्यर्थस्योपायपूर्वकत्वादेव। न निष्कर्मणो भद्रमस्तीति वात्स्यायनः ॥ ३१ ॥

अवश्यम्भावी कार्यों की भी उपायपूर्वक ही सिद्धि होने से स्पष्ट है कि अकर्मण्य पुरुष का कल्याण नहीं होता—ऐसा वात्स्यायन का मत है ॥ ३१ ॥

न कामाँश्चरेत्। धर्मार्थयोः प्रधानयोरेवमन्येषां च सतां प्रत्यनीकत्वात्। अनर्थ-जनसंसर्गमसद्व्यवसायमशौचमनायतिं चैते पुरुषस्य जनयन्ति ॥ ३२ ॥

काम का आचरण नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह प्रधान पुरुषार्थ धर्म और अर्थ के तथा सज्जनों के विरुद्ध है। यह मनुष्य में अनर्थकारी लोगों का संसर्ग , असत् कर्म, अपवित्रता और प्रभावहीनता (पराक्रम एवं यश का अभाव) उत्पन्न करता है ॥ ३२ ॥

तथा प्रमादं लाघवमप्रत्ययमग्राह्यतां च ॥ ३३ ॥

और यह काम प्रमाद, चञ्चलता और अविश्वास को उत्पन्न करता है तथा कामी व्यक्ति सभी के लिये अग्राह्य हो जाता है अर्थात् सभी लोग उससे बचने लगते हैं ॥ ३३ ॥

बहवश्च कामवशगाः सगणा एवं विनष्टाः श्रूयन्ते ॥ ३४ ॥

और यह भी सुना जाता है कि बहुत से व्यक्ति काम के वशीभूत होकर सपरिवार नष्ट हो गये ॥ ३४ ॥

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश ॥ ३५ ॥

जैसे भोजवंशीय दाण्डक्य नामक राजा काम के वशीभूत होकर ब्राह्मण-कन्या को कामतृप्ति का साधन मानने के कारण अपने बन्धु-बान्धव और राष्ट्र सहित नष्ट हो गया ॥ ३५ ॥

देवराजश्चाहल्यामतिबलश्च कीचको द्रौपदीं रावणश्च सीतामपरे चान्ये च बहवो दृश्यन्ते कामवशगा विनष्टा इत्यर्थचिन्तकाः ॥ ३६ ॥

देवराज इन्द्र अहल्या के गमन से, महाबली कीचक द्रौपदी की और रावण सीता की कामना में नष्ट हुआ। इनके अतिरिक्त भी अनेक पुरुष काम के वशीभूत होकर नष्ट होते देखे गये हैं—ऐसा अर्थचिन्तकों का कहना है ॥ ३६ ॥

शरीरस्थितिहेतुत्वादाहारसधर्माणो हि कामाः। फलभूताश्च धर्मार्थयोः ॥ ३७ ॥

शरीर की स्थिति का कारण होने से काम भी आहार के समान ही है, और धर्म एवं अर्थ का फलरूप काम ही है॥ ३७॥

बोद्धव्यं तु दोषेष्विव। नहि भिक्षुकाः सन्तीति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते। नहि मृगाः सन्तीति यवा नोप्यन्त इति वात्स्यायनः॥ ३८॥

यदि कामसेवन से दोष उत्पन्न होते हैं, तो उन्हें भी अन्नादि के दोषों के समान ही समझना चाहिये और उन्हें दूर करने के उपाय करने चाहिये। पर यह बात तर्कसङ्गत नहीं है कि भिक्षुक हैं तो भोजन बनाने के लिये चूल्हा ही न जलाया जाये, और मृग हैं तो जौ (अन्न) ही न बोया जाये—ऐसा महर्षि वात्स्यायन का मत है॥ ३८॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

एवमर्थं च कामं च धर्मं चोपाचरन्नरः।
इहामुत्र च निःशल्यमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ ३९॥

अनुष्ठान करने का फल—इस विषय में प्राचीन लोगों के श्लोक देते हैं—

इस प्रकार धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील मनुष्य, इस लोक में और परलोक में निष्कण्टक सुख प्राप्त करता है॥ ३९॥

किं स्यात् परत्रेत्याशङ्का कार्ये यस्मिन्न जायते।
न चार्थघ्नं सुखं चेति शिष्टास्तत्र व्यवस्थिताः॥
त्रिवर्गसाधकं यत् स्याद् द्वयोरेकस्य वा पुनः।
कार्यं तदपि कुर्वीत न त्वेकार्थं द्विबाधकम्॥ ४०॥

जिस अर्थ के करने में यह शंका न हो कि परलोक में क्या होगा, और जो सुख अर्थ का नाश न करे, शिष्ट पुरुष उसी के अनुष्ठान में लगते हैं। जो कार्य त्रिवर्ग का साधक हो, या दो का अथवा एक का ही साधक हो, उसे करना चाहिये; परन्तु जो धर्म, अर्थ या काम केवल अपना साधक हो तथा शेष दो का विघातक हो, उसे नहीं करना चाहिये॥ ४०॥

त्रिवर्गप्रतिपत्तिप्रकरण नामक द्वितीय अध्याय सम्पन्न॥

●

तृतीय अध्याय

विद्यासमुद्देशप्रकरण

धर्मार्थाङ्गविद्याकालाननुपरोधयन् कामसूत्रं तदङ्गविद्याश्च पुरुषोऽधीयीत॥ १॥

कामसूत्र का अध्ययनकाल—पुरुषों को धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा इन दोनों की अङ्गभूत विद्याओं के साथ ही मध्य मध्य में कामसूत्र और उसकी अङ्गभूत विद्याओं का भी अध्ययन करना चाहिये॥ १॥

प्राग्यौवनात् स्त्री। प्रत्ता च पत्युरभिप्रायात्॥ २॥

धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और कामशास्त्र तथा उसकी अङ्गभूत विद्याओं का स्त्री को विवाह से पूर्व, पिता के घर पर, अध्ययन करना चाहिये। यदि विवाह हो गया हो, तो पति की अनुमति से ही इन्हें सीखना चाहिये॥ २॥

योषितां शास्त्रग्रहणस्याभावादनर्थकमिह शास्त्रे स्त्रीशासनमित्याचार्याः॥ ३॥

स्त्रियों के लिए कामशास्त्रीय शिक्षा—स्त्री शास्त्र की अधिकारिणी नहीं है, अतः इन कामशास्त्र और उसकी अङ्गभूत विद्याओं में उनका परिश्रम निरर्थक है—ऐसा कुछ आचार्यों का मत है॥ ३॥

प्रयोगग्रहणं त्वासाम्। प्रयोगस्य च शास्त्रपूर्वकत्वादिति वात्स्यायनः॥ ४॥

स्त्रियों को कामशास्त्र के व्यावहारिक प्रयोग का तो अधिकार है ही, और व्यावहारिक प्रयोग के विना सैद्धान्तिक ज्ञान समुचित रूप में नहीं हो सकता, अतएव उन्हें कामशास्त्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिये—ऐसा महर्षि वात्स्यायन का मत है॥ ४॥

तन्न केवलमिहैव। सर्वत्र हि लोके कतिचिदेव शास्त्रज्ञाः। सर्वजनविषयश्च प्रयोगः॥ ५॥

यह बात केवल कामशास्त्र के विषय में ही सत्य हो—ऐसा नहीं है, बल्कि सर्वत्र देखी जाती है कि लोक में शास्त्रों के जानने वाले कुछ ही होते हैं, पर उसका प्रयोग सभी लोग करते हैं॥ ५॥

प्रयोगस्य च दूरस्थमपि शास्त्रमेव हेतुः॥ ६॥

और दूर होने पर भी प्रयोग का कारण शास्त्र ही है॥ ६॥

अस्ति व्याकरणमित्यवैयाकरणा अपि याज्ञिका ऊहं क्रतुषु प्रयुञ्जते॥ ७॥

व्याकरण शास्त्र के होने पर ही अवैयाकरण याज्ञिक यज्ञों में ऊह का प्रयोग करते हैं॥ ७॥

अस्ति ज्यौतिषमिति पुण्याहेषु कर्म कुर्वते॥ ८॥

ज्योतिषशास्त्र के होते हुए ही ज्योतिष न जानने वाले व्यक्ति भी शुभ दिनों में विशेष कृत्यों को किया करते हैं॥ ८॥

तथाश्वारोहा गजारोहाश्चाश्वान् गजांश्चानधिगतशास्त्रा अपि विनयन्ते॥ ९॥

तथा हस्तिविद्या और शालिहोत्र को बिना पढ़े महावत और अश्वपालक भी क्रमशः हाथियों और घोड़ों को नियन्त्रित करते हैं॥ ९॥

तथास्ति राजेति दूरस्था अपि जनपदा न मर्यादामतिवर्तन्ते तद्वदेतत्॥ १०॥

जिस प्रकार दण्ड देने में समर्थ राजा की सत्ता जानकर दूरस्थ प्रजा भी राज्य की मर्यादाओं का अतिक्रमण नहीं करती, उसी प्रकार कामशास्त्र को न जानने वाले व्यक्ति भी इसकी मर्यादाओं का पालन करते हैं॥ १०॥

सन्त्यपि खलु शास्त्रप्रहतबुद्धयो गणिका राजपुत्र्यो महामात्रदुहितरश्च॥ ११॥

निश्चय ही कुछ गणिकाएँ, राजपुत्रियाँ और महामात्यों (मन्त्रियों) की पुत्रियाँ

कामशास्त्रीय प्रयोगों में ही नहीं, शास्त्रानुशील में भी निष्पन्न बुद्धि वाली होती हैं अर्थात् यह कहना सत्य नहीं है कि स्त्री शास्त्र की अधिकारिणी नहीं होती ॥ ११ ॥

तस्माद्वैश्वासिकाज्जनाद्रहसि प्रयोगाञ्छास्त्रमेकदेशं वा स्त्री गृह्णीयात् ॥ १२ ॥

स्त्रियों की कामशास्त्रानुशील की रीति—इसलिये विश्वस्त जन से, एकान्त में, कामशास्त्र के समस्त प्रयोग, सम्पूर्ण शास्त्र अथवा उसके एक अंग की शिक्षा स्त्रियाँ प्राप्त करें ॥ १२ ॥

अभ्यासप्रयोज्यांश्च चातुःषष्टिकान् योगान् कन्या रहस्येकाकिन्यभ्य-सेत् ॥ १३ ॥

अभ्यास से प्रयोज्य चौंसठ कलाओं के प्रयोगों का कन्या को एकान्त में एकाकी ही अभ्यास करना चाहिये ॥ १३ ॥

आचार्यास्तु कन्यानां प्रवृत्तपुरुषसम्प्रयोगा सहसम्प्रवृद्धा धात्रेयिका। तथाभूता वा निरत्ययसम्भाषणा सखी। सवयाश्च मातृष्वसा। विस्रब्धा तत्स्थानीया वृद्धदासी। पूर्वसंसृष्टा वा भिक्षुकी। स्वसा च विश्वासप्रयोगात् ॥ १४ ॥

कन्या के विश्वस्त आचार्य—कन्या के विश्वस्त आचार्य निम्नलिखित छह होते हैं—(१) पुरुष के साथ सम्भोग कर चुकी (अनुभवी) साथ में पालित-पोषित धाय की लड़की, (२) अथवा पुरुष के साथ सम्भोग कर चुकी वैसी ही निश्छल सखी, (३) समान अवस्था वाली विवाहिता मौसी, (४) माता के समान स्थान वाली (माँ ने जिसे बहिन (धर्म-बहिन) माना हो) वृद्ध दासी, (५) पूर्वपरिचित एवं स्नेहशीला भिक्षुणी और (६) विश्वस्त ज्येष्ठ बहिन ॥ १४ ॥

गीतम्, वाद्यम्, नृत्यम्, आलेख्यम्, विशेषकच्छेद्यम्, तण्डुलकुसुमवलि-विकाराः, पुष्पास्तरणम्, दशनवसनाङ्गरागः, मणिभूमिकाकर्म, शयनरचनम्, उदकवाद्यम्, उदकाघातः, चित्राश्च योगाः, माल्यग्रथनविकल्पाः, शेखरका-पीडयोजनम्, नेपथ्यप्रयोगाः, कर्णपत्रभङ्गाः, गन्धयुक्तिः, भूषणयोजनम्, ऐन्द्रजालाः, कौचुमाराश्च योगाः, हस्तलाघवम्, विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया, पानकरसरागासवयोजनम्, सूची-वानकर्माणि, सूत्रक्रीडा, वीणाडमरुकवाद्यानि, प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वाचकयोगाः, पुस्तकवाचनम्, नाटकाख्यायिकादर्शनम्, काव्यसमस्यापूरणम्, पट्टिका-वान-वेत्रविकल्पाः, तक्षकर्माणि, तक्षणम्, वास्तुविद्या, रूप्यपरीक्षा, धातुवादः, मणिरागाकरज्ञानम्, वृक्षायुर्वेदयोगाः, मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः, शुकसारिकाप्रलापनम्, वृक्षायुर्वेदयोगाः, मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः, शुक-सारिकाप्रलापनम्, उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्, अक्षरमुष्टिकाकथनम्, म्लेच्छितविकल्पाः, देशभाषा-विज्ञानम्, पुष्पशकटिका, निमित्तज्ञानम्, यन्त्रमातृका, धारणमातृका, सम्पाठ्यम्, मानसी काव्यक्रिया, अभिधानकोशः, छन्दोज्ञानम्, क्रियाकल्पः, छलितकयोगाः, वस्त्रगोपनानि, द्यूतविशेषः, आकर्षक्रीडा, बाल-क्रीडनकानि, वैनयिकीनाम्,

वैजयिकीनाम् व्यायामिकीनां च विद्यानां ज्ञानम्, इति चतुःषष्टिरङ्गविद्याः। कामसूत्रस्यावयविन्यः ॥ १५ ॥

कामशास्त्र की उपायभूत चौंसठ कलाएँ—इनमें भी काम की उपायभूत चौंसठ कलाओं को गिनाते हैं—

१. गीतम्—गायन (सुगम सङ्गीत),
२. वाद्यम्—विभिन्न वाद्यों का बजाना,
३. नृत्यम्—विभिन्न प्रकार के नृत्य,
४. आलेख्यम्—चित्रकला (विभिन्न प्रकार के चित्र बनाना),
५. विशेषकच्छेद्यम्—बिन्दी तथा कटाव की तस्वीर बनाना,
६. तण्डुलकुसुमवलिविकाराः—रंगीन चावल और फूलों से अल्पना बनाना या चौक पूरना,
७. पुष्पास्तरणम्—पुष्पों की शैय्या बनाना,
८. दशनवसनाङ्गरागः—दाँत, वस्त्र और शरीर को रँगकर भव्य बनाना,
९. मणिभूमिकाकर्म—मणियों का फर्श तैयार करना,
१०. शयनरचनम्—सुन्दर शैय्या-रचना,
११. उदकवाद्यम्—जल को वाद्य की तरह बजाना, जैसे जलतरंग,
१२. उदकघातम्—जलक्रीड़ा में कलात्मक जलप्रहार या पिचकारी मारना,
१३. चित्रयोगाः—विभिन्न औपनिषदिक योगों (मन्त्रों, तन्त्रों एवं औषधियों) के प्रयोगों का ज्ञान,
१४. माल्यग्रथनविकल्पाः—विभिन्न प्रकार की मालाएँ बनाना,
१५. शेखरकापीडयोजनम्—शिरोभूषण—शेखरक, आपीड़ आदि का धारण करना,
१६. नेपथ्यप्रयोगाः—वस्त्राभरणसज्जा,
१७. कर्णपत्रभङ्गः—कर्णाभरण बनाना,
१८. गन्धयुक्तिः—कई द्रव्यों को मिलाकर सुगन्ध तैयार करना,
१९. भूषणयोजनम्—समुचित रीति से भूषणविन्यास करना,
२०. ऐन्द्रजालः—जादू के खेल दिखाना,
२१. कौचुमारयोगाः—औपनिषदिक में वर्णित सौन्दर्यवृद्धि आदि के प्रयोग,
२२. हस्तलाघवम्—हाथ की सफाई (फुरती),
२३. विचित्रशाकयूपभक्ष्यविकारक्रिया—विभिन्न प्रकार के शाक, तरकारी तथा भक्ष्य तैयार करना,
२४. पानकरसरागासवयोजनम्—विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थ, राग और आसव तैयार करना,
२५. सूची-वानकर्माणि—सीना, पिरोना, जाली बुनना,
२६. सूत्रक्रीड़ा—धागे से पशु-पक्षियों के चित्र बनाना,
२७. वीणाडमरुकवाद्यानि—वीणा आदि वाद्यों को बजाना,
२८. प्रहेलिका—पहेलियाँ समझना और कहना,
२९. प्रतिमाला—अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता की क्षमता,

३०. दुर्वाचकयोगाः—कूट श्लोकों का पूछना और बताना,
३१. पुस्तकवाचनम्—पद्य का रसानुकूल गायन,
३२. नाटकाख्यायिकादर्शनम्—नाटक और कथासाहित्य आदि का परिज्ञान,
३३. काव्यसमस्यापूरणम्—काव्य में समस्यापूर्ति करना,
३४. पट्टिकावानवेत्रविकल्पाः—बेंत और सरकण्डों से चटाई, मूढ़े आदि बनाना,
३५. तक्षकर्माणि—आभूषण और बर्तनों पर मीनाकारी,
३६. तक्षणम्—बढ़ईगिरी (लकड़ी का काम),
३७. वास्तुविद्या—भवननिर्माण कला,
३८. रूप्यपरीक्षा—मणि और रत्नों की परीक्षा,
३९. धातुवादः—धातुओं का शोधन एवं मिश्रण,
४०. मणिरागाकरज्ञानम्—मणियों को रँगना और खान आदि का ज्ञान,
४१. वृक्षायुर्वेदयोगाः—वृक्षों एवं लताओं की चिकित्सा,
४२. मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः—भेड़ा, कुक्कुट और लावकों को लड़ाने की विधि,
४३. शुकसारिकाप्रलापनम्—शुक-सारिकाओं को प्रशिक्षित करना,
४४. उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्—हाथ-पैरों से दबाने (अङ्गमर्दन) तथा सिर की मालिश की कला,
४५. अक्षरमुष्टिकाकथनम्—सांकेतिक या गुप्त अक्षरों का कथन तथा मुष्टिका—संकेत द्वारा वार्तालाप,
४६. म्लेच्छितविकल्पाः—अस्पष्ट शब्दों के प्रयोग का अभ्यास,
४७. देशभाषाविज्ञानम्—विभिन्न देशों की भाषाओं का ज्ञान,
४८. पुष्पशकटिका—पुष्पों से गाड़ी आदि बनाना,
४९. निमित्तज्ञानम्—शकुन विचार,
५०. मन्त्रमातृका—स्वचालित यन्त्रों का निर्माण,
५१. धारणमातृका—स्मृतिवृद्धि के साधनों का ज्ञान,
५२. सम्पाठ्यम्—पठित या श्रुत छन्द को यथावत् दुहरा देना,
५३. मानसीकाव्यक्रिया—विक्षिप्त अक्षरों को मन से पूरा करके छन्द रचना करना,
५४. अभिधानकोशः—शब्दकोशों का ज्ञान एवं प्रयोग,
५५. छन्दोविज्ञानम्—छन्दःशास्त्र का ज्ञान,
५६. क्रियाकल्पः—काव्यशास्त्र का ज्ञान,
५७. छलितयोगाः—अनेक रूप धारण करने की कला,
५८. वस्त्रगोपनानि—वस्त्रों के दोषों को छिपाने की कला,
५९. द्यूतविशेषः—द्यूतकला का परिज्ञान,
६०. आकर्षक्रीड़ा—पासों को अनुकूल फेंकने की कला,
६१. बालक्रीडनकानि—बालकों के खेलों का ज्ञान,
६२. वैनयिकीनां विद्यानां ज्ञानम्—विनय देने वाली विद्या (आचारशास्त्र) का ज्ञान,

६३. वैजयिकीनां विद्यानां ज्ञानम्—विजय दिलाने वाली विद्या (युद्धशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि) का ज्ञान, और

६४. व्यायामिकीनां विद्यानां ज्ञानम्—व्यायामविद्या।

ये कामसूत्र की अङ्गभूत चौंसठ विद्याएँ हैं ॥ १५ ॥

पाञ्चालिकी च चतुःषष्टिरपरा। तस्याः प्रयोगानन्ववेत्य सांप्रयोगिके वक्ष्यामः; कामस्य तदात्मकत्वात् ॥ १६ ॥

उक्त कलाओं से भिन्न चौंसठ पांचालिकी (पांचालदेश में प्रचलित) कलाएँ हैं। इनके प्रयोगों को साम्प्रयोगिक अधिकरण में यथावसर कहेंगे, क्योंकि काम का स्वभाव तदनुकूल ही होता है ॥ १६ ॥

आभिरभ्युच्छ्रिता वेश्या शीलरूपगुणान्विता।
लभते गणिकाशब्दं स्थानं च जनसंसदि ॥ १७ ॥

कलाज्ञान का फल—शील, रूप और गुण से युक्त वेश्या इन कलाओं से उत्कर्ष प्राप्त कर गणिका का विशिष्ट पद प्राप्त कर लेती है और उच्चस्तरीय नागरिक गोष्ठियों में स्थान पाती है ॥ १७ ॥

पूजिता सा सदा राज्ञा गुणवद्भिश्च संस्तुता।
प्रार्थनीयाभिगम्या च लक्ष्यभूता च जायते ॥ १८ ॥

राजा उसका सदैव सम्मान करता है, गुणी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और कला का ज्ञान सीखने वाले लोग प्रार्थना करते हैं, इस प्रकार वह सभी का लक्ष्यबिन्दु हो जाती है ॥ १८ ॥

योगज्ञा राजपुत्री च महामात्रसुता तथा।
सहस्रान्तःपुरमपि स्ववशे कुरुते पतिम् ॥ १९ ॥

इन कलाओं के प्रयोगों को जानने वाली राजपुत्री और मन्त्रिपुत्री (सामन्त, सरदार या उच्च वैभवसम्पन्न व्यक्ति की पुत्री) सहस्रों सपत्नियों के होने पर भी पति को अपने अधीन कर लेती है ॥ १९ ॥

तथा पतिवियोगे च व्यसनं दारुणं गता।
देशान्तरेऽपि विद्याभिः सा सुखेनैव जीवति ॥ २० ॥

और इन कलाओं में निपुण स्त्री, पति के विदेश जाने पर, वैधव्य आदि भीषण संकट आ जाने पर और अन्य देश में स्थित होने पर भी, इन विद्याओं से सुखपूर्वक जीवनयापन कर सकती है ॥ २० ॥

नरः कलासु कुशलो वाचालश्चाटुकारकः।
असंस्तुतोऽपि नारीणां चित्तमाश्वेव विन्दति ॥ २१ ॥

पुरुषो को कलाज्ञान का लाभ—उक्त कलाओं में निपुण वाचाल एवं चाटुकार पुरुष प्रशंसनीय (असाधारण) न होते हुए भी स्त्रियों के चित्त को शीघ्र ही आकृष्ट कर लेता है ॥ २१ ॥

कलानां ग्रहणादेव सौभाग्यमुपजायते।
देशकालौ त्वपेक्ष्यासां प्रयोगः सम्भवेन्न वा ॥ २२ ॥

कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने से ही पुरुष का सौभाग्य जाग उठता है। यदि देश-काल को विचार कर इनका प्रयोग किया जाये तो वह कभी निष्फल नहीं होता॥ २२॥

विद्यासमुद्देश नामक तृतीय अध्याय सम्पन्न॥

●

चतुर्थ अध्याय

नागरकवृत्तप्रकरण

गृहीतविद्यः प्रतिग्रहजयक्रयनिर्वेशाधिगतैरर्थैरन्वयागतैरुभयैर्वा गार्हस्थ्यमधिगम्य नागरकवृत्तं वर्तेत॥ १॥

प्रकरणसम्बन्ध—विद्याग्रहण किया हुआ युवक दान, विजय, व्यापार तथा भृति (नौकरी) से अथवा पैतृक सम्पत्ति से या अर्जन एवं सम्पत्ति दोनों से धन प्राप्त कर, गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर, नागरकों (रसिक या विदग्ध) के समान आचरण करे॥ १॥

नगरे पत्तने खर्वटे महति वा सज्जनाश्रये स्थानम्। यात्रावशाद्वा॥ २॥

नागरक का वास—नागरकवृत्त के निर्वाह के लिये पत्तन, नगर, महत् (पाँच सौ ग्रामों में बड़ा ग्राम) और खर्वट (दो सौ ग्रामों में बड़ा ग्राम)—इनमें से कहीं भी सज्जनों के मध्य निवास करें, अथवा जहाँ अपनी जीविका हो, वहाँ रहे॥ २॥

तत्र भवनमासन्नोदकं वृक्षवाटिकावद् विभक्तकर्मकक्षं द्विवासगृहं कारयेत्॥ ३॥

वहाँ जल के निकट, वृक्षवाटिका से सम्पन्न, वास के दो प्रकोष्ठों (बहिःप्रकोष्ठ और अन्तःप्रकोष्ठ) से युक्त घर बनावे, जिसमें भिन्न भिन्न कार्यों के लिये भिन्न भिन्न कक्ष निर्मित हों॥ ३॥

बाह्ये च वासगृहे सुश्लक्ष्णमुभयोपधानं मध्ये विनतं शुक्लोत्तरच्छदं शयनीयं स्यात्। प्रतिशय्यिका च। तस्य शिरोभागे कूर्चस्थानम् वेदिका च। तत्र रात्रिशेषमनुलेपनं माल्यं सिक्थकरण्डकं सौगन्धिकपुटिका मातुलुङ्गत्वचस्ताम्बूलानि च स्युः। भूमौ पतद्ग्रहः। नागदन्तावसक्ता वीणा। चित्रफलकम्। वर्तिकासमुद्गकः। यः कश्चित्पुस्तकः कुरण्टकमालाश्च। नातिदूरे भूमौ वृत्तास्तरणं समस्तकम्। आकर्षफलकं द्यूतफलकं च। तस्य बहिः क्रीडाशकुनिपञ्जराणि। एकान्ते च तक्षतक्षणस्थानमन्यासां च क्रीडानाम्। स्वास्तीर्णा प्रेङ्खादोला वृक्षवाटिकायां सप्रच्छाया। स्थण्डिलपीठिका च सकुसुमेति भवनविन्यासः॥ ४॥

गृहसज्जा—निवासगृह के बाह्यप्रकोष्ठ में नर्म और मुलायम (गद्देदार) पर्यङ्क (पलङ्ग) बिछा हुआ होना चाहिये, जो बीच में झुका हो। उस पर सफेद घुली हुई चादर बिछी हुई हो और सिरहाने एवं पायताने, दोनों ओर तकिये लगे हुए हों। पर्यङ्क के पास एक छोटी एवं सज्जित चारपाई रतिकर्म के लिए होनी चाहिये। उस पर्यंक के सिरहाने कूर्चस्थान पर, समान ऊँचाई पर

वेदिका होनी चाहिये। उस वेदिका पर रात्रि का अवशिष्ट अङ्गराग, पुष्पमालाएँ, मोमबत्ती, सुगन्धित पदार्थों की टोकरी (बाँस की छोटी डलिया), मातुलुङ्ग की छाल और पान रखे हुए हों। चारपाई के निकट भूमि पर पीकदान रखा हुआ हो। हाथीदाँत की खूँटी पर वीणा लटकी हुई हो। चित्र बनाने का फलक (कैनवस), कूँची (तूलिका) और रङ्गों के डिब्बे हों, कुछ पुस्तकें हों, और शीघ्र न मुरझाने वाली कुरण्टक पुष्प की माला हो। पास ही भूमि पर गोल आसन बिछा हुआ हो जिसके पीछे मसनद (गोल तकिया) लगा हुआ हो। द्यूतक्रीड़ा के लिये आकर्षफलक और द्यूतफलक हों। उसके बाहर क्रीड़ापक्षी (शुकसारिका आदि) पिंजड़ों में टँगे हुए हों। एकान्त में दारुकर्म (बढ़ईगिरी) तथा अन्य मनोविनोदों के लिए स्थान हों। वृक्षवाटिका में सघन छाया वाले लतामण्डप में झूला पड़ा हुआ हो। वहाँ बैठने के लिये पुष्पों से युक्त वेदिकाएँ या चबूतरे (बैंच) बने हों—इस प्रकार भवन-विन्यास समाप्त हुआ॥ ४॥

स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्यः, गृहीतदन्तधावनः, मात्रयानुलेपनं धूपं स्त्रजमिति च गृहीत्वा, दत्त्वा सिक्थकमलक्तकं च, दृष्ट्वादर्शे मुखम्, गृहीतमुखवास-ताम्बूलः, कार्याण्यनुतिष्ठेत्॥ ५॥

नित्यकृत्य : दिनचर्या—नागरक को प्रातःकाल उठकर, शौचादि से निवृत्त होकर, दन्तधावन (मञ्जन या दातुन) करके उचित मात्रा में मस्तक पर चन्दन लगाकर, केशों को धूप से धूपित कर, माला धारण कर, मोम और आलता लगाकर, दर्पण में मुख देखकर और सुवासित ताम्बूल खाकर दैनिक कार्यों में लगना चाहिये॥ ५॥

नित्यं स्नानम्। द्वितीयकमुत्सादनम्। तृतीयकः फेनकः। चतुर्थकमायुष्यम्। पञ्चमकं दशमकं वा प्रत्यायुष्यमित्यहीनम्। सातत्याच्च संवृतकक्षास्वेदापनोदः॥ ६॥

शरीरसंस्कार (स्नानादि)—नायक नित्य स्नान करे, दूसरे दिन सुगन्धित तैल की मालिश कराये, तीसरे दिन फेनक (साबुन) लगाये। चौथे दिन दाढ़ी-मूँछ कटाये। पाँचवें या दसवें दिन गुह्याङ्गों के बाल कटवाये। ढँकी हुई काँखों के पसीने को निरन्तर साफ करता रहे॥ ६॥

पूर्वाह्णापराह्णयोर्भोजनम्। सायं चारायणस्य॥ ७॥

भोजनकाल—भोजन पूर्वाह्ण और अपराह्ण में दो बार करना चाहिये, किन्तु आचार्य चारायण की मान्यता है कि दूसरा भोजन सायंकाल ही श्रेयस्कर है॥ ७॥

भोजनानन्तरं शुकसारिकाप्रलापनव्यापाराः। लावककुक्कुटमेषयुद्धानि तास्ताश्च कलाक्रीडाः। पीठमर्दविटविदूषकायत्ता व्यापाराः। दिवाशय्या च॥ ८॥

भोजनानन्तर व्यापार—प्रथम भोजन के पश्चात् शुक-सारिकाओं से वार्ता—अशिक्षित को शिक्षित करना और शिक्षित को बुलवाना या वार्ता करना—लावक, कुक्कुट (मुर्गा) और भेड़ का युद्ध देखना—इस प्रकार की विभिन्न कलाक्रीड़ाओं से मनोविनोद करना चाहिये। नर्मकेलि के सहायक पीठमर्द, विट और विदूषक के अधीन कार्यकलापों का निरीक्षण करे और आवश्यकतानुरूप हल्का शयन करे॥ ८॥

गृहीतप्रसाधनस्यापराह्णे गोष्ठीविहाराः॥ ९॥

आपराह्णिक कार्यव्यापार—अपराह्ण में नागरक को वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर गोष्ठीविहार करना चाहिये—यह दिनचर्या है ॥ ९ ॥

प्रदोषे च सङ्गीतकानि। तदन्ते च प्रसाधिते वासगृहे सञ्चारितसुरभिधूपे ससहायस्य शय्यायामभिसारिकाणां प्रतीक्षणम्॥ १० ॥

रात्रिचर्या—और प्रदोषकाल में सङ्गीत से मनोविनोद करे। इसके पश्चात् सुसज्जित और धूपादि से सुवासित वासगृह में अपने सहायकों (पीठमर्द, विट, विदूषक आदि) के साथ अभिसारिकाओं के आगमन की प्रतीक्षा करे ॥ १० ॥

दूतीनां प्रेषणम्, स्वयं वा गमनम्॥ ११ ॥

अभिसारप्रसङ्ग—संकेत तय न होने पर दूती को भेजे, अथवा नायिका के आमन्त्रण पर स्वयं वहाँ जाये ॥ ११ ॥

आगतानां च मनोहरैरालापैरुपचारैश्च ससहायस्योपक्रमाः ॥ १२ ॥

आयी हुई अभिसारिकाओं का मित्रों सहित प्रीतिमय वार्तालाप और रससिक्त व्यवहार से स्वागत करे ॥ १२ ॥

वर्षप्रमृष्टनेपथ्यानां दुर्दिनाभिसारिकाणां स्वयमेव पुनर्मण्डनम्, मित्रजनेन वा परिचरणमित्याहोरात्रिकम्॥ १३ ॥

यदि पावस में आने वाली अभिसारिकाओं का वर्षा की बूँदों से शृङ्गार बिगड़ गया हो, तो स्वयं ही उनका शृङ्गार करे, अथवा मित्रों से उनकी परिचर्या कराये—इस प्रकार यह दिनचर्या और रात्रिचर्या समाप्त हुई ॥ १३ ॥

घटानिबन्धनम्, गोष्ठीसमवायः, समापानकम्, उद्यानगमनम्, समस्याः क्रीडाश्च प्रवर्तयेत्॥ १४ ॥

नैमित्तिक कृत्य—घटानिबन्धन (देवालय में सामूहिक नृत्यगान का आयोजन), गोष्ठीसमवाय (नागरकों की कलाविषयक गोष्ठियाँ), समापानक (सामूहिक पान-व्यवस्था), उद्यानगमन (उपवनविहार) और समस्याक्रीड़ा—नागरक को इन सामूहिक विनोदक्रीड़ाओं में यथावसर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ १४ ॥

पक्षस्य मासस्य वा प्रज्ञातेऽहनि सरस्वत्या भवने नियुक्तानां नित्यं समाजः ॥ १५ ॥

घटानिबन्धन—पक्ष या मास के अन्तिम दिन, अथवा लोकप्रसिद्ध दिन में सरस्वतीभवन में नागरकगण एकत्र हों ॥ १५ ॥

कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः। द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजा नियतं लभेरन्। ततो यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा। व्यसनोत्सवेषु चैषां परस्परस्यैक-कार्यता ॥ १६ ॥

धूपविलेपन घटा—आगन्तुक नट, नर्तक, कलाकारों को चाहिये कि वे पहले दिन अपना कौशल दिखायें और दूसरे दिन निर्धारित पुरस्कार प्राप्त करें। इसके पश्चात् श्रद्धानुरूप नागरकगण उन्हें कलाकौशल दिखाने के लिये रोक लें, अथवा विदा कर दें। स्थानीय और

आगन्तुक कलाकारों में सुख-दुःख में परस्पर ऐक्य और सहयोग होना चाहिये, अर्थात् स्थानीय एवं आगन्तुक कलाकार सुख-दुःख में परस्पर स्नेह-सहयोग रखें॥ १६॥

आगन्तुकनां च कृतसमवायानां पूजनमभ्युपपत्तिश्च। इति गणधर्मः॥ १७॥

उत्सव में सम्मिलित होने हेतु बाहर से आये हुये नागरकों का परिषद् के नागरकों को सत्कार करना चाहिये, तथा सङ्कट पड़ने पर यथावश्यक सहायता करनी चाहिये—यह गण-धर्म है॥ १७॥

एतेन तं तं देवताविशेषमुद्दिश्य सम्भावितस्थितयो घटा व्याख्याताः॥ १८॥

इस सरस्वती के उत्सव की व्यवस्था से ही, शिव, गणेश, कामदेव आदि देवताओं को लक्ष्य कर आयोजित उत्सवों की व्यवस्था भी कह दी गयी है॥ १८॥

वेश्याभवने सभायामन्यतमस्योद्वसिते वा समानविद्याबुद्धिशीलवित्तवयसां सह वेश्याभिरनुरूपैरालापैरासनबन्धो गोष्ठी॥ १९॥

गोष्ठीसमवाय—वेश्या के घर में, सभाभवन में अथवा परस्पर एक-दूसरे के निवासस्थल पर विद्या, बुद्धि, शील, वित्त और अवस्था में समानता रखने वाले आत्मीय सहचरों के साथ गोष्ठीसमवाय करना चाहिये, अर्थात् वेश्याओं या कलामर्मज्ञों के साथ यथायोग्य आसनों पर बैठकर तदनुरूप आलाप से ज्ञानार्जन करना चाहिये॥ १९॥

तत्र चैषां काव्यसमस्या कलासमस्या वा॥ २०॥

इस गोष्ठी में काव्य या कला की किसी गहन समस्या पर सभी को मिलकर विचार करना चाहिये॥ २०॥

तस्यामुज्ज्वला लोककान्ताः पूज्याः। प्रीतिसमानाश्चाहारिताः॥ २१॥

इस गोष्ठी में कलानिपुण और लोकविख्यात कलाकारों, जिन तक जनसाधारण की पहुँच नहीं है, का वस्त्रादि से सम्मान होना चाहिये, तथा आमन्त्रित अतिथियों का प्रीत्यनुरूप सम्मान किया जाना चाहिये॥ २१॥

परस्परभवनेषु चापानकानि॥ २२॥

समापानक—परस्पर एक-दूसरे के निवास पर जाकर पानगोष्ठियाँ होनी चाहिये॥ २२॥

तत्र मधुमैरेयसुरासवान् विविधलवणफलहरितशाकतिक्तकटुकाम्लोप-दंशान् वेश्याः पाययेयुरनुपिबेयुश्च॥ २३॥

पानविधि—इन गोष्ठियों में वेश्याएँ मधु, मैरेय, सुरा और आसव आदि मद्यों को, पान की रुचि जगाने वाले विविध प्रकार के नमकीन, फल, हरे शाक, तिक्त, कड़ुए और खट्टे भक्ष्यों के साथ नागरकों को पिलाएँ, बाद में स्वयं भी पियें॥ २३॥

एतेनोद्यानगमनं व्याख्यातम्॥ २४॥

इसी प्रकार उद्यानविहार में भी समापानक होना चाहिये॥ २४॥

पूर्वाह्ण एव स्वलंकृतास्तुरगाधिरूढा वेश्याभिः सह परिचारकानुगता गच्छेयुः। दैवसिकीं च यात्रां तत्रानुभूय कुक्कुटयुद्धद्यूतैः प्रेक्षाभिरनुकूलैश्च चेष्टितैः कालं गमयित्वा अपराह्णे गृहीततदुद्यानोपभोगचिह्नास्तथैव प्रत्याव्रजेयुः॥ २५॥

उद्यानविहार—प्रात:काल ही वस्त्राभूषणों से सज्जित तथा घोड़े पर सवार होकर वेश्याओं और सेवकों के साथ उद्यान-विहार के लिए जाना चाहिये। यह विहार दिन-भर का होना चाहिये। वहाँ कुक्कुटयुद्ध, द्यूतक्रीड़ा, नृत्य-गीत-सङ्गीत का आनन्द, शृङ्गारिक हास-परिहास आदि में समय बिताकर अपराह्नकाल में उद्यानविहार के स्मृतिचिह्नों (फल, फूल, स्तवक आदि) को लेकर उसी प्रकार वापस लौट आना चाहिये॥ २५॥

एतेन रचितोद्ग्राहोदकानां ग्रीष्मे जलक्रीडागमनं व्याख्यातम्॥ २६॥

जलक्रीड़ा—उद्यानविहार के समान ही ग्रीष्मकाल में जलविहार भी करना चाहिये, लेकिन यह उन कृत्रिम सरोवरों में ही होना चाहिये, जहाँ मगरमच्छ आदि का भय न हो॥ २६॥

यक्षरात्रिः। कौमुदीजागरः। सुवसन्तकः॥ २७॥

समस्याक्रीड़ा—यक्षरात्रि (दीपावली), कौमुदीजागर (शरत्पूर्णिमा) और सुवसन्तक पर्वों पर समस्याक्रीड़ा रखी जाती हैं॥ २७॥

सहकारभञ्जिका, अभ्यूषखादिका, बिसखादिका, नवपत्रिका, उदकक्ष्वेडिका, पाञ्चालानुयानम्, एकशाल्मली, कदम्बयुद्धानि, तास्ताश्च माहिमान्यो देश्याश्च क्रीडा जनेभ्यो विशिष्टमाचरेयुः। इति सम्भूयक्रीडाः॥ २८॥

आंचलिक क्रीड़ा—सहकारभञ्जिका (वृक्ष से आम तोड़ना), अभ्यूषखादिका (कच्चे फलों को भूनकर खाना), बिसखादिका (कमलदण्ड खाना), नवपत्रिका (किसलयों से शृङ्गार), उदकक्ष्वेड़िका (बाँस की पोरी में जल भरकर सिंहनाद करना), पाञ्चालानुयान (शालभञ्जिका या कठपुतली नृत्य), एकशाल्मली (शाल्मली वृक्ष पर क्रीड़ा करना), कदम्बयुद्ध (कदम्ब के फूलों से प्रहार करना)—इन आंचलिक और सार्वदेशिक क्रीड़ाओं को नागरकगण अपनी रुचि के अनुरूप खेलें। सामूहिक क्रीड़ाओं का वर्णन समाप्त हुआ॥ २८॥

एकचारिणश्च विभवसामर्थ्याद्॥ २९॥

एकचर्या—यदि अकेला रहने वाला हो तो अपने वैभव के अनुरूप ही क्रीड़ा करे॥ २९॥

गणिकाया नायिकायाश्च सखीभिर्नागरकैश्च सह चरितमेतेन व्याख्यातम्॥ ३०॥

इससे नागरकों के साथ ही गणिकाओं, नायिकाओं और सखियों का चरित भी कह दिया गया है, अर्थात् एकाकी होने पर गणिकाएँ, नायिकाएँ और सखियाँ भी अपने वैभव के अनुरूप ही सेवक-सहचरों के साथ उत्सव मनायें॥ ३०॥

अविभवस्तु शरीरमात्रो मल्लिकाफेनककषायमात्रपरिच्छदः पूज्याद्देशादागतः कलासु विचक्षणस्तदुपदेशेन गोष्ठ्यां देशोचिते च वृत्ते साधयेदात्मानमिति पीठमर्दः॥ ३१॥

उपनागरकवृत्त—पूज्य (सांस्कृतिक वैभव-सम्पन्न) देश से आगत एवं कलाओं में निपुण नागरक, जो धनविहीन हो और जिसके पास मल्लिका (बैठने में सहारा देने वाली लकड़ी), फेनक (साबुन), कषाय (सुगन्धित द्रव्य) मात्र शेष रह गये हों तथा जो

नागरकगोष्ठियों में कलाओं के उपदेश से और वेश्याओं को उनके लिए हितकर परामर्श से जीविका चलाये, उसे पीठमर्द कहते हैं ॥ ३१ ॥

भुक्तविभवस्तु गुणवान् सकलत्रो वेशे गोष्ठ्यां च बहुमतस्तदुपजीवी च विटः ॥ ३२ ॥

जो नागरकवृत्त भोग कर कारणवश वैभवहीन हो गया हो, नागरक गुणों से सम्पन्न एवं स्त्रीयुक्त हो, वेश्याओं एवं नागरकगोष्ठियों में जिसका बहुमान हो और उन्हीं से जीविका चलाता हो, वह विट कहलाता है ॥ ३२ ॥

एकदेशविद्यस्तु क्रीडनको विश्वास्यश्च विदूषकः। वैहासिको वा ॥ ३३ ॥

जो व्यक्ति सभी विद्याओं या कलाओं का अङ्गमात्र जानता हो, लोगों के मनोविनोद का साधन हो, तथा नायक का विश्वासपात्र हो, उसे **विदूषक** कहते हैं। हँसाते रहने के कारण वह **वैहासिक** भी कहा जाता है ॥ ३३ ॥

एते वेश्यानां नागरकाणां च मन्त्रिणः सन्धिविग्रहनियुक्ताः ॥ ३४ ॥

ऐसे व्यक्ति (पीठमर्द, विट और विदूषक) वेश्याओं और नागरकों के मन्त्री होते हैं तथा सन्धि और विग्रह में नियुक्त रहते हैं ॥ ३४ ॥

तैर्भिक्षुक्यः कलाविदग्धा मुण्डा वृषल्यो वृद्धगणिकाश्च व्याख्याताः ॥ ३५ ॥

इन उपनागरिकों (पीठमर्द, विट एवं विदूषक) के समान कलानिपुण भिक्षुणी, कुलटा और वृद्ध वेश्याएँ भी कह दी गयी हैं ॥ ३५ ॥

ग्रामवासी च सजातान्विचक्षणान् कौतूहलिकान् प्रोत्साह्य नागरकजनस्य वृत्तं वर्णयञ्श्रद्धां च जनयंस्तदेवानुकुर्वीत, गोष्ठीश्च प्रवर्तयेत्। सङ्गत्या जनमनुरञ्जयेत्। कर्मसु च साहाय्येन चानुगृह्णीयात्। उपकारयेच्च। इति नागरकवृत्तम् ॥ ३६ ॥

यदि नागरक को परिस्थितिवश ग्रामवास करना पड़े, तो सजातीय, बुद्धिमान् एवं कुतूहल रखने वाले व्यक्तियों को प्रोत्साहित कर, नागरकजनों के आचरण सुनाकर, श्रद्धा उत्पन्न करके नागरकजीवन व्यतीत करने के लिये प्रोत्साहित करे। नागरकगोष्ठियों का आयोजन करे और अपने सम्पर्क से उन्हें अनुरञ्जित करे। उनके कार्यों में सहयोग कर उन्हें अनुगृहीत एवं उपकृत करता रहे। नागरकवृत्त प्रकरण समाप्त हुआ है ॥ ३६ ॥

नात्यन्तं संस्कृतेनैव नात्यन्तं देशभाषया।
कथां गोष्ठीषु कथयंल्लोके बहुमतो भवेत् ॥ ३७ ॥

इस विषय में आनुवंश्य श्लोक कहते हैं—काव्य और कलाविषयक गोष्ठियों में न अत्यन्त संस्कृत भाषा ही बोली जाये और न ठेठ देशी भाषा (स्थानीय बोली) ही, अपितु मिश्रित भाषा का प्रयोग किया जाये; क्योंकि इसी से वक्ता सर्वमान्य होता है ॥ ३७ ॥

या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी।
परहिंसात्मिका या च न तामवतरेद् बुधः ॥ ३८ ॥

त्याज्य गोष्ठी—जिस गोष्ठी में ईर्ष्यालु व्यक्ति हों, जहाँ निरंकुश कार्यवाही चलती हो, और जहाँ पराक्षेप या परहानि की चेष्टाएँ की जायें, उनमें बुद्धिमान् व्यक्ति को सम्मिलित नहीं होना चाहिये ॥ ३८ ॥

लोकचित्तानुवर्तिन्या क्रीडामात्रैककार्यया।
गोष्ठ्या सहचरन् विद्वांल्लोके सिद्धिं नियच्छति॥ ३९॥

श्रेष्ठ गोष्टी—जो गोष्ठी लोकरुचि का अनुकरण करने वाली है और जिसका प्रयोजन विशुद्ध मनोविनोद ही, है, उससे साहचर्य रखने वाला लोक में प्रसिद्धि प्राप्त करता है॥ ३९॥

नागरकवृत्त प्रकरण नामक चतुर्थ अध्याय सम्पन्न॥

●

पञ्चम अध्याय

नायकसहायदूतकर्मविमर्श नामक प्रकरण

कामश्चतुर्षु वर्णेषु सवर्णतः शास्त्रतश्चानन्यपूर्वायां प्रयुज्यमानः पुत्रीयो यशस्यो लौकिकश्च भवति॥ १॥

नायिकाविचार—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णों में से किसी भी वर्ग वाले पुरुष का सवर्णा कुमारी में शास्त्रीय विधानपूर्वक प्रयुज्यमान (प्रवृत्त हुआ) काम ही और पुत्र और यश का कारण तथा लोकधर्म के अनुकूल होता है॥ १॥

तद्विपरीत उत्तमवर्णासु परपरिगृहीतासु च। प्रतिषिद्धोऽवरवर्णास्वनिरवसितासु। वेश्यासु पुनर्भूषु च न शिष्टो न प्रतिषिद्धः। सुखार्थत्वात्॥ २॥

अपने से उच्चवर्ग की या परोढ़ा (अन्य द्वारा विवाहित) स्त्री में प्रयुज्यमान काम इसके विपरीत है, अर्थात् लोकविरुद्ध भी है और अपयश का कारण भी। इसी प्रकार अपने से निम्न वर्ग की या पात्रबहिष्कृत स्त्रियों में भी काम निषिद्ध है। वेश्याओं और पुनर्भू स्त्रियों में कामसम्बन्ध न तो विहित है और न निषिद्ध ही, क्योंकि उनसे कामसम्बन्ध तो मात्र रतिसुख के लिये है, न सन्तानोत्पत्ति के लिये है और न धार्मिक कृत्यों के लिये॥ २॥

तत्र नायिकास्तिस्रः—कन्या, पुनर्भूर्वेश्या च इति॥ ३॥

नायिका विचार—फल की दृष्टि से नायिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं—कन्या, पुनर्भू और वेश्या॥ ३॥

अन्यकारणवशात् परपरिगृहीतापि पाक्षिकी चतुर्थीति गोणिकापुत्रः॥ ४॥

अन्य कारणों से कथित नायिकाएँ—अन्य कारणवश परकीया (परनारी) भी चतुर्थी नायिका होती हैं—ऐसा गोणिकापुत्र कहते हैं। परदारा पाक्षिकी नायिका है, अर्थात् यह विशिष्ट परिस्थितियों में ही अनुमत है, सामान्य रूप में नहीं॥ ४॥

स यदा मन्यते स्वैरिणीयम्॥ ५॥

नायक जब पूर्णतः आश्वस्त हो कि यह स्वैरिणी (व्यभिचारिणी) है, पतिव्रता नहीं॥ ५॥

अन्यतोऽपि बहुशो व्यवसितचारित्रा तस्यां वेश्यायामिव गमनमुत्तमवर्णिन्यामपि न धर्मपीडां करिष्यति॥ ६॥

व्यभिचारिणी के साथ अवैध सम्बन्धों का औचित्य—क्योंकि उसका चरित्र अनेक

लोगों द्वारा पहले ही भ्रष्ट किया जा चुका है, भले ही वह उत्तम वर्ण की भी क्यों न हो, उसके साथ वेश्या के समान गमन करे—यह गमन धर्म में बाधक न होगा॥ ६॥

पुनर्भूरियम् अन्यपूर्वावरुद्धा नात्र शङ्कास्ति॥ ७॥

पूनर्भू और रक्षिता (रखैल) के विषय में तो शंका ही नहीं करनी चाहिये, अर्थात् इनके साथ गमन में अधर्म की आशंका ही नहीं है॥ ७॥

पतिं वा महान्तमीश्वरमस्मदमित्रसंसृष्टमियमवगृह्य प्रभुत्वेन चरति। सा मया संसृष्टा स्नेहादेनं व्यावर्तयिष्यति॥ ८॥

परकीया-गमन के कारण—इसका पति समृद्ध एवं प्रतिष्ठित है, और हमारे शत्रुओं के साथ मिला हुआ है। यह उस (पति) के साथ स्वामी के समान व्यवहार करती है। यह मुझसे मिलकर प्रेमवश अपने पति का उस शत्रु से सम्बन्ध-विच्छेद करा देगी॥ ८॥

विरसं वा मयि शक्तमपकर्तुकामं च प्रकृतिमापादयिष्यति॥ ९॥

अथवा जो व्यक्ति स्वार्थवश मुझसे विरक्त हो गया है और मेरा अपकार करने की इच्छा रखता है, मुझसे सम्बन्ध होने पर यह अपने समर्थ पति को पूर्ववत् मित्र बना देगी या तटस्थ कर देगी॥ ९॥

तया वा मित्रीकृतेन मित्रकार्यममित्रप्रतीघातमन्यद्वा दुष्प्रतिपादकं कार्यं साधयिष्यामि॥ १०॥

अथवा उससे मिल जाने पर, उसके पति को मित्र बनाकर, मित्रों के कार्य या शत्रुओं के विनाश अथवा अन्य कठिन कार्यों को सिद्ध कर लूँगा॥ १०॥

संसृष्टो वानया हत्वास्याः पतिमस्मद्धाव्यं तदैश्वर्यमेवमधिगमिष्यामि॥ ११॥

अथवा उससे सम्पर्क हो जाने पर उसके पति की हत्या करके, उसके द्वारा अपहृत अपने ऐश्वर्य को प्राप्त कर लूँगा॥ ११॥

निरत्ययं वास्या गमनमर्थानुबद्धम्। अहं च निःसारत्वात् क्षीणवृत्त्युपायः। सोऽहमनेनोपायेन तद्धनमतिमहदकृच्छ्रादधिगमिष्यामि॥ १२॥

अथवा धन की लालसा से परकीयागमन भी दोषपूर्ण नहीं है। मैं निर्धन हूँ, जीविका का कोई साधन भी नहीं है, इसलिए मैं संसर्गरूपी उपाय से उसके धन को सरलता से प्राप्त कर लूँगा॥ १२॥

मर्मज्ञा वा मयि दृढमभिकामा सा मामनिच्छन्तं दोषविख्यापनेन दूषयिष्यति॥ १३॥

अथवा वह मेरे रहस्यों को जानती है और मुझ पर दृढ़तापूर्वक अनुरक्त भी है। अतः यदि मैं उससे अनासक्त हो जाऊँगा, तो मेरे दोषों का प्रचार करके संसार में मुझे कलङ्कित कर देगी॥ १३॥

असद्भूतं वा दोषं श्रद्धेयं दुष्परिहारं मयि क्षेप्स्यति येन मे विनाशः स्यात्॥ १४॥

अथवा यह मिथ्यादोष कहकर मुझ पर ऐसे गम्भीर आरोप लगायेगी जिनका परिहार कठिन हो जायेगा, और मेरा व्यक्तित्व एवं भविष्य नष्ट हो जायेगा॥ १४॥

आयतिमन्तं वा वश्यं पतिं मत्तो विभिद्य द्विषतः संग्राहयिष्यति॥ १५॥

अथवा वह अपने प्रभावशाली और वशवर्ती गति को मुझसे अलग कर उसकी मेरे शत्रुओं से मैत्री करा देगी, इसलिये उससे सम्पर्क स्थापित करना उचित ही हैं॥ १५॥

स्वयं वा तैः सह संसृज्येत। मदवरोधानां वा दूषयिता पतिरस्यास्तदस्याहमपि दारानेव दूषयन् प्रतिकरिष्यामि॥ १६॥

अथवा उसके पति ने मेरी स्त्रियों को दूषित किया है, मैं भी इसकी स्त्रियों को दूषित कर प्रतिशोध करूँगा—यह विचार कर उन समर्थों के साथ स्वयं ही मिले॥ १६॥

राजनियोगाच्चान्तर्वर्तिनं शत्रुं वास्य निर्हनिष्यामि॥ १७॥

अथवा राजा द्वारा नियुक्त मैं इससे सम्पर्क स्थापित कर इसके हृदयस्थित रहस्य (या भूमिगत शत्रु) को समझ सकूँगा और राजशत्रु को मार डालूँगा॥ १७॥

यामन्यां कामयिष्ये सास्या वशगा। तामनेन संक्रमेणाधिगमिष्यामि॥ १८॥

अथवा मैं जिस स्त्री की कामना करता हूँ, वह इसके अधीन है। इससे सम्पर्क स्थापित कर मैं उसे प्राप्त कर सकूँगा॥ १८॥

कन्यामलभ्यां वात्माधीनामर्थरूपवतीं मयि संक्रामयिष्यति॥ १९॥

अथवा अनुपम सुन्दरी एवं वैभवशाली, फलतः मेरे लिये सर्वथा अलभ्य कन्या इसके अधीन है। इससे सम्पर्क होने पर यह मुझे उससे मिला देगी॥ १९॥

ममामित्रो वास्याः पत्या सहैकीभावमुपगतस्तमनया रसेन योजयिष्यामीत्येव-मादिभिः कारणैः परस्त्रियमपि प्रकुर्वीत॥ २०॥

अथवा मेरा शत्रु इसके पति के साथ मैत्रीभाव रखता है। मैं इससे सम्पर्क स्थापित कर, इसके हाथों उस (शत्रु) को विष देने की योजना बनाऊँगा—इत्यादि कारणों से परकीया से सम्बन्ध करे॥ २०॥

इति साहसिक्यं न केवलं रागादेव। इति परपरिग्रहगमनकारणानि॥ २१॥

विशेष कारण के अभाव में, मात्र विषयोपभोग के लिये परकीया—गमन नहीं करना चाहिये। परकीया-गमन के कारण समाप्त हुए॥ २१॥

एतैरेव कारणैर्महामात्रसंबद्धा राजसंबद्धा वा तत्रैकदेशचारिणी काचिदन्या वा कार्यसंपादिनी विधवा पञ्चमीति चारायणः॥ २२॥

विधवा—-इन्हीं कारणों से, महामात्र—महामात्य, सामन्त-सरदार, सेनापति आदि — राजा या उनके परिवारों से सम्बद्ध, अथवा किसी अन्य परिवार से सम्बद्ध, कार्य करा देने वाली विधवा पाँचवीं (कन्या, पुनर्भू, वेश्या और परकीया के अतिरिक्त) नायिका है—ऐसा चारायण का मत है॥ २२॥

सैव प्रव्रजिता षष्ठीति सुवर्णनाभः॥ २३॥

परिव्राजिका (संन्यासिनी) बनी विधवा छठी नायिका है—ऐसा आचार्य सुवर्णनाभ का मत है॥ २३॥

गणिकाया दुहिता परिचारिका वानन्यपूर्वा सप्तमीति घोटकमुखः ॥ २४ ॥

वेश्यापुत्री—वेश्या की अक्षतयोनि लड़की या परिचारिका सातवीं नायिका है—ऐसा आचार्य घोटकमुख का मत है ॥ २४ ॥

उत्क्रान्तबालभावा कुलयुवतिरुपचारान्यत्वादष्टमीति गोनर्दीयः ॥ २५ ॥

कुलीन युवती—बाल्यावस्था को छोड़कर युवावस्था में प्रवेश करती हुई और विशेष उपचारों से प्राप्य कुलीन युवती आठवीं नायिका है—ऐसा आचार्य गोनर्दीय का मत है ॥ २५ ॥

कार्यान्तराभावादेतासामपि पूर्वास्वेवोपलक्षणम्, तस्माच्चतस्त्र एव नायिका इति वात्स्यायनः ॥ २६ ॥

क्योंकि विधवा, परिव्राजिका, वेश्यापुत्री और कुलीन युवती—इनका भिन्न कार्य नहीं है, इसलिये इनका कन्या, पुनर्भू, वेश्या और परकीया—इन चारों में अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिये नायिकाएँ चार ही हैं—ऐसा वात्स्यायन का मत है ॥ २६ ॥

भिन्नत्वात् तृतीया प्रकृतिः पञ्चमीत्येके ॥ २७ ॥

स्त्री-पुरुष से भिन्न नपुंसक (हिजड़ा) पाँचवीं नायिका है—ऐसा कुछ आचार्यों का मत है ॥ २७ ॥

एक एव तु सार्वलौकिको नायकः। प्रच्छन्नस्तु द्वितीयः। विशेषालाभात्। उत्तमाधममध्यमतां तु गुणागुणतो विद्यात्। ताँस्तूभयोरपि गुणागुणान् वैशिके वक्ष्यामः ॥ २८ ॥

नायकविचार—प्रथम नायक तो पति ही हैं जो सर्वत्र प्रसिद्ध है। उपपति दूसरा नायक है, जो विशेष प्रयोजन के लिये प्रच्छन्न सम्बन्ध रखता है। ये गुण-दोषों के न्यूनाधिक्य के कारण उत्तम, मध्यम और अधम कहलाते हैं। नायक और नायिका, दोनों के गुणदोषों को वैशिक अधिकरण में कहेंगे ॥ २८ ॥

अगम्यास्त्वेवैताः—कुष्ठिन्युन्मत्ता पतिता भिन्नरहस्या प्रकाशप्रार्थिनी गतप्राय-यौवनातिश्वेतातिकृष्णा दुर्गन्धा संबन्धिनी सखी प्रव्रजिता संबन्धिसखिश्रोत्रिय-राजदाराश्च ॥ २९ ॥

अगम्य स्त्रियाँ—कन्यादि का निरूपण करते समय उनकी ग्राह्यता, अग्राह्यता पर विचार नहीं किया था, इसलिये यहाँ अगम्या (सहवास के अयोग्य) स्त्रियों का उल्लेख कर गम्याओं को स्पष्ट करते हैं—

कोढ़िन, उन्मत्ता (पागल), पतिता (जाति, धर्म या समाज से बहिष्कृत), रहस्यों को प्रकटित कर देने वाली, लज्जाविहीना, गतयौवना (व्यतीत यौवन वाली), अतिश्वेता (अधिक गोरी), अतिकृष्णा (अधिक काली), दुर्गन्धा (बुरी गन्धवाली), सम्बन्धिनी, सखी (अपनी या पत्नी की सहेली), परिव्राजिका (संन्यासिनी) और सम्बन्धियों, मित्रों, ब्राह्मणों (विद्वानों) और राजपरिवार की स्त्रियाँ—ये तेरह प्रकार की स्त्रियाँ गम्य (सहवास के योग्य) नहीं हैं ॥ २९ ॥

दृष्टपञ्चपुरुषा नागम्या काचिदस्तीति बाभ्रवीयाः ॥ ३० ॥

यदि कोई स्त्री पाँच पुरुषों से सम्बन्ध स्थापित कर चुकी हो, तो वह अगम्या नहीं है—ऐसा बाभ्रव्यीय आचार्यों का मत है ॥ ३० ॥

संबन्धिसखिश्रोत्रियराजदारवर्जमिति गोणिकापुत्रः ॥ ३१ ॥

आचार्य गोणिकापुत्र बाभ्रव्यीय मत में संशोधन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—यदि पाँच पुरुषों से सम्बन्ध स्थापित कर चुकने वाली स्त्री अपनी सम्बन्धिनी, सखी, वेदपाठी और राजा की स्त्री हो, तो उसे अगम्या ही समझना चाहिये ॥ ३१ ॥

सहपांसुक्रीडितमुपकारसम्बद्धं समानशीलव्यसनं सहाध्यायिनं यश्चास्य मर्माणि रहस्यानि च विद्यात्, यस्य चायं विद्याद्वा धात्रपत्यं सहसंवृद्धं मित्रम् ॥ ३२ ॥

स्नेहमित्र—सहायक तीन प्रकार से हो सकते हैं—स्नेह से, गुण से और जाति से। इनमें सर्वप्रथम स्नेहमित्रों को कहते हैं—जिसके साथ बचपन में धूल में खेले हों, जो उपकार से बँधा हों, जो शील और स्वभाव में समान हो, जिसके साथ अध्ययन किया हो, जो सारे रहस्यों से अवगत हो, जिससे कोई रहस्य छिपाया न गया हो, जिसके रहस्यों को नायक जानता हो, जो एक ही धाय की गोद में पले हों, और जो एक ही ग्राम में साथ साथ पले हों—ये नौ प्रकार के स्नेहमित्र होते हैं ॥ ३२ ॥

पितृपैतामहमविसंवादकमदृष्टवैकृतं वश्यं ध्रुवमलोभशीलमपरिहार्यममन्त्रविस्रावीति मित्रसम्पत् ॥ ३३ ॥

गुणी मित्र—अब मित्रों के गुणों को कहते हैं—जिनके साथ स्नेह-सम्बन्ध पैतृक रूप में चला आ रहा हो, जिसके साथ कभी विवाद न होता हो, जिनके स्वभाव और चरित्र में कोई विकार न देखा गया हो, जो एक-दूसरे के वशीभूत हों, जिन्हें किसी प्रकार का लोभ न हो, जो सदाचार का त्याग न करते हों, और जो रहस्यों को गुप्त रखते हों—इन गुणों से युक्त व्यक्तियों को मित्र बनाना चाहिये ॥ ३३ ॥

रजकनापितमालाकारगान्धिकसौरिकभिक्षुकगोपालकताम्बूलिकसौवर्णिकपीठमर्दविटविदूषकादयो मित्राणि। तद्योषिन्मित्राश्च नागरकाः स्युरिति वात्स्यायनः ॥ ३४ ॥

जातिमित्र—धोबी, नाई, माली, गन्धी, सौरिक (मदिराविक्रेता), भिक्षुक, ग्वाला, तमोली (पानविक्रेता), सुनार, पीठमर्द, विट, विदूषक आदि नायक और नायिका को मिलाने में मित्र हो सकते हैं। इन धोबी, नाई आदि की स्त्रियों को भी नागरकों को मित्र बनाना चाहिये, क्योंकि सम्बन्ध स्थापित कराने में स्त्रियाँ अधिक सहायक हो सकती हैं—यह वात्स्यायन का मत है ॥ ३४ ॥

यदुभयोः साधारणमुभयत्रोदारं विशेषतो नायिकायाः सुविस्रब्धं तत्र दूतकर्म ॥ ३५ ॥

दूत-कर्म के योग्य—जो व्यक्ति नायक और नायिका—दोनों के प्रति उदार भाव रखता हो, और विशेषतः नायिका का विश्वासपात्र हो, वही मित्र दूतकर्म के उपयुक्त होता है, अर्थात् उसे ही दूत बनाना चाहिये ॥ ३५ ॥

पटुता धार्ष्ट्यमिङ्गिताकारज्ञता प्रतारणकालज्ञता विषह्यबुद्धित्वं लध्वी प्रतिपत्तिः सोपाया चेति दूतगुणाः ॥ ३६ ॥

दूत के गुण—वाक्पटुता, धृष्टता, इंगित और चेष्टाओं को समझने का ज्ञान, प्रोत्साहन काल का ज्ञान, सन्दिग्ध विषयों में शीघ्र निश्चय करने वाली बुद्धि, छोटे उपायों से बड़ी कार्यसिद्धि की क्षमता और सफलता के उपाय तुरन्त सोचने की योग्यता—ये दूत के गुण हैं ॥ ३६ ॥

भवति चात्र श्लोक:—

आत्मवान् मित्रवान् युक्तो भावज्ञो देशकालवित्।
अलभ्यामप्ययत्नेन स्त्रियं संसाधयेन्नरः ॥ ३७ ॥

इस विषय में एक आनुवंश्य श्लोक है—जो व्यक्ति आत्मवान् एवं मित्रबल से सम्पन्न होता है, नागरकगुणों से युक्त होता है, स्त्रियों के मनोभावों का जानकार होता है, देश एवं काल के महत्त्व को समझता है, वह अलभ्य स्त्री को भी सहजता से प्राप्त कर लेता है ॥ ३७ ॥

नायकसहायदूतकर्मविमर्श नामक पञ्चम अध्याय सम्पन्न ॥

●

२.

साम्प्रयोगिक द्वितीय अधिकरण

प्रथम अध्याय

प्रीतिविषयात्मक विचार

शशो वृषोऽश्व इति लिङ्गतो नायकविशेषाः। नायिका पुनर्मृगी वडवा हस्तिनी चेति ॥ १ ॥

प्रमाण से सुरत की व्यवस्था—शिश्न की दीर्घता (लम्बाई) के प्रमाण से नायक के शश (खरगोश), वृष (बैल) और अश्व (घोड़ा) तीन प्रकार होते हैं; और स्त्री की जननेन्द्रिय (योनि) की गहराई के प्रमाण से नायिका के मृगी (हिणी), वडवा (घोड़ी) और हस्तिनी (हथिनी) तीन प्रकार होते हैं ॥ १ ॥

तत्र सदृशसम्प्रयोगे समरतानि त्रीणि ॥ २ ॥

समरत—यह तीन प्रकार का होता है—१. शश नायक का मृगी नायिका के साथ, २. वृष नायक का वड़वा नायिका के साथ और ३. अश्वनायक का हस्तिनी नायिका के साथ ॥ २ ॥

विपर्ययेण विषमाणि षट्। विषमेष्वपि पुरुषाधिक्यं चेदनन्तरसम्प्रयोगे द्वे उच्चरते। व्यवहितमेकमुच्चतररतम्। विपर्यये पुनर्द्वे नीचरते। व्यवहितमेकं नीचतररतं च। तेषु समानि श्रेष्ठानि। तरशब्दाङ्किते द्वे कनिष्ठे। शेषाणि मध्यमानि ॥ ३ ॥

विषमरत—योनि और शिश्न के असमान (छोटे-बड़े) होने के कारण छह विषम रत होते हैं। विषमरत में पुरुष का शिश्न बड़ा होने पर दो उच्चरत होते हैं—वृष नायक का मृगी

नायिका के साथ समागम और अश्व नायक का बड़वा नायिका के साथ समागम, इन्हें अनन्तर सम्प्रयोग भी कहा जाता है। पुरुष का शिश्न अत्यधिक बड़ा होने पर उच्चतररत होता है—अश्व नायक का मृगी नायिका के साथ समागम। इसमें समागम व्यवधानसहित होता है, इसलिए इसे व्यवहित सम्प्रयोग भी कहते हैं। पुरुष के शिश्न के छोटे होने पर दो नीचरत होते हैं—शश नायक का बड़वा नायिका से समागम और वृष नायक का हस्तिनी नायिका से समागम। उच्चरत के समान इन्हें भी अनन्तर सम्प्रयोग कहते हैं। शिश्न के अति लघुकाय होने पर नीचतररत होता है—शश नायक का हस्तिनी नायिका के साथ समागम। उच्चतररत के समान नीचतररत को भी व्यवहित सम्प्रयोग कहते हैं। इनमें सम एवं विषमरतों में समरत श्रेष्ठ है, उच्चतर एवं नीचतर (व्यवहित सम्प्रयोग) अधम है, और शेष (उच्चरत एवं नीचरत जिन्हें अनन्तर कहा गया है) मध्यम है॥ ३॥

साम्येऽप्युच्चाङ्कं नीचाङ्काज्ज्यायः। इति प्रमाणतो नवरतानि॥ ४॥

नीचरत की अपेक्षा उच्चरत की श्रेष्ठता—मध्यम रतों में भी नीचरत की अपेक्षा उच्चरत श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार जननेन्द्रिय के प्रमाण के अनुसार नौ रतों का विवेचन पूर्ण हुआ॥ ४॥

यस्य सम्प्रयोगकाले प्रीतिरुदासीना वीर्यमल्पं क्षतानि च न सहते स मन्दवेगः॥ ५॥

भाव से सुरत की व्यवस्था—रमणकाल में जिसकी रति-लालसा अल्प हो, वीर्य अल्प हो और जो नखक्षत, दन्तक्षत आदि को सहने में असमर्थ हो, वह मन्दवेग कहलाता है॥ ५॥

तद्विपर्ययौ मध्यमचण्डवेगौ भवतः। तथा नायिकापि॥ ६॥

इसके विपरीत मध्यम और चण्ड रति-लालसा रखने वाले पुरुष मध्यमवेग और चण्डवेग कहलाते हैं। इसी प्रकार रतिलालसा की दृष्टि से स्त्रियाँ भी तीन प्रकार की होती हैं—मन्दवेग, मध्यमवेग और चण्डवेग॥ ६॥

तत्रापि प्रमाणवदेव नवरतानि॥ ७॥

प्रमाण के अनुसार बताये गये नौ रतों के समान ही भाव के अनुसार भी नौ प्रकार के रत होते हैं॥ ७॥

तद्वत् कालतोऽपि शीघ्रमध्यचिरकाला नायकाः॥ ८॥

काल से सुरत की व्यवस्था—प्रमाण और भाव के समान रमणकाल के अनुसार भी नायक और नायिका के तीन भेद होते हैं—शीघ्र, मध्यम और चिरकाल॥ ८॥

तत्र स्त्रियां विवादः॥ ९॥

मतभेद—स्त्रियों के स्खलन या क्षरणसुख के विषय में आचार्यों में विवाद है।

न स्त्री पुरुषवदेव भावमधिगच्छति॥ १०॥

पुरुष के समान, स्त्री को स्खलन-सुख प्राप्त नहीं होता॥ १०॥

सातत्यात्त्वस्याः पुरुषेण कण्डूतिरपनुद्यते॥ ११॥

यदि स्त्री को स्खलन-सुख प्राप्त नहीं होता, तो वह पुरुष के साथ समागम क्यों करती है? पुरुष के शिश्न के साथ निरन्तर संघर्षण से स्त्री की खाज मिट जाती है॥ ११॥

सा पुनराभिमानिकेन सुखेन संसृष्टा रसान्तरं जनयति, तस्मिन् सुखबुद्धि-रस्याः ॥ १२ ॥

पूर्वपक्ष की शंका का उत्तर—पुरुष के साथ समागम से उसकी खाज ही नहीं मिटती, बल्कि आलिङ्गन, चुम्बन आदि सुखात्मक उपक्रियाओं से वह अनिर्वचनीय सुख भी प्राप्त करती है, और यह अनुभव भी करती है कि मैं आनन्दित हूँ ॥ १२ ॥

पुरुषप्रीतेश्चानभिज्ञत्वात् कथं ते सुखमिति प्रष्टुमशक्यत्वात् ॥ १३ ॥

श्वेतकेतु के मत पर शङ्का—जब पुरुष और स्त्री को एक दूसरे की सुखानुभूति का पता ही नहीं चलता, और मानसिक आनन्द शब्दों का विषय न होने से पूछकर भी निश्चित नहीं किया जा सकता, तब आपने यह कैसे जाना कि स्त्री की सुखानुभूति पुरष की सुखानुभूति से भिन्न है ? ॥ १३ ॥

कथमेतदुपलभ्यत इति चेत् ? पुरुषो हि रतिमधिगम्य स्वेच्छया विरमति, न स्त्रियमपेक्षते, न त्वेवं स्त्रीत्यौद्दालकिः ॥ १४ ॥

श्केतकेतु का समाधान—यदि 'आपने इस बात को कैसे जाना ?'—यह शंका करो तो मेरे जानने का यही कारण है कि पुरुष स्खलन-सुख के पश्चात् समागम से स्वयं विरत हो जाता है, फिर स्त्री की अपेक्षा नहीं करता, परन्तु स्त्रियों में ऐसा नहीं मिलता। इससे स्पष्ट होता है कि उसे स्खलन-सुख प्राप्त नहीं होता—ऐसा उद्दालक-पुत्र श्वेतकेतु का मत है ॥ १४ ॥

तत्रैतत्स्यात्। चिरवेगे नायके स्त्रियोऽनुरज्यन्ते, शीघ्रवेगस्य भावमना-साद्यावसानेऽभ्यसूयिन्यो भवन्ति। तत्सर्वं भावप्राप्तेरप्राप्तेश्च लक्षणम् ॥ १५ ॥

इस विषय में एक बात अवश्य है कि स्त्रियाँ चिरकाल तक समागम करने वाले पुरुषों से प्रेम करती हैं, और शीघ्र स्खलित होने वाले पुरुषों की, स्खलन-सुख न प्राप्त करने के कारण, निन्दा करती हैं। यह सब स्खलन-सुख की प्राप्ति और अप्राप्ति का लक्षण है। अर्थात् जब स्त्रियाँ पुरुषों से प्रेम करें, तभी समझना चाहिये कि उन्हें स्खलन-सुख प्राप्त हुआ है, अन्यथा नहीं ॥ १५ ॥

तच्च न। कण्डूतिप्रतीकारोऽपि हि दीर्घकालं प्रिय इति। एतदुपपद्यत एव। तस्मात् सन्दिग्धत्वादलक्षणमिति ॥ १६ ॥

श्वेतकेतु का उत्तर—अनुराग स्खलन-सुख का ज्ञापक नहीं है। देर तक समागम करने में उसकी खाज देर तक मिटती है, जो उसे प्रिय है, फलतः वह पुरुष से अनुराग करेगी ही। अनुराग खाज मिटने के कारण है, अथवा स्खलन-सुख प्राप्त होने के कारण ?—यह सन्दिग्ध है, इसलिए अनुराग को स्खलन-सुख का लक्षण मानना ठीक नहीं है ॥ १६ ॥

संयोगे योषितः पुंसा कण्डूतिरपनुद्यते।
तच्चाभिमानसंसृष्टं सुखमित्यभिधीयते ॥ १७ ॥

श्वेतकेतु के मत का सारसंग्रह—इस सिद्धान्त को श्वेतकेतु एक श्लोक में कहते हैं—पुरुषों के साथ मिलकर करने से स्त्रियों की खाज मिटती है, और आलिङ्गन, चुंबन, कुचमर्दन आदि के साथ मिलकर यही अनिर्वचनीय सुख कहलाता है ॥ १७ ॥

सातत्याद्युवतिरारम्भात्प्रभृति भावमधिगच्छति। पुरुषः पुनरन्त एव। एतदुपपन्नतरम्। नह्यसत्यां भावप्राप्तौ गर्भसम्भव इति बाभ्रवीयाः॥ १८॥

बाभ्रव्य का मत—समागम में स्त्री प्रारम्भ से ही निरन्तर स्खलन-सुख को प्राप्त करती रहती हैं और पुरुष स्खलन-सुख को अन्त में ही प्राप्त करता है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि स्खलन के बिना कदापि गर्भ स्थिर नहीं हो सकता—ऐसा आचार्य बाभ्रव्य के अनुयायियों का मत है॥ १८॥

अत्रापि तावेवाशङ्कापरिहारौ भूयः॥ १९॥

पुरुषवत् स्खलन मानने वालों की शंका और समाधान—आचार्य बाभ्रव्य के मत में भी वही शङ्काएँ उठती हैं जो आचार्य श्वेतकेतु के मत में उठायी गयी हैं, और उनका समाधान भी पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिये॥ १९॥

तत्रैतत्स्यात्—सातत्येन रसप्राप्तावारम्भकाले मध्यस्थचित्तता नातिसहिष्णुता च। ततः क्रमेणाधिको रागयोगः, शरीरे निरपेक्षत्वम्, अन्ते च विरामाभीप्सेत्येतदुपपन्नमिति॥ २०॥

बाभ्रव्य के मत पर शङ्का—इस पर यह शङ्का होती है कि यदि स्त्री समागम के प्रारम्भ से ही निरन्तर स्खलित होती रहती है, तो क्या कारण है कि प्रारम्भ में वह शान्त और निश्चेष्ट रहती है, नखक्षत, दन्तक्षत, कुचमर्दन आदि प्रयोगों का निषेध करती है, परन्तु ज्यों ज्यों राग बढ़ता जाता है, वह शरीर से निरपेक्ष होती है, अर्थात् रागाधिक्य में नखक्षत, दन्तक्षत, कुचमर्दन आदि प्रयोगों के प्रति सहिष्णु हो जाती है, और अन्त में विराम की इच्छा करती है। यदि स्त्री प्रारम्भ से अन्त तक निरन्तर स्खलित होती रहती है, तो यह अवस्था-भेद नहीं बन सकता॥ २०॥

तच्च न। सामान्येऽपि भ्रान्तिसंस्कारे कुलालचक्रस्य भ्रमरकस्य वा भ्रान्तावेव वर्तमानस्य प्रारम्भे मन्दवेगता ततश्च क्रमेण पूरणं वेगस्येत्युपपद्यते। धातुक्षयाच्च विरामाभीप्सेति। तस्मादनाक्षेपः॥ २१॥

बाभ्रव्य का समाधान—ऐसी शङ्का करना ठीक नहीं है। सामान्यतः घूमने वाले कुम्हार के चाक (चक्र) या लट्टू (भ्रमरक) में घूमने की क्रिया निरन्तर विद्यमान रहने पर भी वे प्रारम्भ में मन्दवेग से घूमते हैं। बाद में क्रमशः उनका बेग बढ़ता है, और अन्त में वेग बन्द हो जाता है। इसी प्रकार स्त्री का स्खलन भी प्रारम्भ में मन्द रहता है, तदुपरान्त वह क्रमशः बढ़ता है, और च्युत हुए रज के पूर्णतः झड़ जाने पर वह समागम से विराम चाहती है। इसमें शङ्का के लिये कोई अवकाश नहीं है॥ २१॥

सुरतान्ते सुखं पुंसां स्त्रीणां तु सततं सुखम्।
धातुक्षयनिमित्ता च विरामेच्छोपजायते॥ २२॥

बाभ्रव्य का सार-संक्षेप—पुरुष को स्खलन-सुख समागम के अन्त में ही प्राप्त होता है किन्तु स्त्रियों को वह सुखानुभूति प्रारम्भ से अन्त तक होती रहती है, और स्थान से च्युत हुए सम्पूर्ण धातु (रज) के झड़ जाने पर समागम से विराम की इच्छा होती है॥ २२॥

तस्मात् पुरुषवदेव योषितोऽपि रसव्यक्तिर्द्रष्टव्या ॥ २३ ॥

वात्स्यायन का मत—इससे यही समझना चाहिये कि पुरुष के समान स्त्री को भी समागम के अन्त में सुखानुभूति (स्खलन-सुख) होती है ॥ २३ ॥

कथं हि समानायामेवाकृतावेकार्थमभिप्रपन्नयोः कार्यवैलक्षण्यं स्यात्? ॥ २४ ॥

स्त्री-पुरुष के सुख की अभिन्नता—समान जाति और समान कार्य में संलग्न स्त्री-पुरुष का सुख परस्पर भिन्न कैसे हो मकता है? अर्थात् दोनों का सुख परस्पर अभिन्न ही होगा? ॥ २४ ॥

उपायवैलक्षण्यादभिमानवैलक्षण्याच्च ॥ २५ ॥

उपाय (स्थिति) और अनुभूति में भिन्नता होने से सुखानुभूति में भिन्नता हो सकती है ॥ २५ ॥

कथम्? उपायवैलक्ष्यं तु सर्गात्। कर्ता हि पुरुषोऽधिकरणं युवतिः। अन्यथा हि कर्ता क्रियां प्रतिपद्यतेऽन्यथा चाधारः। तस्माच्चोपायवैलक्षण्यात् सर्गादभिमानवैलक्षण्यमपि भवति। अभियोक्ताहमिति पुरुषोऽनुरज्यते। अभियुक्ताहमनेनेति युवतिरिति वात्स्यायनः ॥ २६ ॥

सुखानुभूति की अभिन्नता की स्थापना—स्थिति की भिन्नता तो प्राकृतिक है। पुरुष कर्ता (मैथुन करने वाला) है और स्त्री अधिकरण या आधार (मैथुन कराने वाली)। कर्ता की क्रिया, आधार की क्रिया से सदैव भिन्न होती है, इसलिये स्थिति और अनुभूति की भिन्नता से व्यापार में कुछ भिन्नता अवश्य आयेगी। समागम करते समय पुरुष सोचता है कि मैं सम्भोग कर रहा हूँ, और स्त्री सोचती है कि मैं सम्भोग करा रही हूँ, लेकिन दोनों की अनुभूति में कोई अन्तर नहीं होता—यह महर्षि वात्स्यायन का मत है ॥ २६ ॥

तत्रैतत्स्यात्—उपायवैलक्षण्यवदेव हि कार्यवैलक्षण्यमपि कस्मान्न स्यादिति? तच्च न; हेतुमदुपायवैलक्षण्यम्। तत्र कर्त्राधारयोर्भिन्नलक्षणत्वादहेतुमत्कार्यवैलक्षण्यमन्याय्यं स्यात्। आकृतेरभेदादिति ॥ २७ ॥

यदि आप कहें कि जब आप स्त्री-पुरुष की स्थिति और अनुभूति में भिन्नता मानते हैं, तो उसकी सुखानुभूति में भी भिन्नता क्यों नहीं मान लेते? तो हम उत्तर देते हैं कि ऐसा नहीं हो सकता। उपाय के हेतुरूप स्त्री-पुरुष भिन्न भिन्न हैं, इसलिये कर्ता (पुरुष) और आधार (स्त्री) के भिन्न होने से उनका व्यापार भी भिन्न होगा, किन्तु वे जिस रतिरूप कार्य को सिद्ध कर रहे हैं, वह एक ही है, इसलिये दोनों को समान सुखानुभूति ही होगी ॥ २७ ॥

तत्रैतत्स्यात्—संहत्य कारकैरेकोऽर्थोऽभिनिर्वर्त्यते। पृथक्पृथक् स्वार्थसाधकौ पुनरिमौ तदयुक्तमिति ॥ २८ ॥

आपके कथन पर यह शङ्का होती है कि लोक में भिन्न कारक मिलकर एक काम को करते हैं, लेकिन स्त्री-पुरुष तो भिन्न-भिन्न स्वार्थों को सिद्ध करते हैं, इसलिए वे समागमरूप एक कार्य करते हैं—यह कहना युक्तिसङ्गत नहीं है ॥ २८ ॥

तच्च न; युगपदनेकार्थसिद्धिरपि दृश्यते। यथा मेषयोरभिघाते कपित्थयोर्भेदे मल्लयोर्युद्ध इति। न तत्र कारकभेद इति चेदिहापि न वस्तुभेद इति। उपायवैलक्षण्यं तु सर्गादिति तदभिहितं पुरस्तात्। तेनोभयोरपि सदृशी सुखप्रतिपत्तिरिति॥ २९॥

आपका यह कहना कि स्त्री-पुरुष को सुखरूप एक कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती, उचित नहीं है; क्योंकि एक साथ अनेक पुरुषों के कार्य की सिद्धि भी दिखायी देती है। जैसे दो मेढ़ों के युद्ध में, कैथ में कैथ मारकर तोड़ने में और दो पहलवानों की कुश्ती में। यदि आप कहें कि इनमें कारक-भेद नहीं है, दोनों ही कर्ता हैं, तो स्त्री-पुरुष में भी वस्तु-भेद नहीं है; क्योंकि दोनों ही मनुष्य हैं। स्थिति की भिन्नता तो प्राकृतिक है, और उसका समाधान पीछे किया जा चुका है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि स्त्री-पुरुष दोनों को समान ही सुखानुभूति होती है॥ २९॥

जातेरभेदाद्दम्पत्योः सदृशं सुखमिष्यते।
तस्मात्तथोपचर्या स्त्री यथाग्रे प्राप्नुयाद्रतिम्॥ ३०॥

सजातीय होने कारण स्त्री और पुरुष को समागम में समान सुख की ही प्राप्ति होती है, इसलिये समागम से पूर्व स्त्री को आलिङ्गन, चुम्बन, कुचमर्दन आदि बाह्य उपक्रियाओं द्वारा इस प्रकार तैयार कर लेना चाहिये कि वह पुरुष से पूर्व रति प्राप्त कर ले। अर्थात् पुरुष से पूर्व स्खलित हो जाये॥ ३०॥

सदृशत्वस्य सिद्धत्वात् कालयोगीन्यपि भावतोऽपि कालतः प्रमाणवदेव नव रतानि॥ ३१॥

स्त्री और पुरुष की समानता सिद्ध हो जाने पर काल, भाव और प्रमाण प्रत्येक के अनुसार स्त्री-पुरुष के नौ रत होते हैं॥ ३१॥

रसो रतिः प्रीतिर्भावो रागो वेगः समाप्तिरिति रतिपर्यायाः। संप्रयोगो रतं रहः शयनं मोहनं सुरतपर्यायाः॥ ३२॥

व्यवहार के लिए रति और रत के पर्याय बताते हैं—

रस, रति, प्रीति, भाव, राग, वेग और समाप्ति—ये शब्द रति (आनन्द) के पर्याय है, और सम्प्रयोग, रत, रह (एकान्त), शयन और मोहन—ये शब्द सुरत (समागम, सम्भोग या मैथुन) के पर्याय हैं॥ ३२॥

प्रमाणकालभावजानां सम्प्रयोगाणामेकैकस्य नवविधत्वात् तेषां व्यतिकरे सुरतसङ्ख्या न शक्यते कर्तुम्; अतिबहुत्वात्॥ ३३॥

प्रमाण, काल और भाव से सम्पन्न रतों में प्रत्येक नौ नौ प्रकार का होने के कारण, उनके मिश्रण से बनने वाले सुरत-भेदों की संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि गणना सम्भव नहीं है॥ ३३॥

तेषु तर्कादुपचारान् प्रयोजयेदिति वात्स्यायनः॥ ३४॥

इन सङ्कीर्णरतों में अपनी विचारशक्ति में आलिङ्गन, चुम्बन आदि उपक्रियाओं का प्रयोग करना चाहिये—ऐसा महर्षि वात्स्यायन का मत है॥ ३४॥

प्रथमरते चण्डवेगता शीघ्रकालता च पुरुषस्य, तद्विपरीतमुत्तरेषु। योषितः पुनरेतदेव विपरीतम्। आ धातुक्षयात्॥ ३५॥

प्रथम समागम में पुरुष चण्डवेग होता है, फलतः शीघ्र स्खलित हो जाता है, किन्तु उसी समय पुनः मैथुन करने पर पुरुष मन्दवेग हो जाता हैं, फलतः देर से स्खलित होता है। स्त्रियों की प्रवृत्ति इसके विपरीत होती है। अर्थात् प्रथम समागम में मन्दवेग होती हैं, फलतः देर से स्खलित होती हैं, लेकिन उसी समय पुनः मैथुन करने पर वे चण्डवेग होने से शीघ्र स्खलित हो जाती हैं। यह अपने स्थान से च्युत धातु (रज और वीर्य) के क्षय होने तक रहता है॥ ३५॥

प्राक् च स्त्रीधातुक्षयात् पुरुषधातुक्षय इति प्रायोवादः॥ ३६॥

समागम में पुरुष स्त्री से पहले ही स्खलित हो जाता है—यह प्रायः देखा जाता है॥ ३६॥

मृदुत्वादुपमृद्यत्वान्निसर्गाच्चैव योषितः।
प्राप्नुवन्त्याशु ताः प्रीतिमित्याचार्या व्यवस्थिताः॥ ३७॥

जो स्त्रियाँ स्वभावतः कोमलाङ्गी हैं और जो किञ्चित् कठोर अङ्गों वाली, फलतः आलिङ्गन, चुम्बन, कुचमर्दन आदि बाह्य उपचारों से उपमर्दन करने योग्य हैं, वे सभी समुचित रीति से समागम करने पर शीघ्र ही रतिसुख प्राप्त कर लेती हैं—ऐसा कामशास्त्र के आचार्यों का मत है॥ ३७॥

एतावदेव युक्तानां व्याख्यातं साम्प्रयोगिकम्।
मन्दानामवबोधार्थं विस्तरोऽतः प्रवक्ष्यते॥ ३८॥

स्त्री-पुरुष के समागम के विषय में, विद्वानों के लिए, इतना विवेचन ही पर्याप्त है। मन्दबुद्धि व्यक्तियों को समझाने के लिये अब इसे विस्तार से कहेंगे॥ ३८॥

अभ्यासादभिमानाच्च तथा सम्प्रत्ययादपि।
विषयेभ्यश्च तन्त्रज्ञाः प्रीतिमाहुश्चतुर्विधाम्॥ ३९॥

प्रीति के भेद—कामशास्त्र के आचार्यों का मत है कि प्रीति चार प्रकार की होती है— १. आभ्यासिकी—निन्तर कर्मों के अभ्यास से उत्पन्न, २. आभिमानिकी—सङ्कल्पमात्र से उत्पन्न, ३. सम्प्रत्ययात्मिका—विश्वास से उत्पन्न, और ४. विषयात्मिका—विषयों से उत्पन्न॥ ३९॥

शब्दादिभ्यो बहिर्भूता या कर्माभ्यासलक्षणा।
प्रीतिः साभ्यासिकी ज्ञेया मृगयादिषु कर्मसु॥ ४०॥

१. आभ्यासिकी प्रीति—शब्दादिक के अतिरिक्त कर्मों में निरन्तर लगे रहने से जो प्रीति उत्पन्न होती है, वह अभ्यास से बढ़ने के कारण आभ्यासिकी कहलाती है, जैसे मृगया (शिकार) आदि कर्मों में देखी जाती है॥ ४०॥

अनभ्यस्तेष्वपि पुरा कर्मस्वविषयात्मिका।
सङ्कल्पाज्जायते प्रीतिर्या सा स्यादाभिमानिकी॥ ४१॥

२. आभिमानिकी प्रीति—पहले जिन कर्मों का अभ्यास न किया हो, उनमें संकल्पमात्र से जो प्रीति उत्पन्न होती है, वह विषयों से उत्पन्न होने वाली प्रीति से भिन्न आभिमानिकी कहलाती है॥ ४१॥

प्रकृतेर्या तृतीयस्याः स्त्रियाश्चैवौपरिष्टके।
तेषु तेषु च विज्ञेया चुम्बनादिषु कर्मसु॥ ४२॥

जैसे नपुंसकों और स्त्रियों को औपरिष्टक (मुखमैथुन) में जो प्रीति होती है, वह मानसिक कहलाती है, वैसे ही आलिङ्गन, चुम्बन, कुचमर्दन, नखक्षत, दन्तक्षत आदि में स्त्री-पुरुषों की जो प्रीति होती है, वह मानसिक ही है॥ ४२॥

नान्योऽयमिति यत्र स्यादन्यस्मिन् प्रीतिकारणे।
तन्त्रज्ञैः कथ्यते सापि प्रीतिः सम्प्रत्ययात्मिका॥ ४३॥

३. सम्प्रत्ययात्मिका प्रीति—जब किसी अपरिचित व्यक्ति पर 'यह वही है' इस प्रकार प्रीति की जाती है, उसे कामशास्त्र के आचार्य सम्प्रत्ययात्मिका—विश्वास से उत्पन्न प्रीति कहते हैं॥ ४३॥

प्रत्यक्षा लोकतः सिद्धा या प्रीतिर्विषयात्मिका।
प्रदानफलवत्त्वात् सा तदर्थाश्चेतरा अपि॥ ४४॥

४. विषयात्मिका प्रीति—इन्द्रियों के विषयों से होने वाली प्रीति विषयात्मिका प्रीति कहलाती है। यह सर्वप्रधान और प्रत्यक्षसिद्ध है, फलतः शेष तीनों प्रीतियाँ उसी के निमित्त है॥ ४४॥

प्रीतिरेताः परामृश्य शास्त्रतः शास्त्रलक्षणाः।
यो यथा वर्तते भावस्तं तथैव प्रयोजयेत्॥ ४५॥

प्रीतियों का उपयोग—इन चारों प्रकार की प्रीतियों को शास्त्र से भली भाँति समझकर, स्त्री और पुरुष के भाव के अनुरूप ही इनका इस प्रकार प्रयोग करना चाहिये कि स्त्री-पुरुष दोनों की प्रीति नित्य निरन्तर बढ़ती रहे॥ ४५॥

रतावस्थानप्रकरण नामक प्रथम अध्याय सम्पन्न॥

●

द्वितीय अध्याय

आलिङ्गनादिविचारप्रकरण

सम्प्रयोगाङ्गं चतुःषष्टिरित्याचक्षते। चतुःषष्टिप्रकरणत्वात्॥ १॥

कामशास्त्र के पूर्ववर्ती आचार्यों ने सम्प्रयोग (सम्भोग) के चौंसठ अङ्ग कहे हैं। क्योंकि उनके ग्रन्थों में चौंसठ प्रकरण हैं, इसलिये उनका कथन असङ्गत नहीं माना जा सकता॥ १॥

शास्त्रमेवेदं चतुःषष्टिरित्याचार्यवादः॥ २॥

कामशास्त्र का ही पर्याय चतुःषष्टि है—ऐसा भी कुछ आचार्यों का मत है॥ २॥

कलानां चतुःषष्टित्वात्तासां च सम्प्रयोगाङ्गभूतत्वात् कलासमूहो वा चतुःषष्टिरिति। ऋचां दशतयीनां च संज्ञितत्वात्। इहापि तदर्थसम्बन्धनात्। पञ्चालसम्बन्धाच्च बह्वृचैरेषा पूजार्थं संज्ञा प्रवर्तिता इत्येके॥ ३॥

विद्यासमुद्देश प्रकरण में गीत आदि चौंसठ कलाएँ कही गयी हैं, और पाञ्चाल चौंसठ कामकलाओं की विवेचना करते हैं, ये दोनों ही कलाएँ सम्प्रयोग का अङ्ग बनती हैं, अत: 'चतुःषष्टि' शब्द न केवल कलाओं, अपितु कामशास्त्र और उसके प्रयोजन सम्प्रयोग के लिये भी प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार 'ऋग्वेद' में दस मण्डल होने के कारण, उसे 'दशतयी' भी कहा जाता है, उसी प्रकार सम्प्रयोग में दस अध्याय होने से, उसे भी 'दशतयी' कहा जाता है; क्योंकि 'दशतयी' का वैसा ही अर्थ यहाँ भी है। क्योंकि साम्प्रयोगिक अधिकरण के स्वतन्त्र व्याख्याता बाभ्रव्य ने ही 'ऋग्वेद' को चौंसठ अध्यायों में विभक्त किया था, अतएव ग्रन्थकार के प्रति अनुराग और महत्त्व प्रकट करने के लिये ही कामशास्त्र को भी चौंसठ अङ्गों वाला कहा जाने लगा—ऐसा भी कई आचार्यों का मत है ॥ ३ ॥

आलिङ्गनचुम्बननखच्छेद्यदशनच्छेद्यसंवेशनसीत्कृतपुरुषायितौपरिष्टकानाम् अष्टानामष्टधा विकल्पभेदादष्टावष्टकाश्चतःषष्टिरिति बाभ्रवीयाः ॥ ४ ॥

चतुःषष्टि का स्वरूप—१. आलिङ्गन, २. चुम्बन, ३. नखक्षत, ४. दन्तक्षत, ५. संवेशन, ६. सीत्कार, ७. पुरुषायित (विपरीत रति) और ८. औपरिष्टक (मुखमैथुन)—इन आठ अङ्गों के आठ आठ भेद होने के कारण, सम्प्रयोग के कुल चौंसठ भेद हो जाते हैं—यह आचार्य बाभ्रव्य के अनुयायियों (शिष्यों) का मत है ॥ ४ ॥

विकल्पवर्गाणामष्टानां न्यूनाधिकत्वदर्शनात् प्रहणनविरुतपुरुषोपसृप्तचित्र-रतादीनामन्येषामपि वर्गाणामिह प्रवेशनात् प्रायोवादोऽयम्। यथा सप्तपर्णो वृक्षः पञ्चवर्णो बलिरिति वात्स्यायनः ॥ ५ ॥

वात्स्यायन द्वारा खण्डन—क्योंकि आलिङ्गनादिकों में प्रत्येक के आठ-आठ भेद नहीं होते, किसी के कम होते हैं और किसी के अधिक, तथा इनके अतिरिक्त प्रहणन, विरुत, पुरुषोपसृप्त और चित्ररत आदि अन्य वर्गों का भी साम्प्रयोगिक अधिकरण में प्रवेश देखा जाता है, अत: बाभ्रव्य के अनुयायियों का उक्त कथन प्रायोवादमात्र है। सम्प्रयोग को चौंसठ अङ्ग वाला मानना वैसा ही प्रायोवाद है, जैसे सप्तपर्ण (सप्तपत्र) कह देने से छतिवन वृक्ष को सात पत्तों वाला एवं पंचवर्ण कह देने से बलि को पाँच रंगों वाला मानना—ऐसा आचार्य वात्स्यायन का मत है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सप्तपर्ण नाम होने से छतिवन सात-सात पत्तों वाला और पंचवर्ण नाम होने से बलि पाँच वर्ण वाली नहीं हो जाती, उसी प्रकार 'चतुःषष्टि' नाम रखे जाने से सम्प्रयोग चौंसठ अङ्गों वाला नहीं हो जाता ॥ ५ ॥

तत्रासमागतयोः प्रीतिलिङ्गद्योतनार्थमालिङ्गनचतुष्टयम्। स्पृष्टकम्, विद्धकम्, उद्घृष्टकम्, पीडितकम् इति ॥ ६ ॥

जो प्रेमपात्र पहले मिले नहीं हैं, उनमें परस्पर अनुराग को द्योतित करने के लिये चार प्रकार के आलिङ्गन होते हैं—(१) स्पृष्टक, (२) विद्धक, (३) उद्घृष्टक और (४) पीड़ितक ॥ ६ ॥

सर्वत्र संज्ञार्थेनैव कर्मातिदेशः ॥ ७ ॥

स्पृष्टक, विद्धक आदि शब्द ही अपने अभिधेय कर्म को व्यक्त कर देते हैं। अर्थात् इन

पारिभाषिक शब्दों से अर्थ स्वतः विदित हो जाता है, अतएव इनकी परिभाषाएँ देने की आवश्यकता भी नहीं है ॥ ७ ॥

सम्मुखागतायां प्रयोज्यायामन्यापदेशेन गच्छतो गात्रेण गात्रस्य स्पर्शनं स्पृष्टकम् ॥ ८ ॥

स्पृष्टक—किसी बहाने से आती हुई नायिका के शरीर से अपने शरीर से अपने शरीर को छुआ देना ही स्पृष्टक आलिङ्गन है ॥ ८ ॥

प्रयोज्यं स्थितमुपविष्टं वा विजने किञ्चिद् गृह्णती पयोधरेण विद्धयेत्। नायकोऽपि तामवपीड्य गृह्णीयादिति विद्धकम् ॥ ९ ॥

विद्धक—नायिका भी जब एकान्त में खड़े या बैठे नायक को देखकर किसी वस्तु को रखने या लेने के बहाने अपने स्तनों को उससे छुआ दे और नायक भी अनुराग समझकर उसे कसकर दबाये—यह विद्धक आलिङ्गन है ॥ ९ ॥

तदुभयमनतिप्रवृत्तसंभाषणयोः ॥ १० ॥

स्पृष्टक और विद्धक आलिङ्गनों का प्रयोग तभी किया जाता है जब नायक और नायिका दोनों के मध्य अधिक वार्तालाप न हो ॥ १० ॥

तमसि जनसंबाधे विजने वाथ शनकैर्गच्छतोर्नातिह्रस्वकालमुद्धर्षणं परस्परस्य गात्राणामुद्धृष्टकम् ॥ ११ ॥

उद्धृष्टक—अन्धकार में, भीड़भरे स्थान में अथवा निर्जन स्थान में धीरे-धीरे चलते हुए चिरकाल तक एक का शरीर दूसरे के शरीर से घर्षण करता रहे, तो उसे उद्धृष्टक कहते हैं ॥ ११ ॥

तदेव कुड्यसन्दंशेन स्तम्भसंदंशेन वा स्फुटकमवपीडयेदिति पीडितकम् ॥ १२ ॥

पीड़ितक—वह उद्धृष्टक आलिङ्गन ही, यदि दीवार या स्तम्भ के सहारे हो, तो नायक और नायिका, दोनों के शरीरों के परस्पर पीड़न के कारण पीड़ितक कहलाता है। अर्थात् पीड़ितक आलिङ्गन में नायक और नायिका दीवार या स्तम्भ के सहारे एक-दूसरे के शरीर को अच्छी तरह दबाते हैं ॥ १२ ॥

तदुभयमवगतपरस्पराकारयोः ॥ १३ ॥

उद्धृष्टक और पीड़ितक आलिङ्गन उन नायक-नायिकाओं के लिये है जो परस्पर प्रीति से अवगत हों, लेकिन समागम न हुआ हो ॥ १३ ॥

लतावेष्टितकं वृक्षाधिरूढकं तिलतण्डुलकं क्षीरनीरकमिति चत्वारि सम्प्रयोगकाले ॥ १४ ॥

सुरत के समय चार आलिङ्गन अधिक उपयुक्त रहते हैं—लतावेष्टितक, वृक्षाधिरूढक, तिलतण्डुलक और क्षीरनीरक ॥ १४ ॥

लतेव शालमावेष्टयन्ती चुम्बनार्थं मुखमवनयेत्। उद्धृत्य मन्दसीत्कृता तमाधिता वा किञ्चिद्रामणीयकं पश्येत्तल्लतावेष्टितकम् ॥ १५ ॥

१. लतावेष्टितक—जिस प्रकार लता शाल के वृक्ष से लिपटती है, उसी प्रकार नायिका

नायक से लिपटती हुई उसके मुख को चुम्बन के लिए तनिक नीचे झुकाये, उसके राग को उद्दीप्त करती हुई मन्द सीत्कार करे, अथवा उससे लिपटी हुई ही किसी रमणीय वस्तु (स्तनादि कामकेन्द्रों अथवा नायककृत नख-दन्त-क्षतों आदि) का अवलोकन करे—यह लतावेष्टितक आलिङ्गन है ॥ १५ ॥

चरणेन चरणमाक्रम्य द्वितीयेनोरुदेशमाक्रमन्ती वेष्टयन्ती वा तत्पृष्ठसक्तैक-बाहुर्द्वितीयेनांसमवनमयन्ती ईषन्मन्दसीत्कृतकूजिता चुम्बनार्थमेवाधिरोढुमिच्छेदिति वृक्षाधिरूढकम् ॥ १६ ॥

२. **वृक्षाधिरूढ़क**—नायिका अपना एक पैर नायक के पैर पर रखकर, दूसरे पैर से नायक की जाँघों को दबाती है या लपेटती है और अपना एक हाथ नायक की पीठ पर रखकर दूसरे हाथ से उसके कन्धे को झुकाकर मन्द मन्द सीत्कार करती हुई, उसके अधरों का चुम्बन करने के लिये नायकरूपी वृक्ष पर चढ़ने की चेष्टा सी करती है—यह वृक्षाधिरूढ़क आलिङ्गन कहलाता है ॥ १६ ॥

तदुभयं स्थितकर्म ॥ १७ ॥

लतावेष्टितक और वृक्षाधिरूढ़क—ये दोनों आलिङ्गन समागम से पूर्व खड़े हुए ही किये जाते हैं ॥ १७ ॥

शयनगतावेवोरुव्यत्यासं भुजव्यत्यासं च ससंघर्षमिव घनं संस्वजेते तत्तिल-तण्डुलकम् ॥ १८ ॥

तिलतण्डुलक—शैय्या पर लेटे हुए नायक और नायिका अपनी भुजाओं और पैरों को विपरीत रूप में मिलाते हुए, संघर्षपूर्वक दृढ़ालिङ्गन करें—यह आलिङ्गन तिलतण्डुलक कहलाता है ॥ १८ ॥

रागान्धावनपेक्षितात्ययौ परस्परमनुविशत इवोत्सङ्गतायामभिमुखोपविष्टायां शयने वेति क्षीरजलकम् ॥ १९ ॥

क्षीरजलक—रागाधिक्य के कारण विवेकहीन बने नायक और नायिका, हानि की चिन्ता छोड़कर, जब एक-दूसरे में प्रविष्ट सा हो जाने की लालसा से प्रगाढ़ आलिङ्गन करते हैं तो वह आलिङ्गन क्षीरजलक कहलाता है। यह आलिङ्गन उसी स्थिति में सम्भव है जब नायिका अपने पैर नायक की कमर में फँसाकर उसकी ओर मुख करके गोद में बैठी हो अथवा दोनों शैय्या पर एक दूसरे की ओर मुख कर लेटे हुए हों ॥ १९ ॥

तदुभयं रागकाले ॥ २० ॥

तिलतण्डुलक और क्षीरजलक—ये दोनों आलिङ्गन समागम से पूर्व राग के प्रचण्ड हो जाने पर ही करने चाहियें ॥ २० ॥

इत्युपगूहनयोगा बाभ्रवीयाः ॥ २१ ॥

आचार्य बाभ्रव्य के अनुयायियों (शिष्यों) द्वारा कथित आलिङ्गन के भेद समाप्त हुए ॥ २१ ॥

सुवर्णनाभस्य त्वधिकमेकाङ्गोपगूहनचतुष्टयम् ॥ २२ ॥

आचार्य सुवर्णनाभ के मत से आलिङ्गन के चार अन्य भेद अधिक हैं, जिनमें पुरुष के किसी एक अङ्ग का स्त्री के उसी अङ्ग द्वारा आलिङ्गन किया जाता है ॥ २२ ॥

तत्रोरुसन्दंशेनैकमूरुमूरुद्वयं वा सर्वप्राणं पीडयेदित्यूरूपगूहनम् ॥ २३ ॥

ऊरूपगूहन—जब एक-दूसरे की ओर मुख करके करवट के बल लेटे हुए नायक या नायिका एक-दूसरे की एक या दोनों जाँघों को अपनी जाँघों में लेकर सँड़सी की तरह पूरी शक्ति से दबायें, तो ऊरूपगूहन आलिङ्गन होता है ॥ २३ ॥

जघनेन जघनमवपीड्य प्रकीर्यमाणकेशहस्ता नखदशनप्रहणनचुम्बनप्रयोजनाय तदुपरि लङ्घयेत् तज्जघनोपगूहनम् ॥ २४ ॥

जघनोपगूहन—अपने बिखरे हुए बालों को हाथ में लिये हुए नायिका, नायक के जघनस्थल को अपने जघनस्थल से दबाती हुई नखक्षत, दन्तक्षत और प्रहणन के उद्देश्य से उसके ऊपर लेट जाये, तो जघनोपगूहन आलिङ्गन होता है ॥ २४ ॥

स्तनाभ्यामुरः प्रविश्य तत्रैव भारमारोपयेदिति स्तनालिङ्गनम् ॥ २५ ॥

स्तनालिङ्गन—जब नायिका अपने वक्ष को पुरुष के वक्ष पर झुकाकर स्तनों का भार उसके ऊपर रख दे और दृढ़ आलिङ्गन करे, तो उसे स्तनालिङ्गन कहते हैं ॥ २५ ॥

मुखे मुखमासज्याक्षिणी अक्ष्णोर्ललाटेन ललाटमाहन्यात् सा ललाटिका ॥ २६ ॥

ललाटिका—मुख के सामने मुख करके और आँखें में आँखें मिलाकर मस्तक से मस्तक को दबाये—इस आलिङ्गन को ललाटिका कहते हैं ॥ २६ ॥

संवाहनमप्युपगूहनप्रकारमित्येके मन्यन्ते। संस्पर्शत्वात् ॥ २७ ॥

कुछ आचार्य संवाहन (मुट्ठियों से अङ्ग दवाना) को भी आलिङ्गन मानते हैं, क्योंकि इसमें भी स्पर्श-सुख होता है ॥ २७ ॥

पृथक्कालत्वाद्भिन्नप्रयोजनत्वादसाधारणत्वान्नेति वात्स्यायनः ॥ २८ ॥

क्योंकि संवाहन का समय आलिङ्गन (सम्भोग) काल से भिन्न है, उसका प्रयोजन थकान दूर करना है, रतिसुख देना नहीं, और संवाहन का सुख एक को मिलता है जबकि आलिङ्गन का नायक-नायिका दोनों को, फलतः संवाहन को आलिङ्गनप्रकार नहीं माना जा सकता—ऐसा आचार्य वात्स्यायन का मत है ॥ २८ ॥

पृच्छतां शृण्वतां वापि तथा कथयतामपि।
उपगूहविधिं कृत्स्नं रिरंसा जायते नृणाम् ॥ २९ ॥

आलिङ्गन का महत्त्व—आलिङ्गन की विधि को पूछते, सुनते और कहते हुए ही मनुष्य की रमण की इच्छा जाग्रत हो जाती है ॥ २९ ॥

येऽपि ह्यशास्त्रिताः केचित् संयोगा रागवर्धनाः।
आदरेणैव तेऽप्यत्र प्रयोज्याः साम्प्रयोगिकाः ॥ ३० ॥

अशास्त्रीय योग—जो योग शास्त्र में न कहे गये हों, लेकिन रागवर्धक और कामोत्तेजक हों, सम्भोग के समय उनका भी आदरपूर्वक प्रयोग करना चाहिये ॥ ३० ॥

शास्त्राणां विषयस्तावद्यावन्मन्दरसा नराः।
रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं न च क्रमः॥ ३१॥

अशास्त्रीय योगों के उपयोग का कारण—मनुष्य को शास्त्र का ज्ञान तभी तक रहता है, जब तक राग-मन्द रहता है। राग के प्रचण्ड होनेपर तो मनुष्य कामान्ध हो उठता है और तब उसे न शास्त्र के ज्ञान का ध्यान रहता है और न उसमें कथित आलिङ्गन, चुम्बन आदि के क्रम का ही॥ ३१॥

आलिङ्गनविचारप्रकरण नामक द्वितीय अध्याय सम्पन्न॥

●

तृतीय अध्याय

चुम्बनादिविकल्पप्रकरण

चुम्बननखदशनच्छेद्यानां न पौर्वापर्यमस्ति। रागयोगात् प्राक्संयोगादेषां प्राधान्येन प्रयोगः। प्रहणनसीत्कृतयोश्च सम्प्रयोगे॥ १॥

चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत—इन तीनों में पूर्व और अपर का क्रम नहीं है, क्योंकि ये तीनों ही उपक्रियाएँ राग के योग से होती हैं। प्रायः समागम से पूर्व काम को उत्तेजित करने के निमित्त इनका प्रयोग होता है। समागम के समय तो केवल प्रहणन और सीत्कार का ही प्रयोग होता है॥ १॥

सर्वं सर्वत्र। रागस्यानपेक्षितत्वात्। इति वात्स्यायनः॥ २॥

चुम्बन आदि सभी उपक्रियाओं का प्रयोग शिश्नप्रवेश के पहले और बाद में सर्वत्र किया जा सकता है, क्योंकि इनके प्रयोग में नायक-नायिका दोनों के राग की अपेक्षा नहीं है—यह आचार्य वात्स्यायन का मत है॥ २॥

तानि प्रथमरते नातिव्यक्तानि विश्रब्धिकायां विकल्पेन च प्रयुञ्जीत। तथाभूतत्वाद्रागस्य। ततः परमतित्वरया विशेषवत्समुच्चयेन रागसंधुक्षणार्थम्॥ ३॥

प्रथम समागम में चुम्बन आदि का एक साथ और अतिव्यक्त प्रयोग नहीं करना चाहिये और कुछ विश्रब्ध नायिका में इनका वैकल्पिक प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि राग की यही रीति है। नायिका के पूर्ण विश्रब्ध हो जाने पर—राग और रति के बढ़ जाने पर—राग को प्रदीप्त करने (भड़काने) के लिये इनका शीघ्रतापूर्वक और एक साथ प्रयोग करना चाहिये॥ ३॥

ललाटालककपोलनयनवक्षःस्तनोष्ठान्तर्मुखेषु चुम्बनम्॥ ४॥

मस्तक, केश, कपोल, नेत्र, वक्ष, स्तन, ओष्ठ और मुख का आन्तरिक भाग—ये चुम्बन के स्थान हैं॥ ४॥

ऊरुसन्धिबाहुनाभिमूलयोर्लाटानाम्॥ ५॥

लाटवासियों की रीति—लाट देश के निवासी योनि के ओष्ठों, जाँघों के सन्धिस्थल और काँख का भी चुम्बन करते हैं॥ ५॥

रागवशाद्देशप्रवृत्तेश्च सन्ति तानि तानि स्थानानि, न तु सर्वजनप्रयोज्यानीति वात्स्यायनः ॥ ६ ॥

स्थानों पर वात्स्यायन की व्यवस्था—जो व्यक्ति रागवश या देशाचार के कारण जाँघ आदि स्थानों का चुम्बन करते हैं, ये स्थान उन ही के चुम्बन के योग्य हैं। शिष्टजनों को उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये ॥ ६ ॥

तद्यथा—निमित्तकं स्फुरितकं घट्टितकमिति त्रीणि कन्याचुम्बनानि ॥ ७ ॥

कन्या के चुम्बन—कन्या या नवपरिणीता, जिसने किसी पुरुष के साथ समागम न किया हो, फलतः जो अक्षतयोनि हो, का चुम्बन तीन प्रकार से होता है—निमित्तक, स्फुरितक और घट्टितक ॥ ७ ॥

बलात्कारेण नियुक्ता मुखे मुखमाधत्ते न तु विचेष्टत इति निमित्तकम् ॥ ८ ॥

निमित्तक—नायक द्वारा आग्रहपूर्वक चुम्बन के लिये नियुक्त की गयी नायिका जब अपना मुख नायक के मुख पर रख दे, लेकिन सङ्कोचवश चुम्बन की कोई चेष्टा न करे, तो उसे निमित्तक चुम्बन कहते हैं ॥ ८ ॥

वदने प्रवेशितं चौष्ठं मनागपत्रपादग्रहीतुमिच्छन्ती स्पन्दयति स्वमोष्ठं नोत्तरमुत्सहत इति स्फुरितकम् ॥ ९ ॥

स्फुरितक—नायक द्वारा अपना अधर नायिका के मुख में रख देने पर संकोच के किञ्चित् शिथिल हो जाने के कारण, जब नायिका के अधर को पकड़ने की इच्छा से अपने अधर को फड़काये, लेकिन लज्जावश ऊपर के ओष्ठ को न चलाये, तो इस चुम्बन को स्फुरितक कहते हैं ॥ ९ ॥

ईषत्परिगृह्य विनिमीलितनयना करेण च तस्य नयने अवच्छादयन्ती जिह्वाग्रेण घट्टयति इति घट्टितकम् ॥ १० ॥

घट्टितक—लज्जा के कुछ अधिक हट जाने पर जब नायिका, अपने मुख में रखे नायक के अधर को, अपने ओष्ठों में दबाकर, आँखें बन्द करके तथा अपने हाथों से नायक के नयनों को भी बन्द करके, जिह्वा के अग्रभाग को उसके ओष्ठों पर रगड़े, तो यह घट्टितक चुम्बन कहलाता है ॥ १० ॥

समं तिर्यगुद्भ्रान्तमवपीडितकमिति चतुर्विधमपरे ॥ ११ ॥

शेष नायिकाओं के चुम्बन—नवपरिणीत नायक-नायिकाओं के अतिरिक्त शेष के चार प्रकार के चुम्बन होते हैं—सम, तिर्यक्, उद्भ्रान्त और अवपीड़ितक ॥ ११ ॥

अङ्गुलिसम्पुटेन पिण्डीकृत्य निर्दशनमोष्ठपुटेनावपीडयेदित्यवपीडितकं पञ्चममपि करणम् ॥ १२ ॥

आकृष्ट चुम्बन—अङ्गूठा और तर्जनी अङ्गुलि से नायिका के अधर को गोल करके, अपने दोनों ओष्ठों से बिना दाँत लगाये ही उसका अवपीड़न 'अवपीड़ितक' नामक पाँचवाँ चुम्बन है ॥ १२ ॥

द्यूतं चात्र प्रवर्तयेत् ॥ १३ ॥

चुम्बनद्यूत—नायक और नायिका को एक-दूसरे के अधर-चुम्बन की बाजी (शर्त) भी लगानी चाहिये ॥ १३ ॥

पूर्वमधरसम्पादनेन जितमिदं स्यात् ॥ १४ ॥

चुम्बनद्यूत का लक्षण—नायक-नायिका में जो पहले दूसरे का अधर चूम ले, वही जीतेगा ॥ १४ ॥

तत्र जिता सार्धरुदितं करं विधुनुयात् प्रणुदेद्दशेत् परिवर्तयेद् बलादाहृता विवदेत् पुनरप्यस्तु पण इति ब्रूयात्। तत्रापि जिता द्विगुणमायस्येत् ॥ १५ ॥

द्यूतकलह—यदि नायिका चुम्बनद्यूत में पराजित हो जाये, तो हाथों को नचा नचाकर रोने लग जाये, पति को ठेलकर एक ओर कर दे, दाँतों से उसे काट ले और दूसरी ओर मुख कर ले। यदि पति अनुनय विनय करे, तो उससे वाग्युद्ध प्रारम्भ कर दे, और पुनः बाजी लगाने को कहे। यदि दोबारा भी पराजित हो जाये, तो पहले से दुगुना कलह और कोलाहल करे ॥ १५ ॥

विश्रब्धस्य प्रमत्तस्य वाधरमवगृह्य दशनान्तर्गतमनिर्गमं कृत्वा हसेदुत्क्रोसेत् तर्जयेद्वल्गेदाह्वयेन्नृत्येत्प्रनर्तितभ्रुणा च विचलनयनेन मुखेन विहसन्ती तानि तानि च ब्रूयात्। इति चुम्बनद्यूतकलहः ॥ १६ ॥

कपटद्यूत—निष्कपट चुम्बनद्यूत में पराजित नायिका, विश्वस्त या असावधान नायक के अधर को दाँतों के मध्य इस प्रकार पकड़े कि नायक द्वारा अधर स्वतः न निकाला जा सके। अपनी इस अप्रत्याशित जीत पर खुलकर हँसे, अपनी जीत की घोषणा करे, अधर को दाँतों से काटने की धमकी दे, विलासपूर्वक शरीर को मटकाये, अधर छुड़ाने का नायक को आह्वान दे, प्रसन्नतापूर्वक नृत्य करे और भौंहे नचाये, आँखें चलाती और हँसती हुई राग को बढ़ाने वाली बातें कहें। इस प्रकार चुम्बनद्यूत सम्बन्धी प्रणयकलह समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

एतेन नखदशनच्छेद्यप्रहणनद्यूतकलहा व्याख्याताः ॥ १७ ॥

नखक्षतादि का कलह—चुम्बन के कलह से नखक्षत, दन्तक्षत और प्रहणन के द्यूतों को भी कह दिया गया है, अर्थात् नखक्षत, दन्तक्षत और प्रहणन के द्यूतों और उनमें सन्निहित कलहों की भी यही रीति है ॥ १७ ॥

चण्डवेगयोरेव त्वेषां प्रयोगः। तत्सात्म्यात् ॥ १८ ॥

नखक्षत आदि के द्यूत और कलह का प्रयोग चण्डवेग वाले नायक नायिकाओं में ही होता है, क्योंकि यह उन की प्रकृति के अनुकूल पड़ता है ॥ १८ ॥

तस्यां चुम्बन्त्यामयमप्युत्तरं गृह्णीयात्। इत्युत्तरचुम्बितम् ॥ १९ ॥

उत्तर-ओष्ठ-चुम्बन—जब नायिका नायक का अधरपान कर रही हो, तो अवसर पाकर नायक भी उसके ऊपर के ओष्ठ को पकड़ ले और उसका चुम्बन करे—इस प्रकार के चुम्बन को उत्तर चुम्बन कहते हैं ॥ १९ ॥

ओष्ठसंदंशेनावगृह्यौष्ठद्वयमपि चुम्बेत्। इति सम्पुटकं स्त्रियाः, पुंसो वाऽजात-व्यञ्जनस्य ॥ २० ॥

दोनों ओष्ठों के चुम्बन की विधि—अपने दोनों ओष्ठों से नायिका के दोनों ओष्ठों का

चुम्बन करे। यह चुम्बन नायिका भी कर सकती है, यदि नायक बिना मूँछों वाला हो। इस प्रकारका चुम्बन सम्पुटक कहलाता है॥ २०॥

तस्मिन्नितरोऽपि जिह्वयास्या दशनान् घट्टयेत्, तासु जिह्वां चेति जिह्वायुद्धम्॥ २१॥

अन्तर्मुखचुम्बन—नायक या नायिका द्वारा सम्पुटक चुम्बन करने पर दूसरा अपनी जिह्वा को चुम्बन लेने वाले के दाँतों, तालु और जिह्वा पर फेरे, तो यह जिह्वायुद्ध कहलाता है॥ २१॥

एतेन बलाद्वदनरदनग्रहणं दानं च व्याख्यातम्॥ २२॥

मुखदन्तयुद्ध—इस जिह्वायुद्ध से ही मुखयुद्ध और दन्तयुद्ध भी कह दिया गया है अर्थात् जिह्वायुद्ध के समान ही मुखयुद्ध और दन्तयुद्ध भी समझना चाहिये॥ २२॥

समं पीडितमञ्चितं मृदु शेषाङ्गेषु चुम्बनं स्थानविशेषयोगात्। इति चुम्बन-विशेषाः॥ २३॥

शेषाङ्गचुम्बन—शेष अङ्गों में सुविधानुसार सम, पीड़ित, अंचित और मृदु—ये चार प्रकार के चुम्बन होते हैं। इस प्रकार चुम्बन के भेद समाप्त हुए॥ २३॥

सुप्तस्य मुखमवलोकयन्त्या स्वाभिप्रायेण चुम्बनं रागदीपनम्॥ २४॥

रागदीपन—सोये हुए नायक के मुख को देखती हुई नायिका द्वारा चुम्बन अनुराग के दीपन (जागरण एवं रागवर्धन) के कारण 'रागदीपन' कहलाता है॥ २४॥

प्रमत्तस्य विवदमानस्य वाऽन्यतोऽभिमुखस्य सुप्ताभिमुखस्य वा निद्राव्याघातार्थं चलितकम्॥ २५॥

चलितक—जब नायक नायिका की ओर से असावधान हो, उससे विवाद में लीन हो, उससे विमुख होकर किसी अन्य विषय में संलग्न हो, अथवा सोने को तत्पर हो, तो उसे नींद से जगाने के लिये (अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करने, विवाद समाप्त करने एवं तन्द्रा दूर करने, अर्थात् उसे भोगरत बनाने के लिये) जो चुम्बन होता है, उसे चलितक चुम्बन कहते हैं॥ २५॥

चिररात्रावागतस्य शयनसुप्तायाः स्वाभिप्रायचुम्बनं प्रातिबोधिकम्॥ २६॥

प्रातिबोधिक—रात को देर से लौटा नायक, शैय्या पर सोयी हुई नायिका का चुम्बन अपने अभिप्राय से करे, तो वह चुम्बन प्रातिबोधिक कहलाता है॥ २६॥

सापि तु भावजिज्ञासार्थिनी नायकस्यागमनकालं संलक्ष्य व्याजेन सुप्ता स्यात्॥ २७॥

इसकी विधि—नायक के प्रेम की परीक्षा करने के लिये नायिका उसके आगमन-काल को जानकर बहाना बनाकर सो जाये॥ २७॥

आदर्शे कुड्ये सलिले वा प्रयोज्यायाश्छायाचुम्बनमाकारप्रदर्शनार्थमेव कार्यम्॥ २८॥

छायाचुम्बन—प्रेमप्रदर्शनार्थ दर्पण, दीवार या जल में पड़ रही नायक या नायिका की छाया का चुम्बन करना चाहिये—यह छायाचुम्बन कहलाता है॥ २८॥

बालस्य चित्रकर्मणः प्रतिमायाश्च चुम्बनं संक्रान्तकमालिङ्गनं च॥ २९॥

संक्रान्तकचुम्बन—बालक, चित्र और प्रतिमा के चुम्बन और आलिङ्गन के बहाने अपना प्रेम-प्रदर्शित करना चाहिये—यह संक्रान्तकचुम्बन या आलिङ्गन कहलाता है ॥ २९ ॥

तथा निशि प्रेक्षणके स्वजनसमाजे वा समीपे गतस्य प्रयोज्याया हस्ताङ्गुलिचुम्बनं संविष्टस्य वा पादाङ्गुलिचुम्बनम् ॥ ३० ॥

अङ्गुलिचुम्बन—रात्रि में होने वाले खेल-तमाशे या स्वजन सम्बन्धियों के मध्य आयोजित कार्यक्रम में, समीप में आये या साथ-साथ होने पर नायक या नायिका के हाथ की अंगुलि को और सोते हुए के पैर की अंगुलि का चुम्बन कर प्रेम प्रदर्शित करना चाहिये—इसे ही अंगुलिचुम्बन कहा जाता है ॥ ३० ॥

संवाहिकायास्तु नायकमाकारयन्त्या निद्रावशादकामाया इव तस्योर्वोर्वदनस्य निधानमूरुचुम्बनं चेत्याभियोगिकानि ॥ ३१ ॥

संवाहिका की प्रेमाभिव्यक्ति—यदि संवाहिका (हाथ-पैर दबाने वाली स्त्री) नायक से प्रेम करती हो, तो अपना प्रेम प्रदर्शित करने के लिये निद्रा के बहाने, उसकी जाँघ पर अपना सिर रख दे और फिर उसे चूम ले—यह सब मिलन के उपाय हैं ॥ ३१ ॥

भवति चात्र श्लोकः—

कृते प्रतिकृतं कुर्यात् ताडिते प्रतिताडितम् ।
करणेन च तेनैव चुम्बिते प्रतिचुम्बितम् ॥ ३२ ॥

इस विषय में एक आनुवंश्य श्लोक है—

समागम के समय रागभाव उद्दीप्त करने के लिये नायक जो भी करे, नायिका को वही करना चाहिये। यदि नायक हस्तप्रहार करे, तो नायिका को भी उसी प्रकार हस्तप्रहार करना चाहिये, नायक जिस रीति से चुम्बन करे, नायिका को भी उसी रीति से चुम्बन करना चाहिये ॥ ३२ ॥

चुम्बनादिविकल्पप्रकरण नामक तृतीय अध्याय सम्पन्न ॥

●

चतुर्थ अध्याय

नखक्षत आदि प्रकरण

रागवृद्धौ सङ्घर्षात्मकं नखविलेखनम् ॥ १ ॥

नखक्षत का स्वरूप—नायक-नायिका में राग बढ़ जाने पर परस्पर संघर्षात्मक रूप में नखक्षत किये जाते हैं ॥ १ ॥

तस्य प्रथमसमागमे प्रवासप्रत्यागमने प्रवासगमने क्रुद्धप्रसन्नायां मत्तायां च प्रयोगः । न नित्यमचण्डवेगयोः ॥ २ ॥

समय और स्थान—प्रथम समागम में, प्रवास से लौटने पर, प्रवास पर जाते समय, मानवती नायिका के प्रसन्न होने पर और नायिका के काम या मद से उन्मत्त होने पर नखक्षतों का

प्रयोग होता है। मन्दवेग नायक-नायिकाओं में इनका सदैव प्रयोग नहीं होता, अर्थात् चण्डवेग नायक-नायिका ही इसका नित्य प्रयोग कर सकते हैं॥ २॥

तथा दशनच्छेद्यस्य सात्म्यवशाद्वा॥ ३॥

नखक्षतों के समान, इन्हीं परिस्थितियों में, ही दन्तक्षतों का भी प्रयोग किया जाता है॥ ३॥

तदाच्छुरितकमर्धचन्द्रो मण्डलं रेखा व्याघ्रनखं मयूरपदकं शशप्लुतक-मुत्पलपत्रकमिति रूपतोऽष्टविकल्पम्॥ ४॥

नखक्षत के आठ भेद—(१) आच्छुरितक, (२) अर्धचन्द्र, (३) मण्डल, (४) रेखा, (५) व्याघ्रनख, (६) मयूरपदक, (७) शशप्लुतक और (८) उत्पलपत्रक॥ ४॥

कक्षौ स्तनौ गलः पृष्ठं जघनमुरू च स्थानानि॥ ५॥

नखक्षतों के वे स्थान—काँख, स्तन, ग्रीवा (गला), पीठ, जाँघें और ऊरु (जाँघों के जोड़ या योनिस्थल)॥ ५॥

प्रवृत्तरतिचक्राणां न स्थानमस्थानं वा विद्यत इति सुवर्णनाभः॥ ६॥

समागम में प्रवृत्त व्यक्तियों (नायक एवं नायिका) को यह ज्ञान ही नहीं रहता कि कहाँ नखक्षत करने चाहिये और कहाँ नहीं—ऐसा आचार्य सुवर्णनाभ का मत है॥ ६॥

तत्र सव्यहस्तानि प्रत्यग्रशिखराणि द्वित्रिशिखराणि चण्डवेगयोर्नखानि स्युः॥ ७॥

नखों का आश्रय और स्वरूप—चण्डवेग नायक-नायिकाओं के बायें हाथ के नख लम्बे और नुकीले होते हैं और उनमें दो-तीन नोकें निकली रहती हैं॥ ७॥

अनुगतराजि सममुज्ज्वलममलिनमविपाटितं विवर्धिष्णु मृदुस्निग्धदर्शनमिति नखगुणाः॥ ८॥

अच्छे नखों में ये गुण—(१) मध्यवर्ती रेखाएँ भिन्न वर्ण वाली न हों, (२) समतल हों, ऊँचे-नीचे न हों, (३) सहज कान्ति से युक्त हों, (४) स्वच्छ हों, (५) कटे-फटे न हों, (६) बढ़ने वाले हों, (७) सुकोमल हों और (८) देखने में चिकने हों॥ ८॥

दीर्घाणि हस्तशोभीन्यालोके च योषितां चित्तग्राहीणि गौडानां नखानि स्युः॥ ९॥

गौड़ देशवासियों के बड़े-बड़े नख स्वभाव से ही हाथ को शोभित करने वाले तथा देखने मात्र से स्त्रियों के मन को आकृष्ट करने वाले होते हैं॥ ९॥

ह्रस्वानि कर्मसहिष्णूनि विकल्पयोजनासु च स्वेच्छापातीनि दाक्षिणा-त्यानाम्॥ १०॥

दक्षिण देशवासियों के नख छोटे तथा अर्धचन्द्र आदि नखक्षतों में मनोनुकूल चलने वाले होते हैं॥ १०॥

मध्यमान्युभयभाञ्जि महाराष्ट्रकाणामिति॥ ११॥

महाराष्ट्रवासियों के नख मध्यम प्रकार के होते हैं अर्थात् न गौड़ों के समान दीर्घ आकार के होते हैं और न दाक्षिणात्यों के समान ह्रस्व आकार के॥ ११॥

तैः सुनियमितैर्हनुदेशे स्तनयोरधरे वा लघुकरणमनुद्गतलेखं स्पर्शमात्र-जननाद् रोमाञ्चकरमन्ते सन्निपातवर्धमानशब्दमाच्छुरितकम्॥ १२॥

आच्छुरितक—हाथ की अँगुलियों को एक साथ मिलाकर कपोल, स्तन या अधर पर ऐसा हल्का स्पर्श किया जाये कि शरीर रोमाञ्चित हो उठे, लेकिन क्षत न हो, और नखों के परस्पर टकराने से चटचट शब्द बढ़े, उसे आच्छुरितक नखक्षत कहते हैं॥ १२॥

प्रयोज्यायां च तस्याङ्गसंवाहने शिरसः कण्डूयने पिटकभेदने व्याकुलीकरणे भीषणेन प्रयोगः॥ १३॥

अवस्थानुरूप प्रयोग—जब नायिका, नायक का शरीर दबा रही हो, सिर खुजा रही हो, मुंहासे फोड़ रही हो अथवा जब उसे कामोत्तेजित करना हो, तब इसका अत्यधिक प्रयोग होता है। इसका प्रयोग नायक और नायिका, दोनों एक-दूसरे को उत्तेजित करने में कर सकते हैं॥ १३॥

ग्रीवायां स्तनपृष्ठे च वक्रो नखपदनिवेशोऽर्धचन्द्रकः॥ १४॥

अर्धचन्द्र और उसका स्थान—जब गले और स्तनों पर अर्धचन्द्र के समान नखों से चिह्न अङ्कित किया जाये तो उसे अर्धचन्द्र कहते हैं॥ १४॥

तावेव द्वौ परस्पराभिमुखौ मण्डलम्॥ १५॥

मण्डल—जब दो अर्धचन्द्र परस्पर सम्मुख अङ्कित किये जाते हैं तो उसे मण्डल कहते हैं॥ १५॥

नाभिमूलककुन्दरवंक्षणेषु तस्य प्रयोगः॥ १६॥

नाभिमूल (पेड़ू), ककुन्दर (नितम्बगर्त) और ऊरुसन्धि (योनि) पर इसका प्रमुख रूप में प्रयोग होता है॥ १६॥

सर्वस्थानेषु नातिदीर्घा लेखा॥ १७॥

लेखा—नखों से अङ्कित रेखा, जो बहुत लम्बी न हो, लेखा कहलाती है। इसे नायिका के किसी भी अङ्ग में अङ्कित किया जा सकता है॥ १७॥

सैव वक्रा व्याघ्रनखकमास्तनमुखम्॥ १८॥

व्याघ्रनख—यदि लेखा स्तन के मुख (चूचुक) से ऊपर की ओर कुछ टेढ़ी हो तो व्याघ्रनख कहलाती है॥ १८॥

पञ्चभिरभिमुखैर्लेखा चूचुकाभिमुखी मयूरपदकम्॥ १९॥

मयूरपदक—पाँचों नखों से स्तनों को पकड़कर खींचने से स्तनों के मुख (चूचुक) पर बनी रेखाएँ मयूरपदक कहलाती हैं॥ १९॥

तत्सम्प्रयोगश्लाघायाः स्तनचूचुके सन्निकृष्टानि पञ्चनखपदानि शशप्लुतकम्॥ २०॥

शशप्लुतक—समागम की प्रशंसा चाहने वाली नायिकाओं के स्तनों के चूचुकों पर खिंची हुई पाँचों नखों की रेखाएँ शशप्लुतक कहलाती हैं॥ २०॥

स्तनपृष्ठे मेखलापथे चोत्पलपत्राकृतीत्युत्पलपत्रकम्॥ २१॥

उत्पलपत्रक—स्तनों एवं कमर में नखों से अङ्कित कमल की आकृति का चिह्न उत्पल-पत्रक कहलाता है ॥ २१ ॥

ऊर्वोः स्तनपृष्ठे च प्रवासं गच्छतः स्मारणीयकं संहताश्चतस्त्रस्तिस्त्रो वा लेखाः। इति नखकर्माणि ॥ २२ ॥

स्मारणीयक—प्रवास जाते समय पुरुष, स्त्री के स्तनों और जाँघों पर स्मृति के लिये मिली हुई तीन या चार रेखाएँ खींच देते हैं। स्मृति के लिये होने के कारण ये स्मारणीयक कहलाते हैं। नखक्षत के भेद समाप्त हुए ॥ २२ ॥

आकृतिविकारयुक्तानि चान्यान्यपि कुर्वीत ॥ २३ ॥

इनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की आकृति के चिह्न भी बनाने चाहिये ॥ २३ ॥

विकल्पानामनन्तत्वादानन्त्याच्च कौशलविधेरभ्यासस्य च सर्वगामित्वाद्-रागात्मकत्वाच्छेद्यस्य प्रकारान् कोऽभिसमीक्षितुमर्हतीत्याचार्याः ॥ २४ ॥

भेद और कौशल की अनन्तता—नखक्षत के भेद अनन्त हैं, कौशल की भी कोई सीमा नहीं है, और यह व्यक्ति के अभ्यास पर निर्भर करता है, फलतः उसे सभी स्थलों पर और सभी प्रकार के नखक्षत करने का अभ्यास होना चाहिये। क्योंकि कामातुर होकर ही नायक नखक्षतों का प्रयोग करता है, अतः उसके समस्त भेदों की समीक्षा (विवेचना) कौन कर सकता है—ऐसा कामशास्त्र के आचार्यों का मत है ॥ २४ ॥

भवति हि रागेऽपि चित्रापेक्षा। वैचित्र्याच्च परस्परं रागो जनयितव्यः। वैचक्षण्ययुक्ताश्च गणिकास्तत्कामिनश्च परस्परं प्रार्थनीया भवन्ति। धनुर्वेदादिष्वपि हि शस्त्रकर्मशास्त्रेषु वैचित्र्यमेवापेक्ष्यते किं पुनरिहेति वात्स्यायनः ॥ २५ ॥

वात्स्यायन का मत—सामान्य अवस्था में ही नहीं, रागावस्था में भी वैचित्र्य की अपेक्षा रहती है, क्योंकि वैचित्र्य से ही नायक और नायिका परस्पर राग (कामोद्रेक) को उत्पन्न करते हैं। यही कारण है कि कामकलानिपुण गणिका और क्रियाविदग्ध कामी, दोनों एक-दूसरे की कामना करते हैं। जब शस्त्रकर्म से सम्बद्ध धनुर्वेद आदि शास्त्रों में भी शस्त्रसञ्चालन का वैचित्र्य अपेक्षित रहता है, तब कामशास्त्र में, जिसका उद्देश्य ही नवीनता और सरसता से प्रेम और काम की अभिवृद्धि करना है, कलानैपुण्य और क्रियावैचित्र्य का महत्त्व क्यों न अपेक्षित हो—ऐसा महर्षि वात्स्यायन का मत है ॥ २५ ॥

न तु परपरिगृहीतास्वेवं कुर्यात्। प्रच्छन्नेषु प्रदेशेषु तासामनुस्मरणार्थं रागवर्धनाच्च विशेषान् दर्शयेत् ॥ २६ ॥

चौर्यरति में क्षत-निषेध—परकीया नायिका में नखक्षत-दन्तक्षत आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिये। स्मृति एवं अनुरागवर्धन के लिए केवल गुह्यस्थानों पर नखक्षत बना देने चाहिये, अन्यत्र नहीं ॥ २६ ॥

नखक्षतानि पश्यन्त्या गूढस्थानेषु योषितः।
चिरोत्सृष्टाप्यभिनवा प्रीतिर्भवति पेशला ॥ २७ ॥

नखक्षतों की प्रशंसा—गुह्यस्थानों में नखक्षतों को देखकर तरुणी की त्यागी हुई पुरातन प्रीति भी सहज रूप में नवीन हो जाती है ॥ २७ ॥

चिरोत्सृष्टेषु रागेषु प्रीतिर्गच्छेत् पराभवम्।
रागायतनसंस्मारि यदि न स्यान्नखक्षतम्॥ २८॥

यदि नायिका के शरीर पर राग के आश्रय (रूप, गुण, यौवन आदि) का स्मरण कराने वाले नखक्षत न हों, तो त्यागी हुई पुरातन प्रीति धीरे धीरे नष्ट हो जाती है॥ २८॥

पश्यतो युवतिं दूरान्नखोच्छिष्टपयोधराम्।
बहुमानः परस्यापि रागयोगश्च जायते॥ २९॥

नखों से चिह्नित स्तनों वाली तरुणी को दूर से ही देखकर अपरिचित पुरुष में भी उसके प्रति सम्मान और अनुराग उत्पन्न हो जाता है॥ २९॥

पुरुषश्च प्रदेशेषु नखचिह्नैर्विचिह्नितः।
चित्तं स्थिरमपि प्रायश्चलयत्येव योषितः॥ ३०॥

इसी प्रकार यदि पुरुष के विभिन्न अङ्गों में नायिका के नखक्षत अंकित हों, तो स्त्रियों का स्थिर मन भी प्रायः चलायमान हो जाता है॥ ३०॥

नान्यत् पटुतरं किञ्चिदस्ति रागविवर्धनम्।
नखदन्तसमुत्थानां कर्मणां गतयो यथा॥ ३१॥

पुरुष और स्त्री की कामवासना की वृद्धि में नखक्षत और दन्तक्षत जितने सहायक होते हैं, उतनी अन्य कोई उपक्रिया नहीं॥ ३१॥

नखक्षतादिप्रकरण नामक चतुर्थ अध्याय सम्पन्न॥

●

पञ्चम अध्याय

दशनक्षतविधिप्रकरण

उत्तरौष्ठमन्तर्मुखं नयनमिति मुक्त्वा चुम्बनवद् दशनरदनस्थानानि॥ १॥

दन्तक्षत के स्थान—ऊपर का ओष्ठ, अन्तर्मुख (मुख का आन्तरिक भाग, तालु आदि) और नेत्र—इनके अतिरिक्त शेष सभी स्थान, जो चुम्बन के लिये बताये गये हैं, दन्तक्षत के भी स्थान हैं॥ १॥

समाः स्निग्धच्छाया रागग्राहिणी युक्तप्रमाणा निश्छिद्रास्तीक्ष्णाग्रा इति दशनगुणाः॥ २॥

दाँतों के गुण—अच्छे दाँतों के गुण ये हैं—दाँत ऊँचे-नीचे न होकर समतल होने चाहियें, साफ और चमकीले होने चाहियें, पान आदि की लालिमा को शीघ्र ही पकड़ने वाले होने चाहियें, बहुत पतले और बहुत मोटे न होकर सुन्दर आकार के होने चाहियें, परस्पर सटे हुए और नुकीले होने चाहियें॥ २॥

कुण्ठा राज्युद्गताः परुषा: विषमाः श्लक्ष्णाः पृथवो विरला इति च दोषाः॥ ३॥

दाँतों के दोष—कुण्ठित (अतीक्ष्ण या भोथरे) हों; तीक्ष्ण न हों, दन्तपंक्ति से बाहर निकले हुए हों, स्वाभाविक चमक से रहित हों, या रूक्ष हो, ऊँचे नीचे या खुरदुरे हों, बहुत पतले या बहुत मोटे हों, और विरल हों॥ ३॥

गूढकमुच्छूनकं बिन्दुर्बिन्दुमाला प्रवालमणिर्मणिमाला खण्डाभ्रकं वराहचर्वितकमिति दशनच्छेदनविकल्पाः॥ ४॥

दन्तक्षत के आठ भेद—गूढ़क, उच्छूनक, बिन्दु, बिन्दुमाला, प्रवालमणि, मणिमाला, खण्डाभ्रक और वराहचर्वितक॥ ४॥

नातिलोहितेन रागमात्रेण विभावनीयं गूढकम्॥ ५॥

गूढ़क—जब अधर को इस प्रकार कोमलतापूर्वक दबाया जाये कि ओष्ठ में चिह्न न बने, मात्र हल्की सी लालिमा ही आये, तो उसे गूढ़क कहते हैं॥ ५॥

तदेव पीडनादुच्छूनकम्॥ ६॥

उच्छूनक—जब गूढ़क कुछ दबाकर सम्पादित किया जाये, तो यह दन्तक्षत उच्छूनक कहलाता है॥ ६॥

तदुभयं बिन्दुरधरमध्य इति॥ ७॥

गूढ़क, उच्छूनक और बिन्दु का स्थान—गूढ़क, उच्छूनक और बिन्दु—ये तीनों दन्तक्षत अधर के मध्य में ही किये जाते हैं॥ ७॥

उच्छूनकं प्रवालमणिश्च कपोले॥ ८॥

उच्छूनक और प्रवालमणि का स्थान—उच्छूनक और प्रवालमणि दन्तक्षत कपोल पर किये जाते हैं॥ ८॥

कर्णपूरचुम्बनं नखदशनच्छेद्यमिति सव्यकपोलमण्डनानि॥ ९॥

कर्णपूर (कर्णफूल या कर्णाभरण), चुम्बन, नखक्षत और दन्तक्षत—ये सब बायें कपोल के भूषण हैं। अर्थात् इन्हें नायिका के बायें कपोल पर ही सम्पादित करना चाहिये॥ ९॥

दन्तौष्ठसंयोगाभ्यासनिष्पादनात् प्रवालमणिसिद्धिः॥ १०॥

प्रवालमणि—ऊपर के दाँत और अधर से बार-बार एक ही स्थान को दबाते रहने से प्रवालमणि दन्तक्षत होता है॥ १०॥

सर्वस्येयं मणिमालायाश्च॥ ११॥

मणिमाला—एक ही स्थान पर कई प्रवालमणि बनाना मणिमाला कहलाता है॥ ११॥

अल्पदेशायाश्च त्वचो दशनद्वयसंदंशजा बिन्दुसिद्धिः॥ १२॥

बिन्दु—ऊपर और नीचे के दो दाँतों की नोंक से दबाने पर तिलभर चिह्न बना देना बिन्दु कहलाता है॥ १२॥

सर्वैर्बिन्दुमालायाश्च॥ १३॥

बिन्दुमाला—एक ही स्थान पर सब दाँतों से बने अनेक बिन्दुओं को (माला के समान आकार होने के कारण) बिन्दुमाला कहते हैं॥ १३॥

तस्मान्मालाद्वयमपि गलकक्षवंक्षणप्रदेशेषु॥ १४॥

मणिमाला और बिन्दुमाला का स्थान—अतएव ये दोनों मालाएँ—मणिमाला और बिन्दुमाला—गला, काँख और गुह्यस्थल पर ही होती हैं॥ १४॥

ललाटे चोर्वोर्बिन्दुमाला॥ १५॥

बिन्दुमाला का स्थान—बिन्दुमाला का प्रयोग मस्तक और जाँघों पर भी होता है॥ १५॥

मण्डलमिव विषमकूटकयुक्तं खण्डाभ्रकं स्तनपृष्ठ एव॥ १६॥

खण्डाभ्रक—मण्डल (वृत्त या घेरे) के समान दाँतों के छिन्न और असमान चिह्न, बादल के टुकड़े के समान होने के खण्डाभ्रक कहलाते हैं। यह स्तनों पर किया जाता है॥ १६॥

संहताः प्रदीर्घा बह्व्यो दशनपदराजयस्ताम्रान्तराला वराहचर्वितकम्। स्तनपृष्ठ एव॥ १७॥

वराहचर्वितक—परस्पर सटी हुई, लम्बे लम्बे दन्तक्षत की पंक्तियाँ जिनका मध्य भाग दाँतों से चबाने के कारण ताँबे-जैसा लाल हो गया हो, वराहचर्वितक कहलाता है। यह भी स्तनपृष्ठ पर ही अंकित किया जाता है॥ १७॥

तदुभयमपि च चण्डवेगयोः। इति दशनच्छेद्यानि॥ १८॥

खण्डाभ्रक और वराहचर्वितक—इन दोनों का प्रयोग चण्डवेग वाले नायक और नायिका ही करते हैं। दन्तक्षत के भेद समाप्त हुए॥ १८॥

विशेषके कर्णपूरे पुष्पापीडे ताम्बूलपलाशे तमालपत्रे चेति प्रयोज्यागामिषु नखदशनच्छेद्यादीन्याभियोगिकानि॥ १९॥

सांक्रान्तिक आभियोगिक—मस्तक पर शोभार्थ धारण किये जाने वाले भोजपत्र आदि से निर्मित तिलक पर, कानों में पहने जाने वाले नीलकमल पर, चोटी में बाँधे जाने वाले फूलों के गजरों पर, पान के बीड़े पर, सौर तमाल-पत्र पर जो नायिका को प्रेमवश भेजे जा रहे हों, नायक नखक्षत एवं दन्तक्षत अंकित करके अपना हृदयस्थ प्रेम व्यक्त करते हैं॥ १९॥

देशसात्म्याच्च योषित उपचरेत्॥ २०॥

देशोपचारप्रकरण—विभिन्न देशों में प्रचलित प्रवृत्तियों को ही देश्य कहते हैं, और ये स्त्री के उपचार होने से देशोपचार कहलाते हैं। इन्हें इस प्रकरण में कहते हैं—स्त्रियों के देश और प्रकृति के अनुरूप ही चुम्बन आदि का प्रयोग करना चाहिये॥ २०॥

मध्यदेश्या आर्यप्रायाः शुच्युपचाराश्चुम्बननखदन्तपदद्वेषिण्यः॥ २१॥

मध्यदेश में प्रायः आर्य जाति निवास करती है। इस जाति की स्त्रियाँ पवित्र प्रेम-व्यवहार और अच्छे आचरण वाली होती हैं। वे चुम्बन, नखक्षत और दन्तक्षत को पसन्द नहीं करती हैं॥ २१॥

बाह्लीकदेश्या आवन्तिकाश्च॥ २२॥

बाह्लीक देश और अवन्ति की स्त्रियाँ भी प्रायः ऐसी ही होती हैं॥ २२॥

चित्ररतेषु त्वासामभिनिवेशः॥ २३॥

बाह्लीक और अवन्ति देश की स्त्रियाँ चित्ररतों में विशेष आसक्ति रखती हैं॥ २३॥

(चित्ररतों को आगे—इसी अधिकरण के षष्ठ अध्याय में—कहेंगे।)

परिष्वङ्गचुम्बननखदन्तचूषणप्रधानाः क्षतवर्जिताः प्रहणनसाध्या मालव्य आभीर्यश्च ॥ २४ ॥

मालव और आभीर देश की स्त्रियाँ आलिङ्गन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत और शिश्न को चूसना अधिक पसन्द करती हैं। वे क्षत (घाव) नहीं चाहतीं, किन्तु प्रहणन में रुचि रखती हैं ॥ २४ ॥

सिन्धुषष्ठानां च नदीनामन्तरालीया औपरिष्टकसात्म्याः ॥ २५ ॥

पंजाब और सिन्ध प्रान्त की स्त्रियों को औपरिष्टक (मुखमैथुन) अनुकूल पड़ता है ॥ २५ ॥

चण्डवेगा मन्दसीत्कृता आपरान्तिका लाट्यश्च ॥ २६ ॥

अपरान्तक (सह्याद्रि का निकटवर्ती पश्चिमी सीमाप्रदेश) और लाट देश (सूरत, भड़ौंच एवं समीपवर्ती भूभाग) की स्त्रियाँ चण्डवेग होती हैं और वे समागम में प्रहारों को सहकर मन्द-मन्द सीत्कार करती हैं ॥ २६ ॥

(खरवेग और चण्डवेग में स्वल्प अन्तर है। खरवेग में खाज की अधिकता होती है जबकि चण्डवेग में राग या काम की अधिकता।)

दृढप्रहणनयोगिन्यः खरवेगा एव, अपद्रव्यप्रधानाः स्त्रीराज्ये कोशलायां च ॥ २७ ॥

स्त्रीराज्य और कोशल देश की स्त्रियाँ खरवेग होती हैं। ये समागम में शिश्न के दृढ़ प्रहार चाहती हैं और रमणेच्छा शान्त न होने पर अपद्रव्य (कृत्रिम शिश्न) का भी प्रयोग करती हैं ॥ २७ ॥

प्रकृत्या मृद्व्यो रतिप्रिया अशुचिरुचयो निराचाराश्चान्ध्र्यः ॥ २८ ॥

आन्ध्र—आन्ध्र देश की स्त्रियाँ कोमलाङ्गी, सम्भोगप्रिय, समागम में गन्दी रुचिवाली और आचरणहीन (व्यभिचारिणी) होती हैं ॥ २८ ॥

सकलचतुःषष्टिप्रयोगरागिण्योऽश्लीलपरुषवाक्यप्रियाः शयने च सरभसोपक्रमा महाराष्ट्रिकाः ॥ २९ ॥

महाराष्ट्र—महाराष्ट्र देश की स्त्रियाँ चौंसठ कलाओं के प्रयोग में अनुराग रखती हैं, वे समागम के समय अश्लील और परुष भाषा बोलती है और मैथुन का समारम्भ अत्यन्त साहस एवं उत्साहपूर्वक करती हैं ॥ २९ ॥

तथाविधा एव रहसि प्रकाशन्ते नागरिकाः ॥ ३० ॥

मगध (पटना प्रान्त) की स्त्रियाँ भी महाराष्ट्र की स्त्रियों के समान ही होती हैं, परन्तु ये कामकलाओं का अभ्यास और अश्लील एवं परुष वचनों का प्रयोग एकान्त में करती हैं ॥ ३० ॥

मृद्यमानाश्चाभियोगान्मन्दं मन्दं प्रसिञ्चन्ते द्रविड्यः ॥ ३१ ॥

द्रविड़—द्रविड़ देश की स्त्रियाँ आलिङ्गन आदि करते ही मन्द-मन्द रजःस्राव करने लगती हैं ॥ ३१ ॥

मध्यमवेगाः सर्वंसहाः स्वाङ्गप्रच्छादिन्यः पराङ्गहासिन्यः कुत्सिताश्लील-परुषपरिहारिण्यो वानवासिकाः ॥ ३२ ॥

वनवासी देश—वनवासी देश की स्त्रियाँ मध्यम वेग वाली होती हैं, वे नखक्षत, दन्तक्षत, कुचमर्दन आदि सभी को सहन कर जाती हैं। वे अपने अङ्गों को आच्छादित रखती हैं, किन्तु दूसरे के शरीरगत दोषों का उपहास करती हैं। वे कुत्सित, अश्लील और परुष स्वभाव वाले पुरुषों से घृणा करती हैं ॥ ३२ ॥

मृदुभाषिण्योऽनुरागवत्यो मृद्व्यङ्ग्यश्च गौड्यः ॥ ३३ ॥

गौड़—गौड़ देश की स्त्रियाँ मृदुभाषिणी, पति से अनुराग रखने वाली और कोमलाङ्गी होती हैं ॥ ३३ ॥

देशसात्म्यात् प्रकृतिसात्म्यं बलीय इति सुवर्णनाभः। न तत्र देश्या उपचाराः ॥ ३४ ॥

देशसात्म्य से प्रकृतिसात्म्य की महत्ता—देशाचार से व्यक्ति की प्रकृति और प्रवृत्ति अधिक बलवान् है, अतएव व्यक्ति की प्रकृति और प्रवृत्ति के विरुद्ध देशाचार नहीं अपनाना चाहिये—ऐसा आचार्य सुवर्णनाभ का मत है ॥ ३४ ॥

कालयोगाच्च देशाद् देशान्तरमुपचारवेषलीलाश्चानुगच्छन्ति। तच्च विद्यात् ॥ ३५ ॥

देशाचार की व्यापकता—समय के साथ-साथ एक देश के उपचार, वेशभूषा और कामक्रीड़ाएँ दूसरे देशों में भी पहुँच जाते हैं, अतएव दूसरे स्थानों के आचार-विचार को भी जान लेना चाहिये ॥ ३५ ॥

उपगूहनादिषु च रागवर्धनं पूर्वं पूर्वं विचित्रमुत्तरमुत्तरं च ॥ ३६ ॥

आलिङ्गन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत, प्रहणन और सीत्कार—इनमें प्रत्येक उपक्रिया अपने उत्तरवर्ती से अधिक कामोत्तेजक है, लेकिन पूर्ववर्ती से अधिक विचित्र है ॥ ३६ ॥

वार्यमाणश्च पुरुषो यत्कुर्यात्तदनु क्षतम्।
अमृष्यमाणा द्विगुणं तदेव प्रतियोजयेत् ॥ ३७ ॥

एकान्त की चेष्टाएँ—यदि ना करने पर भी पुरुष नखक्षत और दन्तक्षत का प्रयोग करे, तो स्त्री को चाहिये कि वह उससे दोगुना नखक्षत और दन्तक्षत का प्रयोग करे ॥ ३७ ॥

बिन्दोः प्रतिक्रिया माला मालायाश्चाभ्रखण्डकम्।
इति क्रोधादिवाविष्टा कलहान् प्रतियोजयेत् ॥ ३८ ॥

किस उपक्रिया का कौन दोगुना होता है, यह बताते हैं—बिन्दु के उत्तर में माला और माला के उत्तर में खण्डाभ्रक का प्रयोग करे। इसी प्रकार क्रोध से आविष्ट होकर कलह के कार्यों की योजना करे ॥ ३८ ॥

सकचग्रहमुन्नम्य मुखं तस्य ततः पिबेत्।
निलीयेत दशेच्चैव तत्र तत्र मदेरिता ॥ ३९ ॥

इसके पश्चात् एक हाथ से उस (नायक) के बाल पकड़कर और दूसरे हाथ में उसका

मुख झुकाकर अधरपान करे, प्रगाढ़ आलिङ्गन करे और कामोन्मत्त होकर उन-उन स्थानों पर दन्तक्षत करे, जहाँ विहित हों अथवा उसने किये हों॥ ३९॥

उन्नम्य कण्ठे कान्तस्य संश्रिता वक्षसः स्थलीम्।
मणिमालां प्रयुञ्जीत यच्चान्यदपि लक्षितम्॥ ४०॥

दूसरी विधि—प्रिय के वक्षस्थल पर बैठकर, एक हाथ से उसका मुख उठाकर और दूसरे हाथ को गले में डालकर ग्रीवा पर मणिमाला अथवा अन्य मोहक दन्तक्षत बना दे॥ ४०॥

दिवापि जनसम्बाधे नायकेन प्रदर्शितम्।
उद्दिश्य स्वकृतं चिह्नं हसेदन्यैरलक्षिता॥ ४१॥

प्रकाश की चेष्टाएँ—एकान्त की चेष्टाओं को कहकर, अब प्रकाश की चेष्टाएँ कहते हैं—न केवल रात्रि, बल्कि दिन में, मनुष्यों की भीड़ में भी नायक के शरीर पर अपने द्वारा किये गये चिह्नों (नखक्षत एवं दन्तक्षत) को लक्ष्य करके इस प्रकार हँसे कि कोई अन्य न जान पाये॥ ४१॥

विकूणयन्तीव मुखं कुत्सयन्तीव नायकम्।
स्वगात्रस्थानि चिह्नानि सासूयेव प्रदर्शयेत्॥ ४२॥

अपने मुख को चुम्बन लेने के समान संकुचित करके, नायक को झिड़कती हुई-सी, असहनशील के समान, पति द्वारा अपने शरीर पर अंकित किये गये चिह्नों (नखक्षत एवं दन्तक्षत)को दिखाये॥ ४२॥

परस्परानुकूल्येन तदेवं लज्जमानयोः।
संवत्सरशतेनापि प्रीतिर्न परिहीयते॥ ४३॥

परस्पर अनुकूलता और सलज्जता का भाव रखने वाले स्त्री-पुरुष की प्रीति सौ वर्ष में भी क्षीण नहीं होती॥ ४३॥

दशनक्षतविधिप्रकरण नामक पञ्चम अध्याय सम्पन्न॥

●

षष्ठ अध्याय

संवेशनप्रकार-प्रकरण

रागकाले विशालयन्त्येव जघनं मृगी संविशेदुच्चरते॥ १॥

उच्च और उच्चतर रत में मृगी—यदि मृगी (छोटी योनि वाली) नायिका बड़े शिश्न वाले वृष एवं अश्व नायक में समागम करे, तो अपनी जाँघों को चोड़ा ले॥ १॥

अवह्रासयन्तीव हस्तिनी नीचरते॥ २॥

नीच और नीचतर रत में हस्तिनी—यदि हस्तिनी (बड़ी योनि वाली) नायिका छोटे शिश्न वाले शश और वृष नायक से समागम करे, तो अपनी जाँघों को सिकोड़ ले॥ २॥

न्याय्यो यत्र योगस्तत्र समपृष्ठम्॥ ३॥

समरत की व्यवस्था—यदि नायक और नायिका के साधन (शिश्न एवं योनि) समान आकार वाले हों, तो नायिका को न जाँघें फैलाने की आवश्यकता होती है और न सिकोड़ने की॥ ३॥

आभ्यां वडवा व्याख्याता॥ ४॥

मृगी और हस्तिनी की व्यवस्था से **वड़वा नायिका की व्यवस्था** भी कह दी गयी है। (उसे शश नायक के साथ समागम करते समय नीचरत में जाँघों को सिकोड़ लेना चाहिये और अश्व नायक के साथ समागम करते समय—उच्चरत में—जाँघों को चौड़ा लेना चाहिये)॥ ४॥

तत्र जघनेन नायकं प्रतिगृह्णीयात्॥ ५॥

शिश्नग्रहण की विधि—समागम में स्त्री लेटकर पुरुष के शिश्न को ग्रहण करे, तो अपना शरीर ढीला छोड़ दे॥ ५॥

अपद्रव्याणि च सविशेषं नीचरते॥ ६॥

नीचरत में अपद्रव्य (कृत्रिम लिङ्ग) का प्रयोग योनि को फैलाकर ही करना चाहिये, सिकोड़कर नहीं॥ ६॥

उत्फुल्लकं विजृम्भितकमिन्द्राणिकं चेति त्रितयं मृग्याः प्रायेण॥ ७॥

मृगी के आसन—उत्फुल्लक, विजृम्भितक और इन्द्राणिक—ये तीन आसन प्रायः मृगी के होते हैं॥ ७॥

शिरो विनिपात्योर्ध्वं जघनमुत्फुल्लकम्॥ ८॥

उत्फुल्लक—जाँघों के ऊपरी भाग को नीचा और निचले भाग को ऊँचा कर देने को उत्फुल्लक आसन कहते हैं। (स्त्री के कटिभाग के नीचे तकिया रख देने से ऐसी स्थिति बन जाती है)॥ ८॥

तत्रापसारं दद्यात्॥ ९॥

इस उत्फुल्लक आसन में नायक-नायिका दोनों को पीछे सरकते रहना चाहिये॥ ९॥

अनीचे सक्थिनी तिर्यगवसज्य प्रतीच्छेदिति विजृम्भितकम्॥ १०॥

विजृम्भितक—स्त्री ऊपर उठी हुई जाँघों को फैला दे और पुरुष शिश्न को तिरछा करके उसमें प्रवेश कराये, तो यह विजृम्भितक आसन कहताला है॥ १०॥

पार्श्वयोः सममूरू विन्यस्य पार्श्वयोर्जानुनी निदध्यादित्यभ्यासयोगादिन्द्राणी॥ ११॥

इन्द्राणिक—मिली हुई जाँघों को बगल में रखकर और पुरुष की बगल में घुटनों को स्थापित कर देने पर इन्द्राणिक आसन होता है। यह आसन आभ्यासिक है अर्थात् अभ्यास से ही किया जा सकता है॥ ११॥

तयोच्चतररतस्यापि परिग्रहः॥ १२॥

इस इन्द्राणिक आसन से मृगी अश्व के साथ भी सुखपूर्वक समागम कर सकती है॥ १२॥

सम्पुटेन प्रतिग्रहो नीचरते॥ १३॥

नीच और नीचतर रत की व्यवस्था—नीचरत में सम्पुटक आदि आसनों से अपनी योनि सिकोड़कर समागम करना चाहिये॥ १३॥

एतेन नीचतररतेऽपि हस्तिन्याः॥ १४॥

इस आसन से नीचतर रत में हस्तिनी नायिका शश नायक से भी समागम करे॥ १४॥

सम्पुटकं पीडितकं वेष्टितकं वाडवकमिति॥ १५॥

नीच और नीचतर रत के आसन—नीच और नीचतर रत में चार प्रकार के उपवेशन होते हैं—सम्पुटक, पीड़ितक, वेष्टितक और वाड़वक॥ १५॥

ऋजुप्रसारितावुभावप्युभयोश्चरणाविति सम्पुटः॥ १६॥

सम्पुटक—जब स्त्री और पुरुष दोनों के पैर सीधे फैले हुए हों, तो सम्पुटक आसन होता है॥ १६॥

स द्विविधः—पार्श्वसम्पुट उत्तानसम्पुटश्च। तथा कर्मयोगात्॥ १७॥

सम्पुटक आसन दो प्रकार का होता है—पार्श्व सम्पुट और उत्तान सम्पुट। क्योंकि सम्पुटक आसन में स्त्री को चित लिटाकर भी समागम किया जा सकता है और बगल में करवट के बल लिटाकर भी, इसलिए यह पार्श्व और उत्तान दो प्रकार का होता है॥ १७॥

पार्श्वेण तु शयानो दक्षिणेन नारीमधिशयीतेति सार्वत्रिकमेतत्॥ १८॥

शयनविधि—शयन के समय स्त्री को अपनी बायीं ओर सुलाये—यह सर्वत्र प्रचलित रीति है॥ १८॥

सम्पुटकप्रयुक्तयन्त्रेणैव दृढमूरू पीडयेदिति पीडितकम्॥ १९॥

पीड़ितक—सम्पुटक आसन से समागम करते हुए, यदि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे की जाँघों को दृढ़तापूर्वक दबायें, तो उसे पीड़ितक आसन कहते हैं॥ १९॥

ऊरू व्यत्यस्येदिति वेष्टितकम्॥ २०॥

वेष्टितक—यदि सम्पुटक आसन में स्त्री अपना मदनमन्दिर सिकोड़ने के लिये अपने बाँयें पैर से पुरुष का दायाँ पैर अथवा दाँयें पैर से बाँया पैर लपेट ले, तो इसे वेष्टितक आसन कहते हैं॥ २०॥

वडवेव निष्ठुरमवगृह्णीयादिति वाडवकमाभ्यासिकम्॥ २१॥

वाड़वक—जिस प्रकार समागम के समय घोड़ी घोड़े के शिश्न को कसकर जकड़ लेती है, उसी प्रकार जब स्त्री, पुरुष के शिश्न को प्रविष्ट होते ही जकड़ ले और पुरुष के शिश्नसञ्चालन के समय भी दृढ़तापूर्वक उसे जकड़े रखे, तो इसे वाड़वक आसन कहते हैं। यह आभ्यासिक अर्थात् अभ्यास से सिद्ध होने वाला आसन है॥ २१॥

तदान्ध्रीषु प्रायेण। इति संवेशनप्रकारा बाभ्रवीयाः॥ २२॥

आन्ध्रप्रदेश की स्त्रियों में इस वाड़वक आसन का विशेष प्रचलन है। इस प्रकार बाभ्रवीय आचार्यों द्वारा कथित संवेशन प्रकार (सम्भोग के आसन) पूर्ण हुए॥ २२॥

सौवर्णनाभास्तु॥ २३॥

अब आचार्य सुवर्णनाभ द्वारा कथित आसनों को बताते हैं॥ २३॥

उभावप्यूरू ऊर्ध्वादिति तद् भुग्नकम्॥ २४॥

भुग्नक—यदि स्त्री अपनी दोनों जाँघों को ऊपर उठा दे, तो इसे भुग्नक आसन कहते हैं॥ २४॥

चरणावूर्ध्वं नायकोऽस्या धारयेदिति जृम्भितकम्॥ २५॥

जृम्भितक—जब नायक, नायिका के दोनों पैरों को कन्धे पर धारण कर लेता है तो उसे जृम्भितक आसन कहते हैं॥ २५॥

तत्कुञ्चितावुत्पीडितकम्॥ २६॥

उत्पीड़ितक—यदि पुरुष स्त्री के पैरों को सिकोड़कर वक्ष पर धारण करे, तो इसे उत्पीड़ितक आसन कहते हैं॥ २६॥

तदेकस्मिन् प्रसारितेऽर्धपीडितकम्॥ २७॥

अर्धपीड़ितक—यदि उत्पीड़ित आसन से समागम करते समय स्त्री एक पैर को सीधा फैला दे, तो यह अर्धपीड़ितक करण कहलाता है॥ २७॥

नायकस्यांस एको द्वितीयकः प्रसारित इति पुनः पुनर्व्यत्यासेन वेणुदारितकम्॥ २८॥

वेणुदारितक—जब स्त्री अदल-बदल कर अपना एक पैर पुरुष के कन्धे पर रखे, दूसरा सीधा फैलाये तो यह वेणुदारितक करण कहलाता है॥ २८॥

एकः शिरस उपरि गच्छेद् द्वितीयः प्रसारित इति शूलाचितकमाभ्यासिकम्॥ २९॥

शूलाचितक—जब स्त्री एक पैर को पुरुष के सिर पर रखकर और दूसरे को फैलाकर समागम करती है, तो यह शूलाचितक करण कहलाता है। यह करण भी अभ्यास से ही सिद्ध होता है॥ २९॥

संकुचितौ स्वस्तिदेशे निदध्यादिति कार्कटकम्॥ ३०॥

कार्कटक—जब पुरुष लेटी हुई स्त्री के पैरों को घुटनो से मोड़कर और अपने नाभिस्थल पर लगाकर समागम करता है, तो इसे केकड़े के समान होने से कार्कटक आसन कहते हैं॥ ३०॥

ऊर्ध्वावूरू व्यत्यस्येदिति पीडितकम्॥ ३१॥

पीड़ितक—यदि समागमकाल में स्त्री अपनी दाहिनी जाँघ को बायीं ओर ले जाये और बाँयीं जाँघ को दाहिनी ओर, तो इसे पीड़ितक आसन कहते हैं॥ ३१॥

जङ्घाव्यत्यासेन पद्मासनवत्॥ ३२॥

पद्मासन—चित लेटी हुई स्त्री जब अपने बाँयें पैर को दाहिनी जाँघ की जड़ में और दाहिने पैर को बाँयीं जाँघ की जड़ में रख ले, तो इसे पद्मासन कहा जाता है॥ ३२॥

पृष्ठं परिष्वजमानायाः पराङ्मुखेण परावृत्तकमाभ्यासिकम्॥ ३३॥

परावृत्तक—मुख के बल लेटी स्त्री के साथ पुरुष पीठ की ओर से समागम कर, तो इसे

परावृत्तक आसन कहते हैं। यह आभ्यासिक अर्थात् अभ्यास से सिद्ध होने वाला आसन है॥ ३३॥

जले च संविष्टोपविष्टस्थितात्मकाँश्चित्रान्योगानुपलक्षयेत्। तथा सुकरत्वादिति सुवर्णनाभः॥ ३४॥

जलसंभोग— जल में भी खड़े होकर, बैठकर और लेटकर नानाविध आसनों से जैसे समागम कर सके, करे। यह स्थल की अपेक्षा सरल भी है और मनोरंजक भी—ऐसा आचार्य सुवर्णनाभ का मत है॥ ३४॥

वार्तं तु तत्। शिष्टैरपस्मृतत्वादिति वात्स्यायनः॥ ३५॥

जलसंभोग का निषेध—जल में समागम असार (अनुचित) है, क्योंकि शिष्ट व्यक्तियों ने इसकी निन्दा की है—ऐसा महर्षि वात्स्यायन का मत है॥ ३५॥

अथ चित्ररतानि॥ ३६॥

चित्ररत-प्रकरण : अब चित्ररत समागम की अद्भुत विधियों को कहते हैं॥ ३६॥

ऊर्ध्वस्थितयोर्यूनोः परस्परापाश्रययोः कुड्यस्तम्भापाश्रितयोर्वा स्थित-रतम्॥ ३७॥

पहले स्थितरत (खड़े होकर समागम) का विधान बताते हैं—जब स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के सहारे या दीवार अथवा स्तम्भ (खम्बा) के सहारे खड़े होकर समागम करते हैं, तो उसे स्थितरत कहते हैं॥ ३७॥

कुड्यापाश्रितस्य कण्ठावसक्तबाहुपाशायास्तद्धस्तपञ्जरोपविष्टाया ऊरु-पाशेन जघनमभिवेष्टयन्त्या कुड्ये चरणक्रमेण बलन्त्या अवलम्बितकं रतम्॥ ३८॥

अवलम्बितक—जब पुरुष दीवार के सहारे खड़ा हो, उसके कण्ठ में बाहुपाश डाले हुए स्त्री उसके मिले हुए दोनों हाथों (हस्तपंजर) पर बैठी हुई हो, और अपनी जाँघों से पुरुष की जाँघों को लपेटकर, दीवार पर पैर लगाकर, झूला झूलती हुई-सी समागम कर रही हो, तो वह अवलम्बितक आसन कहलाता है॥ ३८॥

भूमौ वा चतुष्पदंवदास्थिताया वृषलीलयावस्कन्दनं धेनुकम्॥ ३९॥

धेनुक—स्त्री हाथों और पैरों को भूमि पर टिकाकर पशु (गाय) के समान खड़ी हो जाये और पुरुष साँड़ के समान उसके साथ समागम करे, तो यह धेनुक आसन होता है॥ ३९॥

तत्र पृष्ठमुरःकर्माणि लभते॥ ४०॥

धेनुक आसन में वक्ष पर सम्पन्न किये जाने वाले कार्य पीठ पर सम्पन्न किये जाते हैं॥ ४०॥

एतेनैव योगेन शौनमैणेयं छागलं गर्दभाक्रान्तं मार्जारललितकं व्याघ्राव-स्कन्दनं गजोपमर्दितं वराहघृष्टकं तुरगाधिरूढकमिति यत्र यत्र विशेषो योगोऽपूर्व-स्तत्तदुपलक्षयेत्॥ ४१॥

अन्य पशुलीलाएँ—इसी प्रकार कुत्ता, हिरण, बकरा, गधा, बिलाव, व्याघ्र, हाथी, सूअर

और घोड़े का समागम समझना चाहिये, और इनके समागम में जो विशिष्टताएँ दिखें, उनका अनुकरण करना चाहिये॥ ४१॥

मिश्रीकृतसद्भावाभ्यां द्वाभ्यां सह सङ्घाटकं रतम्॥ ४२॥

सङ्घाटकरत—परस्पर विश्वास एवं सद्भाव के सूत्र में बँधी दो स्त्रियों के साथ एक पुरुष का समागम करना सङ्घाटकरत कहलाता है॥ ४२॥

बह्वीभिश्च सह गोयूथिकम्॥ ४३॥

गोयूथिक—परस्पर विश्वास एवं सद्भाव के सूत्र में बँधी अनेक स्त्रियों के साथ एक पुरुष का समागम करना गोयूथिक नामक चित्ररत कहलाता है॥ ४३॥

वारिक्रीडितकं छागलमैणेयमिति तत्कर्मानुकृतियोगात्॥ ४४॥

वारिक्रीड़ितक, छागल और ऐणेय—जिस प्रकार हाथी अनेक हथिनियों के साथ क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार एक पुरुष जब अनेक स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करे, तो उसे वारिक्रीड़ितक कहते हैं। बकरा, हिरण आदि की मैथुन-क्रीड़ाओं का अनुकरण करने से गोयूथिक करण अनेक प्रकार से प्रयुक्त हो सकता है॥ ४४॥

ग्रामनारीविषये स्त्रीराज्ये च बाह्लीके बहवो युवानोऽन्तःपुरसधर्माण एकैकस्याः परिग्रहभूताः॥ ४५॥

अनेक पुरुषों के साथ समागम वाले देश—ग्रामनारी (असम का पूर्वी भाग) स्त्रीराज्य और बाह्लीक (बलख) देश में अन्तःपुरवासिनी स्त्रियाँ अपने भवनों में अनेक संरक्षित युवकों को रखती हैं॥ ४५॥

तेषामेकैकशो युगपच्च यथासात्म्यं यथायोगं च रञ्जयेयुः॥ ४६॥

यदि एक स्त्री के साथ अनेक पुरुष समागम करना चाहें, तो एक एक कर, एक साथ, जैसा वह स्त्री चाहे और जैसा अवसर हो, तदनुकूल ही उसे प्रसन्न करें॥ ४६॥

एको धारयेदेनामन्यो निषेवेत। अन्यो जघनं मुखमन्यो मध्यमन्य इति वारं वारेण व्यतिकरेण चानुतिष्ठेयुः॥ ४७॥

अनेक पुरुषों का एक साथ समागम—एक युवक उस स्त्री को गोद में लेकर बैठे, दूसरा युवक उसका मुख-चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत आदि करे, तीसरा शिश्नप्रवेश कराये, और चौथा कुचमर्दन आदि करे—इस प्रकार बारी-बारी से सभी पुरुष अपना कार्य और स्थान बदलते चले जायें॥ ४७॥

एतया गोष्ठीपरिग्रहा वेश्या राजयोषापरिग्रहाश्च व्याख्याताः॥ ४८॥

इससे ही गोष्ठी में परिगृहीत वेश्या और रानियों के परिग्रह (रखैल पुरुषों) को भी कह दिया गया है, अर्थात् गोष्ठी में अनेक पुरुष वेश्या के साथ और राजरानियाँ अपने पुरुष-रखैलों के साथ, इसी प्रकार समागम करें॥ ४८॥

अधोरतं पायावपि दाक्षिणात्यानाम्। इति चित्ररतानि॥ ४९॥

दाक्षिणात्यों में गुदामैथुन भी प्रचलित है। (यह अधम मैथुन है, फलतः त्याज्य ही है) इस प्रकार चित्ररत पूर्ण हुए॥ ४९॥

पुरुषोपसृप्तकानि पुरुषायिते वक्ष्यामः ॥ ५० ॥

समागम करने की रीति पुरुषायित (विपरीत रति) प्रकरण में कहेंगे ॥ ५० ॥

पशूनां मृगजातीनां पतङ्गानां च विभ्रमैः ।
तैस्तैरुपायैश्चित्तज्ञो रतियोगान्विवर्धयेत् ॥ ५१ ॥

चित्रवर्धन—चित्त को जानने वाला पुरुष पशुओं, मृगों और पक्षियों के कण्ठस्वर और शारीरिक चेष्टाओं के जो जो प्रत्यक्ष उपाय दीखें, उनका प्रयोग समागम में करके उसके आकर्षण और प्रेम को बढ़ाये ॥ ५१ ॥

तत्सात्म्याद्देशसात्म्याच्च तैस्तैर्भावैः प्रयोजितैः ।
स्त्रीणां स्नेहश्च रागश्च बहुमानश्च जायते ॥ ५२ ॥

चित्रों के वर्धन का फल—जो उपक्रियाएँ स्त्री की प्रकृति के अनुकूल हों, जो उस देश में प्रचलित हों, उन्हीं के अनुरूप पशु-पक्षियों के कण्ठस्वर और शारीरिक चेष्टाओं का अनुकरण करने वाले पुरुष पर स्त्रियाँ अत्यधिक अनुराग और स्नेह रखती हैं और उन्हें ही बहुमान देती हैं ॥ ५२ ॥

संवेशनप्रकार एवं चित्ररतप्रकरण नामक षष्ठ अध्याय सम्पन्न ॥

●

सप्तम अध्याय

प्रहणन-सीत्कारप्रकरण

कलहरूपं सुरतमाचक्षते; विवादात्मकत्वाद्वामशीलत्वाच्च कामस्य ॥ १ ॥

काम की वामता—सुरत कलहरूप है, क्योंकि काम स्वभाव से ही विवादात्मक और परतिकूल प्रकृति वाला है ॥ १ ॥

तस्मात् प्रहणनस्थानमङ्गम्। स्कन्धौ शिरः स्तनान्तरं पृष्ठं जघ्नं पार्श्व इति स्थानानि ॥ २ ॥

प्रहणन के स्थान—अतएव प्रहणन सुरत का अङ्ग है, फलतः उसके स्थानों का उल्लेख करते हैं। कन्धे, सिर, स्तनों के मध्य का स्थान, पीठ, जाँघें और पार्श्व—ये प्रहणन के स्थान हैं, अर्थात् पुरुष को समागमकाल में स्त्री के इन स्थानों पर प्रहार करना चाहिये ॥ २ ॥

तच्चतुर्विधम्-अपहस्तकं प्रसृतकं मुष्टिः समतलकमिति ॥ ३ ॥

प्रहणन चार प्रकार का होता है—१. अपहस्तक (फैली हुई अङ्गुलियों वाली हथेली की पीठ), २. प्रसृतक (हाथ की अँगुलियों को सिकोड़कर, सर्प के फन के समान आकार), ३. मुष्टि (मुक्का या घूँसा) और ४. समतलक (हाथ को बराबर करके हथेली से प्रहार) ॥ ३ ॥

तदुद्भवं च सीत्कृतम्। तस्यार्तिरूपत्वात्। तदनेकविधम् ॥ ४ ॥

सीत्कार की सम्बद्धता—प्रहणन से ही सीत्कार उत्पन्न होता है, फलतः उसका कष्टरूप होना स्वाभाविक ही है। यह सीत्कार कई प्रकार का होता है ॥ ४ ॥

विरुतानि चाष्टौ ॥ ५ ॥

विरुत के आठ रूप—प्रहारजन्य पीड़ाके कारण मुख से आठ प्रकार की ध्वनि (चिल्लाहट) निकलती है ॥ ५ ॥

हिङ्कारस्तनितकूजितरुदितसूत्कृतदूत्कृतफूत्कृतानि ॥ ६ ॥

हिंकार, स्तनित, कूजित, रुदित, नदित, सूत्कृत, दूत्कृत और फूत्कृत—ये सात प्रकार के अव्यक्त अक्षर हैं ॥ ६ ॥

अम्बार्थाः शब्दा वारणार्था मोक्षणार्थाश्चालमर्थास्ते ते चार्थयोगात् ॥ ७ ॥

अन्य शब्द—'अरी मैया', 'ऐसा मत करो', 'अब रहने दो', 'बहुत हो गया', 'हाय, मर गयी' इत्यादि शब्द भी पीड़ा द्योतित करते हैं ॥ ७ ॥

पारावतपरभृतहारीतशुकमधुकरदात्यूहहंसकारण्डवलावकविरुतानि सीत्कृत-भूयिष्ठानि विकल्पशः प्रयुञ्जीत ॥ ८ ॥

पक्षियों की ध्वनि—कबूतर, कोयल, हारीत (हरियल), तोता, भ्रमर, चातक, हंस, कारण्डव (जलकुक्कुट) और लवा (बटेर) आदि पक्षियों के शब्द रूप अनेक सीत्कारों का विकल्प से प्रयोग करे ॥ ८ ॥

उत्सङ्गोपविष्टायाः पृष्ठे मुष्टिना प्रहारः ॥ ९ ॥

मुष्टिप्रहार—गोद में बैठी हुई स्त्री की पीठ में मुक्का मारना चाहिये ॥ ९ ॥

तत्र सासूयाया इव स्तनितरुदितकूजितानि प्रतीघातश्च स्यात् ॥ १० ॥

नायिका के कार्य—मुक्का लगते ही नायिका असहनशील के समान स्तनित, कूजित और रुदित करती हुई बदले में नायक पर प्रतिघात करे ॥ १० ॥

युक्तयन्त्रायाः स्तनान्तरेऽपहस्तकेन प्रहरेत् ॥ ११ ॥

अपहस्तक प्रहार—चित लेटकर समागम कराती हुई स्त्री के स्तनों के मध्य में हथेली के पिछले भाग से प्रहार करना चाहिये ॥ ११ ॥

मन्दोपक्रमं वर्धमानरागमा परिसमाप्तेः ॥ १२ ॥

प्रारम्भ में हल्के हाथ से प्रहार करे और राग के बढ़ने के साथ प्रहारों में भी तेजी लानी चाहिये ॥ १२ ॥

तत्र हिङ्कारादीनामनियमेनाभ्यासेन विकल्पेन च तत्कालमेव प्रयोगः ॥ १३ ॥

सीत्कारों का उचित समय—हिंकार आदि सीत्कारों का अनियम से, अभ्यास से और विकल्प से तत्काल ही प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥

शिरसि किञ्चिदाकुञ्चिताङ्गुलिना करेण विवदन्त्याः फूत्कृत्य प्रहणनं तत्प्रसृतकम् ॥ १४ ॥

प्रसृस्तक-प्रहार—विवाद करती हुई स्त्री के सिर में हाथ की अङ्गुलियों को सिकोड़-कर (हाथ को सर्प के फन के समान फैलाकर) फूत्कार करके प्रहार करना प्रसृतक कहलाता है ॥ १४ ॥

तत्रान्तर्मुखेन कूजितं फूत्कृतं च ॥ १५ ॥

नायिका के कार्य—प्रसृतक का प्रयोग करने पर स्त्री को अन्तर्मुख से कूजित और फूत्कार करना चाहिये॥ १५॥

रतान्ते च श्वसितरुदिते॥ १६॥

श्वसित और रुदित का समय—समागम के अन्त में श्वास बढ़ जाने को श्वसित और रोने को रुदित (रोदन) कहते हैं॥ १६॥

वेणोरिव स्फुटतः शब्दानुकरणं दूत्कृतम्॥ १७॥

दूत्कृत—समागम करते समय बाँस की गाँठ फूटने जैसी चट-चट की ध्वनि होती है, उसे दूत्कृत कहते हैं॥ १७॥

अप्सु बदरस्येव निपततः (शब्दानुकरणं) फूत्कृतम्॥ १८॥

फूत्कृत (फूत्कार)—बेर के पानी में गिरते समय जो डुब्ब जैसी ध्वनि होती है, समागम काल में होने वाली ऐसी ध्वनि को 'फूत्कृत' या 'फूत्कार' कहते हैं॥ १८॥

सर्वत्र चुम्बनादिष्वपक्रान्तायाः ससीत्कृतं तेनैव प्रत्युत्तरम्॥ १९॥

इनके उत्तर—जिस प्रकार चुम्बन, नखक्षत और दन्तक्षत के उत्तर में स्त्री को भी उन्हीं का प्रयोग करना चाहिये, उसी प्रकार पुरुष के प्रहणन पर स्त्री ने जैसे सीत्कार किये हों, स्त्री के प्रहार करने पर पुरुष को भी वैसे ही सीत्कार करने चाहिये॥ १९॥

रागवशात् प्रहणनाभ्यासे वारणमोक्षणालमर्थानां शब्दानामम्बार्थानां च रतान्तश्वसितरुदितस्तनितमिश्रीकृतप्रयोगा विरुतानां च। रागावसानकाले जघन-पार्श्वयोस्ताडनमित्यतित्वरया चापरिसमाप्तेः॥ २०॥

समतलक और परवर्ती कार्य—जब राग की अधिकता के कारण पुरुष बार-बार प्रहार करे, तो स्त्री 'ऐसा मत करो', 'अब रहने दो', 'बहुत हो गया', 'अरी मैया' आदि शब्दों का प्रयोग खिन्नता, श्वसित, रुदित और स्तनित के साथ करे, और विभिन्न पक्षियों की ध्वनि का मिश्रित प्रयोग करे। स्खलनकाल निकट जानकर शीघ्रता से जघन और पार्श्वों में समतलक (हाथ से वार) करना चाहिये—यह स्खलन से पूर्व ही होता है॥ २०॥

तत्र लावकहंसविकूजितं त्वरयैव। इति स्तननप्रहणनयोगाः॥ २१॥

इसके सीत्कार—समतलक-प्रहार करने पर हंस और लवा (बटेर) आदि पक्षियों की बोली का अनुकरण करना चाहिये। इस प्रकार स्तनन—प्रहणन सम्बन्धी प्रकरण पूर्ण हुआ॥ २१॥

भवतश्चात्र श्लोकौ—

पारुष्यं रभसत्वं च पौरुषं तेज उच्यते।
अशक्तिरार्तिर्व्यावृत्तिरबलत्वं च योषितः॥ २२॥

इस विषय में दो आनुवंश्य श्लोक मिलते हैं—कठोरता, धृष्टता और साहस पुरुष के सहज धर्म हैं और असमर्थता, पीड़ित होना, निराकरण करना और सुकुमारता स्त्री के; फलतः पुरुष का स्वभाव प्रहणन के अनुकूल है और स्त्री का सीत्कार के॥ २२॥

रागात् प्रयोगसात्म्याच्च व्यत्ययोऽपि क्वचिद् भवेत्।

न चिरं तस्य चैवान्ते प्रकृतेरेव योजनम्॥ २३॥

स्त्री-पुरुष के ये धर्म सार्वत्रिक नहीं हैं। राग के चरम सीमा पर पहुँचने पर या देश, काल और प्रकृति की अनुकूलता से उसकी विपरीतता भी देखी जाती है, अर्थात् इन स्थितियों में स्त्री अपने सहज धर्म—सुकुमारता और सलज्जता—को छोड़कर और पुरुष-जैसा कठोर बनकर, अपहस्तक आदि का वार कर सकती है, लेकिन यह विपरीतता अधिक समय तक नहीं चलती, और अन्त में दोनों प्रकृतिस्थ हो जाते हैं॥ २३॥

कीलामुरसि कर्तरीं शिरसि विद्धां कपोलयोः संदंशिकां स्तनयोः पार्श्वयोश्चेति पूर्वैः सह प्रहणनमष्टविधमिति दाक्षिणात्यानाम्। तद्युवतीनामुरसि कीलानि च तत्कृतानि दृश्यन्ते। देशसात्म्यमेतत्॥ २४॥

दाक्षिणात्यों के कष्टद प्रहणन—छाती में कीला, सिर में कर्तरी, कपोलों में विद्धा और स्तनों एवं बगलों में सन्दंशिका—ये चार तथा पूर्वोक्त चार—अपहस्तक, प्रसृतक, मुष्टि और समतलक—कुल आठ प्रकार के प्रहणन दक्षिण देशवासियों में प्रचलित हैं। वहाँ की युवतियों के वक्ष:स्थल पर कीला और उसके कार्य देखे जाते हैं। यह देशाचारमात्र है, अतएव जहाँ प्रचलित है, वहाँ के निवासियों के ही अनुकूल पड़ता है, सबके लिये नहीं॥ २४॥

कष्टमनार्यवृत्तमनादृतमिति वात्स्यायनः॥ २५॥

ये कष्टप्रद प्रहणन आर्यवृत्त नहीं हैं, अतएव इसका आचरण नहीं करना चाहिये—ऐसा महर्षि वात्सायन का मत है॥ २५॥

तथान्यदपि देशसात्म्यात् प्रयुक्तमन्यत्र न प्रयुञ्जीत॥ २६॥

घातक प्रहणनों का सर्वथा निषेध—ऐसे प्रहणन जिनमें विकलाङ्गता या मृत्यु की आशङ्का हो, देशाचारवश भी नहीं किये जाने चाहिये॥ २७॥

रतियोगे हि कीलया गणिकां चित्रसेनां चोलराजो जघान॥ २८॥

घातक प्रहारों के दुष्परिणाम—चोलराज ने समागमकाल में कीला से सुकुमार नायिका चित्रसेना को मार डाला था॥ २८॥

कर्तर्या कुन्तलः शातकर्णिः शातवाहनो महादेवीं मलयवतीम्॥ २९॥

कुन्तलनरेश शतकर्ण के पुत्र शातवाहन (सातवाहन या शालिवाहन) ने कर्तरी के घातक प्रयोग से महादेवी मलयवती को मार डाला था॥ २९॥

नरदेवः कुपाणिर्विद्धया दुष्प्रयुक्तया नटीं काणां चकार॥ ३०॥

पाण्ड्य देश के सेनापति नरदेव ने अपने कठोर हाथ से विद्धा का प्रयोग कर चित्रलेखा नामक नर्तकी को काणी बना दिया था॥ ३०॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

नास्त्यत्र गणना काचिन्न च शास्त्रपरिग्रहः।
प्रवृत्ते रतिसंयोगे राग एवात्र कारणम्॥ ३१॥

घातक प्रहारों का कारण : कामातिरेक—जब पुरुष कामान्ध होकर समागम में प्रवृत्त होता है, तब वह न तो परवर्ती दुष्परिणामों की चिन्ता करता है और न शास्त्र के बन्धनों का

विचार करता है। अतएव दुष्परिणामों का एकमात्र कारण उसका राग (कामातिरेक) ही है॥ ३१॥

स्वप्नेष्वपि न दृश्यन्ते ते भावास्ते च बिभ्रमाः।
सुरतव्यवहारेषु ये स्युस्तत्क्षणकल्पिताः॥ ३२॥

समागमकाल में मनुष्य के मन और मस्तिष्क में जो जो भाव और विभ्रम उत्पन्न होते हैं, वे न तो स्वप्न में सोचे जा सकते हैं और न शास्त्र में ही कहे गये होते हैं॥ ३२॥

यथा हि पञ्चमीं धारामास्थाय तुरगः पथि।
स्थाणुं श्वभ्रं दरीं वापि वेगान्धो न समीक्षते॥
एवं सुरतसम्मर्दे रागान्धौ कामिनावपि।
चण्डवेगौ प्रवर्तेते समीक्षेते न चात्ययम्॥ ३३॥

कामान्धता पर एक दृष्टान्त—जिस प्रकार पाँचवी धारागति (जव) में दौड़ता हुआ वेगान्ध अश्व मार्ग के स्तम्भ, गर्त (गड्ढे), खन्दक आदि को नहीं देख पाता, और विनाश को प्राप्त होता है; इसी प्रकार कामान्ध स्त्री-पुरुष चण्डवेग से सम्भोग करते हुए सुरतसम्मर्दों (नखक्षत, दन्तक्षत, कुचमर्दन, प्रहणन आदि) के दुष्परिणामों को नहीं सोच पाते, और विनाश (अङ्गभङ्ग या मृत्यु) को प्राप्त होते हैं॥ ३३॥

तस्मान्मृदुत्वं चण्डत्वं युवत्या बलमेव च।
आत्मनश्च बलं ज्ञात्वा तथा युञ्जीत शास्त्रवित्॥ ३४॥

अतएव कामतत्त्वविद् को स्त्री की सुकुमारता एवं सहनशक्ति और काम की प्रचण्डता को विचार कर तथा अपनी शारीरिक शक्ति का अनुमान करके ही समागम में प्रवृत्त होना चाहिये॥ ३४॥

न सर्वदा न सर्वासु प्रयोगाः सांप्रयोगिकाः।
स्थाने देशे च काले च योग एषां विधीयते॥ ३५॥

समागमकाल में जो प्रयोग अब तक बताये गये हैं, उनका प्रयोग न सदा होता है और न सभी स्त्रियों पर; अपितु स्थान एवं देशकाल के अनुरूप ही इनका प्रयोग करना चाहिये॥ ३५॥

प्रहणनप्रयोग एवं सीत्कार वर्णन नामक सप्तम अध्याय सम्पन्न॥

●

अष्टम अध्याय

पुरुषायितप्रकरण

नायकस्य सन्तताभ्यासात् परिश्रममुपलभ्य रागस्य चानुपशमम्, अनुमता तेन तमधोऽवपात्य पुरुषायितेन साहाय्यं दद्यात्॥ १॥

विपरीत रति के कारण—निरन्तर मैथुन करते हुए जब पुरुष शिथिल हो जाये, किन्तु

रमणेच्छा शान्त न हो, तो पुरुष की अनुमति से स्त्री उसके ऊपर आकर, विपरीत रति द्वारा, उसे मैथुन में सहायता प्रदान करे॥ १॥

स्वाभिप्रायाद्वा विकल्पयोजनार्थिनी॥ २॥

अथवा अपनी रमणेच्छा को सरलता और शीघ्रता से शान्त करने के लिये भी स्त्री विपरीत रति कर सकती है॥ २॥

नायककुतूहलाद्वा॥ ३॥

प्रिय के विनोद एवं कुतूहल के लिये भी स्त्री विपरीत रति कर सकती है॥ ३॥

तत्र युक्तयन्त्रेणैवेतरेणोत्थाप्यमाना तमधः पातयेत्। एवं च रतमविच्छिन्नरसं तथा प्रवृत्तमेव स्यात्। इत्येकोऽयं मार्गः॥ ४॥

विपरीत रति : प्रथम रीति—समागम करते हुए पुरुष यन्त्र किये हुए ही स्त्री को बाहुपाश में भरकर ऊपर ले आये और स्त्री भी उसे नीचे करके स्वयं समागम करने लगे। ऐसा करने से समागम के सुख में कोई अन्तर नहीं आता, अर्थात् उसका नैरन्तर्य बना रहता है—यह विपरीत रति की प्रथम रीति है॥ ४॥

पुनरारम्भेणादित एवोपक्रमेत्। इति द्वितीयः॥ ५॥

द्वितीय रीति—यदि समागम को पुनः आरम्भ किया जाये, तो स्त्री प्रारम्भ से ही विपरीत रति करे। यह विपरीत रति की दूसरी रीति है॥ ५॥

सा प्रकीर्यमाणकेशकुसुमा श्वासविच्छिन्नहासिनी वक्त्रसंसर्गार्थं स्तनाभ्यामुरः पीडयन्ती पुनः-पुनः शिरो नामयन्ती याश्चेष्टाः पूर्वमसौ दर्शितवांस्ता एव प्रतिकुर्वीत। पातिता प्रतिपातयामीति हसन्ती तर्जयन्ती प्रतिघ्नती ब्रूयात्। पुनश्च व्रीडां दर्शयेत्। श्रमं विरामाभीप्सां च। पुरुषोपसृप्तैरेवोपसर्पेत्॥ ६॥

बाह्य विपरीतरति—जब स्त्री विपरीत रति करती है, तो उसके केशपाश के बिखर जाने से उनमें गुँथे हुए फूल बिखर जाते हैं, हँसने पर भी उसकी साँस फूलती है और उसकी हँसी बाधित हो जाती है, पति के मुख का चुम्बन करने के लिए अपना मुख झुकाती हुई स्तनों से उसके वक्षःस्थल को बार बार दबाती है, जो जो चेष्टाएँ (चुम्बन,नखक्षत, दन्तक्षत आदि) पुरुष ने समागम के समय की थीं, उन सभी को वह करती है; इतना ही नहीं, हँसती है और पुरुष को डराती है तथा विजेता की भाँति बोलती है—'पहले तुमने मुझे गिराकर समागम किया था। अब मैं तुम्हें गिराकर समागम करूँगीं।' रमणेच्छा शान्त हो जाने पर लज्जा, थकान दिखाये। तदुपरान्त पुरुष के समान ही उपसर्पण करे, अर्थात् पुरुष जिस प्रकार स्त्री पर प्रेम प्रकट करता है, उसी प्रकार स्त्री भी पुरुष पर प्रेम प्रकट करे॥ ६॥

तानि च वक्ष्यामः॥ ७॥

अब पुरुषों के उन उपसर्पणों को कहते हैं जिन्हें स्त्री पुरुषायित (विपरीत रति) में प्रयोग करती है॥ ७॥

पुरुषः शयनस्थाया योषितस्तद्वचनव्याक्षिप्तचित्ताया इव नीवीं विश्लेषयेत्। तत्र विवदमानां कपोलचुम्बनेन पर्याकुलयेत्॥ ८॥

पुरुषोपसृप्त के भेद—शैय्या पर बैठी हुई स्त्री को बातों में लगाकर पुरुष उसका नाड़ा खोल दे। यदि स्त्री ना करे, तो उसके कपोलों का चुम्बन करता हुआ, उसे समागम के लिये व्याकुल बना दे जिससे वह ना ही न कर सके॥ ८॥

स्थिरलिङ्गश्च तत्र तत्रैनां परिस्पृशेत्॥ ९॥

यदि पुरुष का शिश्न दृढ़ एवं स्थिर हो जाये, तो स्त्री को कामोद्रिक्त करने के लिये उसके कामाङ्गों (स्तन, काँख आदि) को धीरे धीरे सहलाये॥ ९॥

प्रथमसङ्गता चेत्संहतोर्वोरन्तरे घट्टनम्॥ १०॥

यदि स्त्री का प्रथम समागम हो, और उसने दोनों जाँघें दृढ़तापूर्वक मिला रखी हों, तो पुरुष को उसकी जाँघों को सहलाते हुए अलग अलग करना चाहिये॥ १०॥

कन्यायाश्च॥ ११॥

यदि अक्षतयोनि से समागम करना हो, तो भी इसी प्रकार व्यवहार करना चाहिये॥ ११॥

तथा स्तनयोः संहतयोर्हस्तयोः कक्षयोरंसयोर्ग्रीवायामिति च॥ १२॥

इसी प्रकार हाथों से ढँके हुए स्त्री के स्तनों, काँखों, कन्धों और ग्रीवा में भी हाथ चलाना चाहिये॥ १२॥

स्वैरिण्यां यथासात्म्यं यथायोगं च। अलके चुम्बनार्थमेनां निर्दयमवलम्बेत् हनुदेशे चाङ्गुलिसम्पुटेन॥ १३॥

स्वैरिणी (व्यभिचारिणी) स्त्रियों में तो जैसा उसके अनुकूल पड़े और जैसा सम्भव हो, वैसा ही आचरण करे। मुखचुम्बन के लिये उसके केशपाश को निर्दयतापूर्वक पकड़े और उसकी ठोड़ी को अङ्गुलियों के मध्य ले ले॥ १३॥

तत्रेतरस्या व्रीडा निमीलनं च। प्रथमसमागमे कन्यायाश्च॥ १४॥

जो भी स्त्री पुरुष से प्रथम बार मिलती है, वह लज्जावश आँखें बन्द कर लेती है। प्रथम समागम में अक्षतयोनि कन्या की भी यही स्थिति होती है॥ १४॥

रतिसंयोगे चैनां कथमनुरज्यत इति प्रवृत्त्या परीक्षेत॥ १५॥

आभ्यन्तर पुरुषोपसृप्त कहते हैं—समागम में स्त्री को कैसे अनुरक्त किया जा सकता है, यह अनुमान बाह्य पुरुषोपसृप्त में उसकी चेष्टाएँ देखकर ही कर लेना चाहिये॥ १५॥

युक्तयन्त्रेणोपसृप्यमाणा यतो दृष्टिमावर्तयेत्तत एवैनां पीडयेत्। एतद्रहस्यं युवतीनामिति सुवर्णनाभः॥ १६॥

चेष्टा से पहचान—यन्त्रयोग होने पर मदनमन्दिर के जिस जिस ओर शिश्नसंचालन से स्त्री आनन्दविह्वल होकर दृष्टि घुमाने लगे, उसी-उसी ओर लक्ष्य करके पुरुष को प्रहार करना चाहिये। नारीजीवन का यह गहन रहस्य है—ऐसा आचार्य सुवर्णनाभ का मत है॥ १६॥

गात्राणां स्त्रंसनं नेत्रनिमीलनं व्रीडानाशः समधिका च रतियोजनेति स्त्रीणां भावलक्षणम्॥ १७॥

राग की विभिन्न अवस्थाएँ—जिसके साथ शिश्नसञ्चालन हो रहा है, उसके भाव की तीन अवस्थाएँ होती हैं—प्राप्त, प्रत्यासन्न और प्रज्वलित। इन तीनों का लक्षण कहते हैं—शरीर का शिथिल होना, नेत्रों का बन्द कर लेना, लज्जा का नाश और मदनमन्दिर को शिश्न से सटाये रखना—ये स्त्रियों के भाव-प्राप्ति के लक्षण हैं॥ १७॥

हस्तौ विधुनोति स्विद्यति दशत्युत्थातुं न ददाति पादेनाहन्ति रतावसाने च पुरुषातिवर्तिनी॥ १८॥

प्रज्वलित हुए (भभकते हुए) भाव का लक्षण—समागम के अन्त में स्त्री हाथों को कँपाती हैं, पसीने से भींग जाती हैं, पुरुष को दाँतों से काटती है, पुरुष को समागम से विरत नहीं होने देती, अर्थात् उठने नहीं देती, उसे लातें लगाती और पुरुष का भी अतिक्रमण कर जाती है अर्थात् ये लक्षण इस बात के सूचक हैं कि स्त्री का काम अभी शान्त नहीं हुआ है, और वह प्रज्वलित (भभक रहा) है॥ १८॥

तस्याः प्राग्यन्त्रयोगात् करेण संबाधं गज इव क्षोभयेत्। आ मृदुभावात्। ततो यन्त्रयोजनम्॥ १९॥

करिकर का प्रयोग—स्त्री को शीघ्र स्खलित करने के लिए, समागम से पूर्व उसके मदनमन्दिर को हाथ से हाथी के सूँड़ के समान क्षोभित करे और जब वह रससिक्त हो जाये तभी शिश्नप्रवेश कराये॥ १९॥

उपसृप्तकं मन्थनं हुलोऽवमर्दनं पीडितकं निर्घातो वराहघातो वृषाघातश्चटक-विलसितं सम्पुट इति पुरुषोपसृप्तानि॥ २०॥

उपसृप्तों के प्रकार—उपसृप्तक, मन्थन, हुल, अवमर्दन, पीड़ितक, निर्घात, वराहघात, वृषाघात, चटकविलसित और सम्पुट—ये दश पुरुषोपसृप्त हैं॥ २०॥

न्याय्यमृजुसम्मिश्रणमुपसृप्तकम्॥ २१॥

उपसृप्तक—शिश्न को सीधी रीति से मदनमन्दिर से मिलाना उपसृप्तक है। सुकुमार और अहानिकर होने से यही रीति शिष्टजनसम्मत (न्याय्य) है॥ २१॥

हस्तेन लिङ्गं सर्वतो भ्रामयेदिति मन्थनम्॥ २२॥

मन्थन—पुरुष शिश्न को हाथ से पकड़कर मदनमन्दिर में चारों ओर घुमावे, तो इसे मन्थन कहते हैं॥ २२॥

नीचीकृत्य जघनमुपरिष्टाद् घट्टयेदिति हुलः॥ २३॥

हुल—स्त्री की जाँघों को नीचा करके मदनमन्दिर के अन्दर शिश्न को झटके से डालना 'हुल' कहलाता है॥ २३॥

तदेव विपरीतं सरभसमवमर्दनम्॥ २४॥

अवमर्दन—स्त्री की जाँघों को ऊँचा करके (नितम्बों के नीचे तकिया लगाकर) मदनमन्दिर के अन्दर वेगपूर्वक शिश्न-प्रवेश को अवमर्दन कहते हैं॥ २४॥

लिङ्गेन समाहत्य पीडयँश्चिरमवतिष्ठेतेति पीडितकम्॥ २५॥

पीडितक—शिश्न से भली प्रकार प्रहार करता हुआ देर तक स्त्री को दबाये रहे, तो इसे पीड़ितक कहते हैं ॥ २५ ॥

सुदूरमुत्कृष्य वेगेन स्वजघनमवपातयेदिति निर्घातः ॥ २६ ॥

निर्घात—प्रविष्ट कराये हुए शिश्न को पूरा बाहर निकालकर स्त्री की जाँघों पर अपनी जाँघों को बलपूर्वक गिराना निर्घात कहलाता है ॥ २६ ॥

एकत एव भूयिष्ठमवलिखेदिति वराहघातः ॥ २७ ॥

वराहघात—मदनमन्दिर में एक ओर ही शिश्नप्रहार करने को 'वराहघात' कहते हैं ॥ २७ ॥

स एवोभयतः पर्यायेण वृषाघातः ॥ २८ ॥

वृषाघात—जब मदनमन्दिर के दोनों पार्श्वों में क्रम से प्रहार किया जाये, तो उसे वृषाघात कहते हैं ॥ २८ ॥

सकृन्मिश्रितमनिष्क्रमय्य द्विस्त्रिश्चतुरिति घट्टयेदिति चटकविलसितम् ॥ २९ ॥

चटकविलसित—प्रविष्ट शिश्न को बाहर न निकालकर, नरगौरैया (चिड़े) के समान दो तीन-चार बार प्रहार करने को चटकविलसित कहते हैं ॥ २९ ॥

रागावसानिकं व्याख्यातं करणं सम्पुटमिति ॥ ३० ॥

सम्पुट—स्खलन के समय सम्पुट होता है। इस करण को पहले ही कहा जा चुका है ॥ ३० ॥

तेषां स्त्रीसात्म्याद् विकल्पेन प्रयोगः ॥ ३१ ॥

प्रयोग की रीति—इन पुरुषोपसृप्तों का स्त्री की प्रकृति और प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर, विकल्प से, प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१ ॥

पुरुषायिते तु सन्दंशो भ्रमरकः प्रेङ्खोलितमित्यधिकानि ॥ ३२ ॥

पुरुषायित (विपरीत रति) में संदंश, भ्रमरक और प्रेङ्खोलित— ये तीन उपसृप्त अधिक हैं ॥ ३२ ॥

वाडवेन लिङ्गमवगृह्य निष्कर्षन्त्याः पीडयन्त्या वा चिरावस्थानं सन्दंशः ॥ ३३ ॥

सन्दंश—स्त्री, पुरुष के शिश्न को मदनमन्दिर में डालकर घोड़ी के समान देर तक भीतर खींचती या दबाती रहे तो उसे सन्दंश कहते हैं ॥ ३३ ॥

युक्तयन्त्रा चक्रवद् भ्रमेदिति भ्रमरक आभ्यासिकः ॥ ३४ ॥

भ्रमरक—यन्त्रयोग किये हुए स्त्री चाक की तरह घूमे, यह भ्रमरक कहलाता है। यह अभ्यास से ही हो सकता है ॥ ३४ ॥

तत्रेतरः स्वजघनमुत्क्षिपेत् ॥ ३५ ॥

नायक का कार्य—भ्रमरक उपसृप्त में नायक को अपनी जाँघें ऊपर उठा लेनी चाहिये ॥ ३५ ॥

जघनमेव दोलायमानं सर्वतो भ्रामयेदिति प्रेङ्खोलिखितकम् ॥ ३६ ॥

प्रेङ्खेङ्लिखितक—झूले के समान हिलती हुई जांघों को चारों ओर घुमाना 'प्रेङ्खेङ्लिखितक' कहलाता है।

युक्तयन्त्रैव ललाटे ललाटं निघाय विश्राम्येत॥ ३७॥

विश्रामविधि—थक जाने पर स्त्री यन्त्रयोग किये हुए ही पुरुष के मस्तक पर अपना मस्तक रखकर विश्राम कर ले॥ ३७॥

विश्रान्तायां च पुरुषस्य पुनरावर्तनम्। इति पुरुषायितानि॥ ३८॥

पुरुष के ऊपर आने का समय—यदि स्त्री की तृप्ति न हुई हो, तो थक जाने पर स्त्री नीचे आ जाये और पुरुष ऊपर आकर समागम करे। विपरीत रति का प्रकरण पूर्ण हुआ॥ ३८॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

प्रच्छादितस्वभावापि गूढाकारापि कामिनी।
विवृणोत्येव भावं स्वं रागादुपरिवर्तिनी॥ ३९॥

इस विषय में कुछ आनुवंश्य श्लोक हैं—जो कामिनी शील और सङ्कोच के कारण अपने भावों को छिपाये रखती है, वह भी कामातुरा होकर विपरीत रति में अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट कर देती है॥ ३९॥

यथाशीला भवेन्नारी यथा च रतिलालसा।
तस्या एव विचेष्टाभिस्तत्सर्वमुपलक्षयेत्॥ ४०॥

जिस स्त्री का जैसा शील और जैसी रतिलालसा—कामवासना— हो, विपरीत रति की चेष्टाओं से पति को वह सब जान लेना चाहिये, जिससे बाद में तदनुकूल व्यवहार किया जा सके॥ ४०॥

न त्वेवर्तौ न प्रसूतां न मृगीं न च गर्भिणीम्।
न चातिव्यायतां नारीं योजयेत् पुरुषायिते॥ ४१॥

विपरीत रति के अनुपयुक्त पात्र—रजस्वला, प्रसूता, मृगी, गर्भवती और मोटी स्त्री को विपरीत रति में नियुक्त नहीं करना चाहिये॥ ४१॥

पुरुषायितप्रकरण नामक अष्टम अध्याय सम्पन्न॥

●

नवम अध्याय

औपरिष्टकप्रकरण

द्विविधा तृतीया प्रकृतिः स्त्रीरूपिणी पुरुषरूपिणी च॥ १॥

नपुंसक के भेद—नपुंसक दो प्रकार के होते हैं—एक स्त्रीरूपधारी, और दूसरा पुरुषरूपधारी॥ १॥

तत्र स्त्रीरूपिणी स्त्रिया वेषमालापं लीलां भावं मृदुत्वं भीरुत्वं मुग्धतामसहिष्णुतां व्रीडां चानुकुर्वीत॥ २॥

स्त्रीरूपधारी नपुंसक—इनमें जो स्त्रीरूपधारी नपुंसक (हिजड़ी) है, उसे स्त्रियों की वेशभूषा, बोलचाल, लीला, भाव, मृदुता, भीरुता, मुग्धता, असहिष्णुता और सलज्जता का अनुकरण करना चाहिये॥ २॥

तस्या वदने जघनकर्म। तदौपरिष्टकमाचक्षते॥ ३॥

नपुंसक के मुख में जो मैथुनकर्म किया जाता है, उसे ही औपरिष्टक कहते हैं॥ ३॥

सा ततो रतिमाभिमानिकीं वृत्तिं च लिप्सेत्॥ ४॥

औपरिष्टक का फल—ऐसी हिजड़ी आलिङ्गन, चुम्बन, कुचमर्दन आदि उपक्रियाओं से आभिमानिकी (सङ्कल्पमात्र से होने वाली) रति का सुख प्राप्त करें, और औपरिष्टक कर्म द्वारा अपनी जीविका भी चलाये, अर्थात् आलिङ्गन आदि उसकी सुखानुभूति के साधन हैं और औपरिष्टक कर्म जीविका का साधन है॥ ४॥

वेश्यावच्चरितं प्रकाशयेत्। इति स्त्रीरूपिणी॥ ५॥

चरित—इसे वेश्या के समान ही आचरण करना चाहिये। स्त्रीरूपधारी नपुंसक (हिजड़ी) का प्रसङ्ग पूर्ण हुआ॥ ५॥

पुरुषरूपिणी तु प्रच्छन्नकामा पुरुषं लिप्समाना संवाहकभावमुपजीवेत्॥ ६॥

पुरुषरूपधारी नपुंसक—पुरुषरूपधारी (हिजड़ा) पुरुष जैसी आकृति होने के कारण अपनी कामनाओं को छिपाये रखता है, किन्तु रति के लिये चाहता पुरुष को ही है, अतएव उसे मर्दन और संवाहन (मालिश और हाथ-पैर दबाना) का कार्य करना चाहिये॥ ६॥

संवाहने परिष्वजमानेव गात्रैरूरू नायकस्य मृद्नीयात्॥ ७॥

संवाहन कर्म में अपने शरीर से लगाते हुए ही नायक की जाँघें दबानी चाहिये॥ ७॥

प्रसृतपरिचया चोरुमूलं सजघनमिति संस्पृशेत्॥ ८॥

धीरे धीरे जब परिचय बढ़ जाये, तो नायक की जाँघों और उसकी सन्धियों को भी दबाना और मसलना चाहिये॥ ८॥

तत्र स्थिरलिङ्गतामुपलभ्य चास्य पाणिमन्थेन परिघट्टयेत्। चापलमस्य कुत्सयन्तीव हसेत्॥ ९॥

इस प्रकार मर्दन और संवाहन से यदि नायक का शिश्न दृढ़ एवं स्थिर हो जाये, तो उसे हस्तक्रिया द्वारा इधर उधर करे और उसकी चपलता का उपालम्भ देता (निन्दा करता) हुआ हँसे॥ ९॥

कृतलक्षणेनाप्युपलब्धवैकृतेनापि न चोद्यत इति चेत् स्वयमुपक्रमेत्॥ १०॥

जिसे इस प्रकार कामोद्रिक्त कर दिया गया है, और जो नपुंसक (हिजड़ा) के विषय में यह जान गया है कि यह मुखमैथुन कराता है, यदि तब भी वह शिश्न को मुख में लेने की बात न कहे, तो नपुंसक को स्वयं ही अग्रसर होना चाहिये, अर्थात् उसका शिश्न मुख में लेकर औपरिष्टक कर्म प्रारम्भ कर देना चाहिये॥ १०॥

पुरुषेण च चोद्यमाना विवदेत्। कृच्छ्रेण चाभ्युपगच्छेत्॥ ११॥

यदि नायक पहले ही नपुंसक से मुखमैथुन के लिए कहे, तो नपुंसक को उससे विवाद करना चाहिये और बहुत कठिनाई से मुखमैथुन कराये॥ ११॥

तत्र कर्माष्टविधं समुच्चयप्रयोज्यम्॥ १२॥

औपरिष्टक के भेद—क्रिया के भेद से औपरिष्टक के भी कई भेद हो जाते हैं। उन्हें बताते हैं—यह औपरिष्टक कर्म आठ प्रकार का है। इनका क्रमशः प्रयोग करना चाहिये॥ १२॥

निमितं पार्श्वतोदष्टं बहिःसंदंशोऽन्तःसंदंशश्चुम्बितकं परिमृष्टकमाम्रचूषितकं सङ्गर इति॥ १३॥

निमित, पार्श्वतोदष्ट, बहिसन्दंश, अन्तःसन्दंश, चुम्बितक, परिमृष्टक, चूषितक और सङ्गर—औपरिष्टक की ये आठ क्रियाएँ हैं॥ १३॥

तेष्वेकैकमभ्युपगम्य विरामाभीप्सां दर्शयेत्॥ १४॥

नपुंसक इन आठ क्रियाओं में से क्रमशः एक एक को करता हुआ निवृत्त होने की इच्छा करे, जिससे नायक चकित होकर अनुनय विनय करे॥ १४॥

इतरश्च पूर्वस्मिन्नभ्युपगते तदुत्तरमेवापरं निर्दिशेत्। तस्मिन्नपि सिद्धे तदुत्तरमिति॥ १५॥

नायक को चाहिये कि एक क्रिया के पूर्ण होने पर दूसरी को करने के लिये कहे, और उसके पूर्ण होने पर तीसरी को करने के लिए कहे॥ १५॥

करावलम्बितमोष्ठयोरुपरि विन्यस्तमपविध्य मुखं विधुनुयात्। तन्निमितम्॥ १६॥

निमित—ओष्ठों को गोल-गोल बनाकर, हाथ में लिये हुए शिश्न को उस पर रख ले, और मुख हिलाये—इसे निमित कहते हैं॥ १६॥

हस्तेनाग्रमवच्छाद्य पार्श्वतो निर्दशनमोष्ठाभ्यामवपीड्य भवत्वेतावदिति सान्त्वयेत्। तत्पार्श्वतोदष्टम्॥ १७॥

पार्श्वतोदष्ट—शिश्न के अग्रभाग को हाथ से ढककर, पार्श्व में दाँत न लगाकर, केवल ओष्ठों से दबाकर यह कह दे कि अब इतना ही करना है, तो उसे पार्श्वतोदष्ट कहते हैं॥ १७॥

भूयश्चोदिता सम्मीलितौष्ठी तस्याग्रं निष्पीड्य कर्षयन्तीव चुम्बेत्। इति बहिःसंदंशः॥ १८॥

बहिःसन्दंश—यदि नायक फिर भी करने का आग्रह करे, तो उसके शिश्न के अग्रभाग को मुख में लेकर, दोनों ओष्ठों से दबाकर खींचता हुआ सा चूमे—इसे बहिःसन्दंश कहते हैं॥ १८॥

तस्मिन्नेवाभ्यर्थनया किञ्चिदधिकं प्रवेशयेत्। सापि चाग्रमोष्ठाभ्यां निष्पीड्य निष्ठीवेत्। इत्यन्तःसंदंशः॥ १९॥

अन्तःसन्दंश—नायक के पुनः आग्रह करने पर शिश्न का कुछ अधिक भाग मुख में ले

ले, और उसके अग्रभाग को ओष्ठों से कुछ दबाकर उगल दे—यह 'अन्तःसन्दंश' कहलाता है॥ १९॥

करावलम्बितस्यौष्ठवद् ग्रहणं चुम्बितकम्॥ २०॥

चुम्बितक—हाथ में लिये हुए शिश्न को अधरपान के समान, ओष्ठों से चूमना चुम्बितक कहलाता है॥ २०॥

तत्कृत्वा जिह्वाग्रेण सर्वतो घट्टनमग्रे च व्यधनमिति परिमृष्टकम्॥ २१॥

परिमृष्टक—चुम्बितक की क्रिया करके, शिश्न पर जिह्वा को रगड़ना और शिश्न के छिद्र पर जिह्वा के अग्रभाग को बार बार मारना या दबाना परिमृष्टक कहलाता है॥ २१॥

तथाभूतमेव रागवशादर्धप्रविष्टं निर्दयमवपीड्यावपीड्य मुञ्चेत्। इत्याम्रचूषितकम्॥ २२॥

आम्रचूषितक—यदि राग बढ़ जाने के कारण नायक शिश्न को यों ही नपुंसक के मुख में आधा डाल दे, और वह ओष्ठों से बार बार दबाकर छोड़ दे, तो यह आम्रचूषितक कहलाता है॥ २२॥

पुरुषाभिप्रायादेव गिरेत् पीडयेच्चापरिसमाप्तेः। इति सङ्गरः॥ २३॥

सङ्गर—नायक की इच्छानुसार शिश्न को मुख में लेकर स्खलनपर्यन्त दबाने को सङ्गर कहते हैं॥ २३॥

यथार्थं चात्र स्तननप्रहणनयोः प्रयोगः। इत्यौपरिष्टकम्॥ २४॥

औपरिष्टक के सीत्कार और प्रहणन—औपरिष्टक की क्रियाओं में नपुंसक को राग के अनुरूप ही सीत्कार और प्रहणन का प्रयोग भी करना चाहिये। **औपरिष्टक का विधान पूर्ण हुआ**॥ २४॥

कुलटाः स्वैरिण्यः परिचारिकाः संवाहिकाश्चाप्येतत् प्रयोजयन्ति॥ २५॥

नपुंसक के अतिरिक्त औपरिष्टक के विषय—कुलटा, स्वैरिणी (व्यभिचारिणी), परिचारिका और संवाहिका स्त्रियाँ भी औपरिष्टक कर्म कराती हैं॥ २५॥

तदेतत्तु न कार्यम्; समयविरोधादसभ्यत्वाच्च। पुनरपि ह्यासां वदनसंसर्गे स्वयमेवार्तिं प्रपद्येत। इत्याचार्याः॥ २६॥

आचार्यों का अभिमत—इस औपरिष्टक कर्म को कदापि नहीं करना चाहिये, क्योंकि शास्त्र भी इसका निषेध करता है और यह कर्म शिष्टजन-सम्मत भी नहीं है। कुलटा आदि नायिकाओं के साथ मुखमैथुन कर, पुनः रागवश मुखचुम्बन करने पर स्वयं भी दुःख होता है—ऐसा कामशास्त्र के आचार्यों का मत है॥ २६॥

वेश्याकामिनोऽयमदोषः। अन्यतोऽपि परिहार्यः स्यात्। इति वात्स्यायनः॥ २७॥

वात्स्यायन की व्यवस्था—वेश्यागामियों के लिये यह दोषपूर्ण नहीं है, इसके अतिरिक्त जो अन्य दोष कहे गये हैं, उनका भी परिहार सम्भव है—यह महर्षि वात्स्यायन का मत है॥ २७॥

तस्माद्यास्त्वौपरिष्टकमाचरन्ति न ताभिः सह संसृज्यन्ते प्राच्याः ॥ २८ ॥

देशाचार के रूप में प्रवृत्ति—इसी कारण प्राच्य देशवासी उन वेश्याओं (कुलटा आदि भी) के साथ समागम नहीं करते, जो मुखमैथुन कराती हैं ॥ २८ ॥

वेश्याभिरेव न संसृज्यन्ते आहिच्छत्रिकाः संसृष्टा अपि मुखकर्म तासां परिहरन्ति ॥ २९ ॥

अहिच्छत्र देशवासी वेश्यागमन ही नहीं करते, और यदि कोई करता भी है, तो वह वेश्या के मुख का चुम्बन नहीं करता ॥ २९ ॥

निरपेक्षाः साकेताः संसृज्यन्ते ॥ ३० ॥

अवध (साकेत) वासी पवित्रता, अपवित्रता का ध्यान रखे बिना स्वच्छन्द वेश्यागमन करते हैं ॥ ३० ॥

न तु स्वयमौपरिष्टकमाचरन्ति नागरकाः ॥ ३१ ॥

पाटलिपुत्र (पटना) के निवासी स्वेच्छा से मुखमैथुन नहीं करते ॥ ३१ ॥

सर्वमविशङ्क्या प्रयोजयन्ति सौरसेनाः ॥ ३२ ॥

सूरसेन (कौशाम्बी के दक्षिण तट) के निवासी समागम, मुखमैथुन और मुखचुम्बन—सभी काम निःशङ्क भाव से करते हैं ॥ ३२ ॥

एवं ह्याहुः—को हि योषितां शीलं शौचमाचारं चरित्रं प्रत्ययं वचनं वा श्रद्धातुमर्हति! निसर्गादेव हि मलिनदृष्टयो भवन्त्येता न परित्याज्याः। तस्मादासां स्मृतित एव शौचमन्वेष्टव्यम्। एवं ह्याहुः—

'वत्सः प्रस्रवणे मेध्यः श्वा मृगग्रहणे शुचिः।
शकुनिः फलपाते तु स्त्रीमुखं रतिसङ्गमे॥' इति ॥ ३३ ॥

स्त्रियों की अपवित्रता—इसी कारण कहा गया है कि ऐसा कौन है जो स्त्रियों के शील, शौच (पवित्रता), आचार, चरित्र, विश्वास और वचन पर श्रद्धा करेगा, क्योंकि ये स्वभाव से ही मलिन बुद्धि वाली होती हैं, तथापि ये त्याज्य (छोड़ने योग्य) नहीं हैं। अतएव इनकी पवित्रता लोक और शास्त्र के अतिरिक्त खोजनी चाहिये! स्मृतिकारों ने कहा है—

'दूध निकालते समय बछड़े का मुख पवित्र होता है, मृगों को पकड़ते समय कुत्ते का मुख पवित्र होता है, फल गिराते समय पक्षी का मुख पवित्र होता है और समागमकाल में स्त्री का मुख पवित्र होता है।' इस प्रकार समागमकाल में स्त्री का मुख पवित्र माना जाता है ॥ ३३ ॥

शिष्टविप्रतिपत्तेः स्मृतिवाक्यस्य च सावकाशत्वाद्देशस्थितेरात्मनश्च वृत्तिप्रत्ययानुरूपं प्रवर्तेत—इति वात्स्यायनः ॥ ३४ ॥

वात्स्यायन की व्यवस्था—शिष्टजन स्त्रियों के मुखचुम्बन के विरुद्ध हैं और स्मृतिवाक्य समागमकाल में मुखचुम्बन की अनुमति देते हैं। अतएव जहाँ जैसा देशाचार हो और जैसी अपनी प्रवृत्ति और आस्था हो, उसके अनुरूप ही व्यवहार करना चाहिये—यह महर्षि वात्स्यायन का मत है ॥ ३४ ॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

प्रमृष्टकुण्डलाश्चापि युवानः परिचारकाः।
केषाञ्चिदेव कुर्वन्ति नराणामौपरिष्टकम्॥ ३५॥

इस विषय में कुछ आनुवंश्य श्लोक उद्धृत करते हैं—

विशिष्ट औपरिष्टक—कानों में कुण्डल धारणकर और साज-सज्जा से रहने वाले कुछ युवक और परिचारक भी औपरिष्टक कर्म करते हैं॥ ३५॥

तथा नागरकाः केचिदन्योन्यस्य हितैषिणः।
कुर्वन्ति रूढविश्वासाः परस्परपरिग्रहम्॥ ३६॥

इसी प्रकार कुछ कामुक नागरक भी परस्पर हितैषी एवं विश्वस्त सहचर बनकर एक-दूसरे के साथ औपरिष्टक कर्म करते हैं॥ ३६॥

पुरुषाश्च तथा स्त्रीसु कर्मैतत्किल कुर्वते।
व्यासस्तस्य च विज्ञेयो मुखचुम्बनवद्विधिः॥ ३७॥

कोई-कोई पुरुष भी स्त्री के साथ औपरिष्टक कर्म करते हैं। स्त्री के साथ पुरुष की औपरिष्टक की विधि तो यही हो सकती है कि पुरुष मुख से स्त्री की योनि का चुम्बन करे॥ ३७॥

परिवर्तितदेहौ तु स्त्रीपुंसौ यत् परस्परम्।
युगपत् सम्प्रयुज्येते स कामः काकिलः स्मृतः॥ ३८॥

स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के विपरीत दिशाओं में मुख करके लेट जायें, और स्त्री, पुरुष के शिश्न का मुख से चुम्बन करे और पुरुष उसके मदनमन्दिर का। एक साथ सम्पन्न होने वाले इस औपरिष्टक को काकिल कहते हैं॥ ३८॥

तस्माद् गुणवतस्त्यक्त्वा चतुराँस्त्यागिनो नरान्।
वेश्याः खलेषु रज्यन्ते दासहस्तिपकादिषु॥ ३९॥

इसी कारण वेश्याएँ गुणवान् चतुर और त्यागी पुरुषों को छोड़कर दास, महावत आदि खल पुरुषों में अधिक अनुरक्त होती हैं॥ ३९॥

न त्वेतद् ब्राह्मणो विद्वान्मन्त्री वा राजधूर्धरः।
गृहीतप्रत्ययो वापि कारयेदौपरिष्टकम्॥ ४०॥

इस औपरिष्टक कर्म को विद्वान् ब्राह्मण या राज्यकार्य के निर्वाहक मन्त्री (राजमन्त्री) अथवा लोक में सम्मान्य व्यक्ति को कदापि नहीं करना चाहिये॥ ४०॥

न शास्त्रमस्तीत्येतावत् प्रयोगे कारणं भवेत्।
शास्त्रार्थान् व्यापिनो विद्यात् प्रयोगाँस्त्वेकदेशिकान्॥ ४१॥

शास्त्र की व्यापकता और प्रयोगों की एकदेशीयता—'इस बात को शास्त्र कहता है'—यही प्रयोगों का कारण नहीं होना चाहिये; क्योंकि शास्त्र का विषय तो व्यापक हुआ करता है, उसमें शुभ अशुभ सभी विषय वर्णित होते हैं, लेकिन प्रयोग सीमित और एकदेशीय ही हुआ करते हैं॥ ४१॥

रसवीर्यविपाका हि श्वमांसस्यापि वैद्यके।

कीर्तिता इति तत्किं स्याद् भक्षणीयं विचक्षणैः॥ ४२॥

आयुर्वेद में कुत्ते के मांस को सरस और वीर्यवर्धक बताया गया है, किन्तु क्या इससे विचारशील व्यक्ति को कुत्ते का मांस खा लेना चाहिये!॥ ४२॥

सन्त्येव पुरुषाः केचित् सन्ति देशास्तथाविधाः।
सन्ति कालाश्च येष्वेत योगा न स्युर्निरर्थकाः॥ ४३॥

विवेचन की सार्थकता—कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, कुछ ऐसे भी देश होते हैं, और कुछ ऐसा समय भी होता है जिनके लिये ये लोग निरर्थक नहीं, बल्कि उपयोगी हो हैं॥ ४३॥

तस्माद्देशं च कालं च प्रयोगं शास्त्रमेव च।
आत्मानं चापि संप्रेक्ष्य योगान्युञ्जीत वा न वा॥ ४४॥

प्रयोक्ता के विचारणीय विषय—अतएव देश, काल, व्यवहार, शास्त्र और अपने को देखकर जो विधि एवं योग शिष्ट एवं ग्राह्य हों, उन्हें ही प्रयोग करें अर्थात् जो विधि एवं प्रयोग अशिष्ट एवं अग्राह्य हैं, उन्हें त्याग दे॥ ४४॥

अर्थस्यास्य रहस्यत्वाच्चलत्वान्मनसस्तथा।
कः कदा किं कुतः कुर्यादिति को ज्ञातुमर्हति॥ ४५॥

यह औपरिष्टक कर्म नितान्त एकान्त में किया जाता है, और गुप्त ही रखा जाता है। मन अत्यन्त चंचल है। अतएव कौन व्यक्ति, किस कारण से, कब, क्या कर डाले—इसे कौन जान सकता है!॥ ४५॥

औपरिष्टक प्रकरण नामक नवम अध्याय सम्पन्न॥

●

दशम अध्याय

रतारम्भावसानिकप्रकरण

नागरकः सह मित्रजनेन परिचारकैश्च कृतपुष्पोपहारे सञ्चारितसुरभिधूपे रत्यावासे प्रसाधिते वासगृहे कृतस्नानप्रसाधनां युक्त्यापीतां स्त्रियं सान्त्वनैः पुनः पानेन चोपक्रमेत्॥ १॥

१. सुरत के प्रारम्भ के कृत्य—नागरक अपने पीठमर्द, विट एवं विदूषक आदि मित्रों और सेवकों द्वारा पुष्पमालाओं से सज्जित एवं सुगन्धित धूप से धूपित रतिकक्ष में स्त्री के साथ बैठे, जो स्नान एवं शृङ्गार किये हुए हो, वस्त्राभूषणों से सज्जित हो, और हल्का मद्यपान भी किये हो। नागरक पहले स्त्री से कुशलक्षेम पूछे, और फिर विनयपूर्वक उससे मद्यपान के लिये कहे॥ १॥

दक्षिणतश्चास्या उपवेशनम्। केशहस्ते वस्त्रान्ते नीव्यामित्यवलम्बनम्। रत्यर्थं सव्येन बाहुनानुद्धतः परिष्वङ्गः॥ २॥

नायिका की दाहिनी ओर बैठे। उसके केशपाश को सहलाये, उसके वस्त्रों पर हाथ फेरे, बाद में उसके (नीवी नाड़े) पर हाथ लगाये। अनुरागवर्धन हेतु बायें हाथ से स्निग्ध-सौम्य आलिङ्गन करे॥ २॥

पूर्वप्रकरणसंबद्धैः परिहासानुरागैर्वचोभिरनुवृत्तिः। गूढाश्लीलानां च वस्तूनां समस्यया परिभाषणम्॥ ३॥

हास-परिहास और अनुराग-कथाओं से सम्बद्ध पुरातन बातों को कहे, और फिर वैसा ही प्रेमालाप प्रारम्भ कर दे। गूढ़ और अश्लील बातों को संक्षेप में कहे॥ ३॥

सनृत्तमनृत्तं वा गीतं वादित्रम्। कलासु सङ्कथाः। पुनः पानेनोपच्छन्दनम्॥ ४॥

नृत्य के साथ या नृत्य के विना गाना-बजाना हो, ललित कलाओं पर चर्चा हो, और फिर मद्यपान कर उसे प्रोत्साहित करना चाहिये॥ ४॥

जातानुरागायां कुसुमानुलेपनताम्बूलदानेन च शेषजनविसृष्टिः। विजने च यथोक्तैरालिङ्गनादिभिरेनामुद्धर्षयेत्। ततो नीवीविश्लेषणादि यथोक्तमुपक्रमेत्। इत्ययं रतारम्भः॥ ५॥

नायिका में अनुराग उत्पन्न हो जाने पर पुष्पमाला, सुगन्धित द्रव्य (इत्र) और ताम्बूल देकर शेष व्यक्तियों—मित्रों एवं सेवकों—को विदा कर दे, और निर्जन रतिकक्ष में पूर्वोक्त आलिङ्गन, चुम्बन आदि करता हुआ, उसे कामोत्तेजित करे, तदुपरान्त नीवीबन्धन को खोले—यह सुरत से पूर्व की विधि है॥ ५॥

रतावसानिकं रागमतिबाह्यासंस्तुतयोरिव सव्रीडयोः परस्परमपश्यतोः पृथक्पृतगाचारभूमिगमनम्। प्रतिनिवृत्त्य चाव्रीडायमानयोरुचितदेशोपविष्टयो-स्ताम्बूलग्रहणमच्छीकृतं चन्दनमन्यद्वानुलेपनं तस्या गात्रे स्वयमेव निवेशयेत्॥ ६॥

२. सुरत के समापन के कार्य—समागम कर चुकने के बाद, रतिसुख का अनुभव करके, दोनों अपरिचितों के समान पृथक्-पृथक् संकुचित होते हुए, एक-दूसरे को न देखते हुए शौचालयों को जायें, और वहाँ मूत्रत्याग और गुप्ताङ्गों की शुद्धि करें। वहाँ से लौटकर, लज्जाभाव को त्यागकर, शैय्या के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर बैठकर दोनों ताम्बूल का सेवन करें। चन्दन या किसी अन्य वस्तु का अनुलेपन एक दूसरे के शरीर पर लगायें॥ ६॥

सव्येन बाहुना चैनां परिरभ्य चषकहस्तः सान्त्वयन् पाययेत्। जलानुपानं वा खण्डखाद्यकमन्यद्वा प्रकृतिसात्म्ययुक्तमुभावप्युपयुञ्जीयाताम्॥ ७॥

और फिर दाहिने हाथ में मद्य लेकर, बायें हाथ से नायिका का आलिङ्गन करे, और उसे सान्त्वना देकर पिलाये अथवा खाँड़ से निर्मित जलपान या प्रकृति के अनुरूप जो भी उचित हो, उसका दोनों जलपान करें॥ ७॥

अच्छरसकयूषमम्लयवागूं भृष्टमांसोपदंशानि पानकानि चूतफलानि शुष्क-मांसं मातुलुङ्गचुक्रकाणि सशर्कराणि च यथादेशसात्म्यं च। तत्र मधुरमिदं मृदु विशदमिति च विदश्य विदश्य तत्तदुपाहरेत्॥ ८॥

अच्छ, रसक, यूष, अम्ल यवागू, वे पेय पदार्थ जिनके साथ भुना हुआ मांस खाया जाता

है, पका आम, सूखा मांस, चीनी बुरके हुए बिजौरे नीबू के टुकड़े—इनमें जो भी देश और अपनी प्रकृति के अनुकूल पड़े, उन्हें सेवन करे। नायक यह कह कहकर खाद्य पदार्थ नायिका को देता जाये कि यह बहुत मीठा है, यह बहुत सुन्दर और बड़ा है, इसे खाओ ॥ ८ ॥

हर्म्यतलस्थितयोर्वा चन्द्रिकासेवनार्थमासनम्। तत्रानुकूलाभिः कथाभिरनुवर्तेत। तदङ्कसंलीनायाश्चन्द्रमसं पश्यन्त्या नक्षत्रपंक्तिव्यक्तीकरणम्। अरुन्धती-ध्रुव-सप्तर्षि-मालादर्शनं च। इति रतावसानिकम्॥ ९ ॥

यदि ऋतु अनुकूल हो, तो भवन की छत पर चाँदनी का आनन्द लेने हेतु दोनों बैठें, और वहाँ रसस्निग्ध कथावार्ता करें। नायिका, नायक की गोद में लेट जाये। नायक को चाहिये कि चाँदनी को देखती हुई नायिका को विभिन्न नक्षत्रों को बताये और ध्रुव, अरुन्धती एवं सप्तर्षिमण्डल के दर्शन कराये। इस प्रकार सुरत के अन्त में कृत्य पूर्ण हुए॥ ९ ॥

तत्रैतद्भवति—

अवसानेऽपि च प्रीतिरुपचारैरुपस्कृता।
सविस्रम्भकथायोगै रतिं जनयते पराम्॥ १० ॥

इस विषय में यह लोकख्याति है—

आलिङ्गन, चुम्बन आदि से प्रारम्भ की गयी और अन्त में माला, गन्ध (इत्र), पान आदि उपचारों से संस्कृत प्रीति, प्रेम-प्रसङ्गों और आलिङ्गन आदि के योग से उत्कृष्ट रति को प्राप्त होती है॥ १० ॥

परस्परप्रीतिकरैरात्मभावानुवर्तनैः ।
क्षणात् क्रोधपरावृत्तैः क्षणात् प्रीतिविलोकितैः ॥ ११ ॥

प्रीतिवर्धक योग—परस्पर प्रेमोत्पादक भावों के प्रदर्शन से, क्षणभर में कुपित होकर मुख घुमाने, और दूसरे ही क्षण प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखने से युवक-युवतियों की प्रीति बढ़ती है॥ ११ ॥

हल्लीसकक्रीडनकैर्गायनैर्लाटरासकैः।
रागलोलार्द्रनयनैश्चन्द्रमण्डलवीक्षणैः ॥ १२ ॥

हल्लीसक क्रीड़ा से, परस्पर गायन से, लाट रासक से, राग से चंचल एवं नेत्रों को अश्रुसिक्त कर देने वाले श्रुतिमधुर गीतों के सुनने से और चन्द्रमण्डल के दर्शन से युवक-युवतियों की प्रीति बढ़ती है॥ १२ ॥

आद्ये सन्दर्शने जाते पूर्वं ये स्युर्मनोरथाः।
पुनर्वियोगे दुःखं च तस्य सर्वस्य कीर्तनैः॥
कीर्तनान्ते च रागेण परिष्वङ्गैः सचुम्बनैः।
तैस्तैश्च भावैः संयुक्तो यूनो रागो विवर्धते॥ १३ ॥

प्रथम दर्शन के समय मन में कैसी इच्छाएँ जाग्रत् हुईं और प्रथम बार वियोग होने पर मन को कितना दुःख हुआ—इस सब के विस्तारपूर्वक कहने से और इसके पश्चात् प्रेमपूर्वक

आलिङ्गन, चुम्बन आदि करने से तथा इसी प्रकार भावसंयुक्त अन्य विश्वसनीय कथाओं के कहने से युवक युवतियों का प्रेम बढ़ता रहता है॥ १३॥

रागवदाहार्यरागं कृत्रिमरागं व्यवहितरागं पोटारतं खलरतमयन्त्रितरतमिति रतविशेषा:॥ १४॥

रतविशेष प्रकरण : रागवत् (स्वाभाविक राग), आहार्य राग, कृत्रिम राग, व्यवहित राग, पोटारत, खलरत और अनियन्त्रित—ये रतविशेष हैं॥ १४॥

सन्दर्शनात्प्रभृत्युभयोरपि प्रवृद्धरागयो: प्रयत्नकृते समागमे प्रवासप्रत्यागमने वा कलहवियोगयोगे तद्रागवत्॥ १५॥

रागवत्—प्रथम दर्शन से लेकर दोनों के राग का निरन्तर बढ़ते जाना, फलत: शारीरिक एवं मानसिक विकलता, मिलन की बलवती लालसा और अनेक प्रयत्नों के पश्चात् येन केन प्रकारेण मिलन या प्रवास से लौटने पर प्रिया से मिलन अथवा प्रणय-कलह के पश्चात् दोनों का मिलन—यह रागवत् या स्वाभाविक राग कहलाता है॥ १५॥

तत्रात्माभिप्रायाद् यावदर्थं च प्रवृत्ति:॥ १६॥

इसके कार्य—यह रागवत् राग स्वत: बढ़ता है, इसलिए नायक-नायिका स्खलन-सुख तक इसमें प्रवृत्त रहते हैं॥ १६॥

मध्यस्थरागयोरारब्धं यदनुरज्यते तदाहार्यरागम्॥ १७॥

आहार्य राग—जब नायक-नायिका में एक-दूसरे को देखकर इच्छामात्र उत्पन्न हो, तीव्र कामासक्ति न हो, तो उसे मध्यस्थ राग कहते हैं। जब मध्यस्थ राग ही उपायों द्वारा सञ्चालित होकर राग उत्पन्न कर दे तो ऐसे मिलन को आहार्य राग कहते हैं॥ १७॥

तत्र चातु:षष्टिकैर्योगैः सात्म्यानुविद्धैः सन्धुक्ष्य सन्धुक्ष्य रागं प्रवर्तेत॥

प्रवृत्ति की रीति—ऐसी स्थिति में पाञ्चालिकी चतु:षष्टि के आलिङ्गन आदि योगों से जो भी देश और प्रकृति के अनुकूल पड़ें, वासना को प्रदीप्त कर समागम में प्रवृत्त होना चाहिये॥ १८॥

तत्कार्यहेतोरन्यत्र सक्तयोर्वा कृत्रिमरागम्॥ १९॥

कृत्रिम राग—यदि स्त्री किसी अन्य पर आसक्त हो और पुरुष किसी अन्य पर और दोनों किसी प्रयोजनवश रमण करें, तो इसे 'कृत्रिम राग' कहते हैं॥ १९॥

तत्र समुच्चयेन योगाञ्शास्त्रत: पश्येत्॥ २०॥

प्रवृत्ति की रीति—कृत्रिम राग वाले समागमों में कामशास्त्र में बताये गये सभी योगों (उपायों) का एक साथ प्रयोग करना चाहिये॥ २०॥

पुरुषस्तु हृदयप्रियामन्यां मनसि निधाय व्यवहरेत्। सम्प्रयोगात् प्रभृति रतिं यावत्। अतस्तद्व्यवहितरागम्॥ २१॥

व्यवहित राग—पुरुष अपने हृदय में अपनी वास्तविक प्रिया का ध्यान करके आलिङ्गन से लेकर स्खलित होने तक सभी व्यवहार करे और स्त्री अपने वास्तविक प्रिय को ध्यान में रखकर, तो यह रत व्यवहित राग कहलाता है॥ २१॥

न्यूनायां कुम्भदास्यां परिचारिकायां वा यावदर्थं सम्प्रयोगस्तत् पोटारतम्॥ २२॥

पोटारत—निम्न कोटि की कुम्भदासी या परिचारिका के साथ स्खलित होने तक जो समागम होता है, वह पोटारत कहलाता है॥ २२॥ (पोटा=नपुंसक या नौकरानी)

तत्रोपचारान्नाद्रियेत॥ २३॥

पोटारत में उपचार अनावश्यक—निम्न कोटि की स्त्रियों के साथ समागम करते समय आलिङ्गन, चुम्बन आदि उपक्रियाएँ नहीं करनी चाहिये॥ २३॥

तथा वेश्याया ग्रामीणेन सह यावदर्थं खलरतम्॥ २४॥

खलरत—इसी प्रकार वेश्या का ग्रामीण व्यक्ति के साथ स्खलनपर्यन्त समागम करना खलरत कहलाता है॥ २४॥

ग्रामव्रजप्रत्यन्तयोषिद्भिश्च नागरकस्य॥ २५॥

कामकलानिपुण पुरुष का ग्राम्य स्त्री (ग्वालिन, भीलनी आदि) के साथ समागम भी खलरत ही है॥ २५॥

उत्पन्नविश्रम्भयोश्च परस्परानुकूल्यादयन्त्रितरतम्। इति रतानि॥ २६॥

अनियन्त्रित रत—जहाँ निरन्तर समागम करने से स्त्री-पुरुष दोनों में परस्पर विश्वास उत्पन्न हो गया हो, और दोनों एक दूसरे की अनुकूलता का ध्यान रखते हों, वहाँ अनियन्त्रितरत होता है। इस प्रकार रतविशेष पूर्ण हुए॥ २६॥

वर्धमानप्रणया तु नायिकासपत्नीनामग्रहणं तदाश्रयमालापं वा गोत्रस्खलितं वा न मर्षयेत्। नायकव्यलीकं च॥ २७॥

प्रणयकलह के कारण—जिस नायिका का नायक पर प्रेम बढ़ चुका हो, वह सपत्नियों (सौतों) का नाम लेना, उनसे सम्बद्ध वार्तालाप अथवा उनके नाम से अपने को बुलाया जाना आदि विरुद्ध आचरणों को कदापि सहन न करे॥ २७॥

तत्र सुभृशः कलहो रुदितमायासः शिरोरुहाणामवक्षोदनं प्रहणनमासनाच्छयनाद्वा मह्यां पतनं माल्यभूषणावमोक्षो भूमौ शय्या च॥ २८॥

असहिष्णुता के कार्य—जोरदार वाग्युक्त कलह, रुदन, पीड़ा, बालों को बिखेरना, शिर पीटना, आसन या शैय्या से उतर कर भूमि पर लेट जाना, आभूषण उतार देना और भूमि पर सोना—ये कलह के कार्य हैं॥ २८॥

तत्र युक्तरूपेण साम्ना पादपतनेन वा प्रसन्नमनास्तामनुनयन्नुपक्रम्य शयनमारोहयेत्॥ २९॥

नायक के कार्य—नायिका के इस प्रकार मचल जाने पर नायक को चाहिये कि आवश्यकता के अनुसार प्रिय वाक्यों से अथवा चरणस्पर्श से उसे मनाकर अनुनय-विनयपूर्वक शैय्या पर सुला दे॥ २९॥

तस्य च वचनमुत्तरेण योजयन्ती विवृद्धक्रोधा सकचग्रहमस्यास्यमुन्नमय्य

पादेन बाहौ शिरसि वक्षसि पृष्ठे वा सकृद्द्विस्त्रिरवहन्यात्। द्वारदेशं गच्छेत्। तत्रोपविश्याश्रुकरणमिति॥ ३०॥

मान की विधि—नायक के वचनों पर उत्तर मारती हुई बढ़े हुए क्रोध वाली नायिका, नायक के बालों को पकड़कर, उसके मुख को ऊपर उठाकर, पैर से उसकी बाँहों, सिर, वक्ष या पीठ पर एक या दो बार ठोकर मार दे; द्वार तक चली जाये और वहाँ बैठकर अश्रुधारा बहाये॥ ३०॥

अतिक्रुद्धापि तु न द्वारदेशाद् भूयो गच्छेत्। दोषवत्त्वात्। इति दत्तकः। तत्र युक्तितोऽनुनीयमाना प्रसादमाकांक्षेत्। प्रसन्नापि तु सकषायैरेव वाक्यैरेनं तुदतीव प्रसन्नरतिकांक्षिणी नायकेन परिरभ्येत॥ ३१॥

आचार्य दत्तक का मत है कि अत्यन्त क्रुद्ध हुई नायिका भी न तो द्वार के बाहर पैर रखे और न अन्दर आये, क्योंकि बाहर जाकर पुनः लौटना अनेक शङ्काओं को जन्म देता है और अन्दर लौटना अपमानजनक है। उसे द्वार पर बैठकर युक्तिपूर्वक मनाने पर प्रसन्न हो जाने की आकांक्षा करनी चाहिये। प्रसन्न हो जाने पर भी व्यंग्य बाणों से नायक का हृदय छेदती हुई वह प्रसन्न रति की लालसा से नायक से परिरम्भण (आलिङ्गन) आरम्भ करे॥ ३१॥

स्वभवनस्था तु निमित्तात् कलहिता तथाविधचेष्टैव नायकमभिगच्छेत्॥ ३२॥

वेश्या और परकीया के मान की रीति—अपने घर रहने वाली वेश्या और परकीया तो पूर्वोक्त कलह के कारणों से कलह जैसी चेष्टाएँ करती हुई नायक के घर पहुँच जायें॥ ३२॥

तत्र पीठमर्दविटविदूषकैर्नायकप्रयुक्तैरुपशमितरोषा तैरेवानुनीता तैः सहैव तद्भवनमधिगच्छेत्। तत्र स वसेत्। इति प्रणयकलहः॥ ३३॥

इस प्रणय-कलह के अवसर पर नायक द्वारा प्रेषित पीठमर्द और विदूषकों द्वारा मनाने पर नायिका को चाहिये कि वह क्रोध त्यागकर उनके साथ चली जाये और नायक के साथ ही रात बिताये। इस प्रकार प्रणयकलह नामक प्रकरण पूर्ण हुआ॥ ३३॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

एवमेतां चतुःषष्टिं बाभ्रव्येण प्रकीर्तिताम्।
प्रयुञ्जानो वरस्त्रीषु सिद्धिं गच्छति नायकः॥ ३४॥

अधिकरण का उपसंहार—इस विषय में कुछ आनुवंश्य श्लोक देते हैं—आचार्य बाभ्रव्य द्वारा कथित पांचालिकी चतुःषष्टि (चौंसठ कामकलाओं) का प्रयोग श्रेष्ठ स्त्रियों (स्वकीया या कुलाङ्गनाओं) में करके नायक अनुपम सिद्धि को प्राप्त करता है॥ ३४॥

ब्रुवन्नप्यन्यशास्त्राणि चतुःषष्टिविवर्जितः।
विद्वत्संसदि नात्यर्थं कथासु परिपूज्यते॥ ३५॥

जो नायक अन्य शास्त्रों का विशेषज्ञ होते हुए भी चौंसठ कामकलाओं को नहीं जानता वह विद्वानों की धर्म, अर्थ और कामविषयक गोष्ठियों में सम्मान नहीं प्राप्त कर सकता॥ ३५॥

वर्जितोऽप्यन्यविज्ञानैरेतया यस्त्वलंकृतः।

स गोष्ठ्यां नरनारीणां कथास्वग्रं विगाहते॥ ३६॥

जो व्यक्ति अन्य शास्त्रों के ज्ञान से शून्य होकर भी कामशास्त्र का सम्यक् ज्ञान रखता है, वह नर-नारियों की कामविषयक गोष्ठियों में अग्रणी मानकर सम्मानित होता है॥ ३६॥

विद्वद्भिः पूजितामेनां खलैरपि सुपूजिताम्।
पूजितां गणिकासङ्घैर्नन्दिनीं को न पूजयेत्!॥ ३७॥

त्रिवर्ग के ज्ञाता विद्वान् इन चौंसठ कामकलाओं को स्त्री की रक्षा का उपाय मानकर सम्मान देते हैं, तो दुष्ट लोग इनकी उपयोगिता के कारण और गणिकाएँ इन्हें जीविका का साधन मानकर पूजती हैं, तो फिर इन पूजनीय कलाओं को कौन नहीं पूजेगा!॥ ३७॥

नन्दिनी सुभगा सिद्धा सुभगङ्करणीति च।
नारीप्रियेति चाचार्यैः शास्त्रेष्वेषा निरुच्यते॥ ३८॥

ये चौंसठ कलाएँ नन्दिनी (आनन्दित करने वाली) हैं, सुभगा (मनोहर) हैं, सिद्धा (वशीभूत करने वाली) हैं, सुभगङ्करण (सौभाग्यकारिणी) हैं और स्त्रियों की अत्यन्त प्रिय हैं—आचार्यों ने शास्त्रों में इनकी ऐसी ही विवेचना की है॥ ३८॥

कन्याभिः परयोषिद्भिर्गणिकाभिश्च भावतः।
वीक्ष्यते बहुमानेन चतुःषष्टिविचक्षणः॥ ३९॥

जो नायक चौंसठ कामकलाओं का जानने वाला होता है उसे कन्याएँ, परकीया नायिकाएँ और गणिकाएँ गौरव और सम्मान की दृष्टि से देखती हैं॥ ३९॥

रतारम्भावसानिक प्रकरण नामक दशम अध्याय सम्पन्न॥

●

३.
कन्यासम्प्रयुक्तक तृतीय अधिकरण
प्रथम अध्याय
वरणसंविधानप्रकरण

सवर्णायामनन्यपूर्वायां शास्त्रतोऽधिगतायां धर्मोऽर्थः पुत्राः सम्बन्धः पक्षवृद्धिरनुपस्कृता रतिश्च॥ १॥

वरण का कारण—अपनी जाति की अक्षतयोनि एवं तन-मन से निर्मल कन्या से शास्त्रीय रीति से विवाह करने पर धर्म, अर्थ, सन्तान, सामाजिक सम्बन्ध, पक्षवृद्धि और अकृत्रिम (सहज) रति की प्राप्ति होती है॥ १॥

तस्मात्कन्यामभिजनोपेतां मातापितृमतीं त्रिवर्षात्प्रभृति न्यूनवयसं श्लाघ्याचारे

धनवति पक्षवति कुले सम्बन्धिप्रिये सम्बन्धिभिराकुले प्रसूतां प्रभूतमातृपितृपक्षां रूपशीललक्षणसम्पन्नामन्यूनाधिकाविनष्टदन्तनखकर्णकेशाक्षिस्तनीमरोगिप्रकृतिशरीरां तथाविध एव श्रुतवाञ्शीलयेत्॥ २॥

विवाहयोग्य कन्याएँ—अतएव विवाह के लिये ऐसी कन्या का चयन करे जो सत्कुलोत्पन्न हो, माता और पिता—दोनों से संरक्षित हो, अपने (वर) से कम से कम तीन वर्ष छोटी हो, प्रशंसनीय आचरण वाले तथा समृद्ध परिवार की हो, विशाल एवं प्रतिष्ठित परिवार की हो, जिसके परिवार को सम्बन्धी प्रिय लगते हों, जिस परिवार के मातृपक्ष और पितृपक्ष के यथेष्ट सम्बन्धी हों और वे दूर-दूर तक फैले हुए हों। जो रूप (सौन्दर्य), शील (स्वभाव) और शुभ लक्षणों से सम्पन्न हो, जिसके दाँत, नख, कान, केश, आँखें और स्तन न बहुत छोटे हों, न बहुत बड़े हों और न नष्ट ही हों अर्थात् उक्त अङ्ग प्रशंसनीय लगते हों, खटकने वाले न हों, जो नीरोग शरीर वाली हो अर्थात् कोई सहज रोग न हो॥ २॥

यां गृहीत्वा कृतिनमात्मानं मन्येत न च समानैर्निन्द्येत तस्यां प्रवृत्तिरिति घोटकमुखः॥ ३॥

आचार्य **घोटकमुख** का मत है कि जिस कन्या से विवाह करके पुरुष अपने को कृतार्थ (धन्य) समझे और समान स्तर वाले जातिबन्धु एवं मित्रगण किसी प्रकार की निन्दा न करें, प्रशंसा ही करें, उसी में मन लगाना चाहिये॥ ३॥

तस्या वरणे मातापितरौ सम्बन्धिनश्च प्रयतेरन्। मित्त्राणि च गृहीत-वाक्यान्युभयसम्बद्धानि॥ ४॥

मित्रसम्बन्धियों के प्रयत्नविषयक कार्य—उस चयनित कन्या के वाग्दान के लिये वर के माता-पिता और सम्बन्धियों को प्रयत्न करना चाहिये। वर के यथोक्तकारी मित्र भी, जो दोनों पक्षों से सम्बद्ध हों, इस सम्बन्ध के लिये प्रयत्न करें॥ ४॥

तान्यन्येषां वरयितॄणां दोषान् प्रत्यक्षानागमिकांश्च श्रावयेयुः। कौलान् पौरुषेयानभिप्रायसंवर्धकांश्च नायकगुणान्। विशेषतश्च कन्यामातुरनुकूलांस्त-दात्वायतियुक्तान् दर्शयेयुः॥ ५॥

मित्रों के प्रयत्न—वर के मित्रों को चाहिये कि वे अन्य उम्मीदवारों के कुरूपता आदि प्रत्यक्ष दोषों और सामुद्रिक शास्त्र या हस्तरेखाविषयक आगामी दोषों को कहें, और नायक के इष्टसाधक कुलाभिमान, पौरुष, शील-स्वभाव आदि की प्रशंसा करें। विशेष रूप से कन्या की माँ को रुचिकर लगने वाले प्रत्यक्ष और आगामी गुणों को नायक में अवश्य दिखा देना चाहिये॥ ५॥

दैवचिन्तकरूपश्च शकुननिमित्तग्रहलग्नबललक्षणदर्शनेन नायकस्य भविष्यन्तमर्थसंयोगं कल्याणमनुवर्णयेत्॥ ६॥

दैवज्ञों के प्रयत्नविषयक कार्य—नायक द्वारा प्रेषित ज्योतिषी, शान्त दिशा में कौए के बोलने आदि शकुन से अभ्युदयसूचक लक्षणों से, जन्मकुण्डली के लग्न और ग्रहों के बलाबल से नायक को प्राप्त होने वाले अर्थसंयोग और कल्याण का विस्तृत और सतर्क विवेचन करे॥ ६॥

अपरे पुनरस्यान्यतो विशिष्टेन कन्यालाभेन कन्यामातरमुन्मादयेयुः ॥ ७॥

कन्या की माता के पास पहुँचने वाले ज्योतिषी को चाहिये कि वह जिसे अपनी कन्या देना चाहती हो, उस युवक की अपेक्षा अपने नायक को कन्यादान में अधिक लाभ और कल्याण बताये तथा उसे इतना अनुरक्त बना दे कि वह नायक को कन्या देने के लिये उन्मत्त हो उठे ॥ ७॥

दैवनिमित्तशकुनोपश्रुतीनामानुलोम्येन कन्या वरयेद्दद्याच्च ॥ ८॥

कन्यापक्ष और वरपक्ष—दोनों को चाहिये कि विवाह सम्बन्ध निश्चित करने से पूर्व वर और कन्या-दोषों के ग्रहनक्षत्रों को देख लें, निमित्त और शकुन देख लें और अर्धरात्रि की अनुकूल उपश्रुति ग्रहणकर, दोनों का ग्रन्थि-बन्धन करें ॥ ८॥

न यदृच्छया केवलमानुषायेति घोटकमुखः ॥ ९॥

घोटकमुख का अभिमत—वैवाहिक सम्बन्ध केवल वर और कन्या अथवा इनके माता-पिता की ही इच्छा से नहीं होने चाहिये, अपितु इसमें अन्य कौटुम्बिक लोगों की भी सम्मति ली जानी चाहिये—ऐसा आचार्य **घोटकमुख का अभिमत है** ॥ ९॥

सुप्तां रुदतीं निष्क्रान्तां वरणे परिवर्जयेत् ॥ १०॥

अवरणीय कन्याएँ—जो कन्या दर्शनकाल में सो रही हो, रो रही हो और घर से बाहर गयी हुई हो, उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिये ॥ १०॥

अप्रशस्तनामधेयां च गुप्तां दत्तां घोनां पृषतामृषभां विनतां विकटां विमुण्डां शुचिदूषितां साङ्करिकीं राकां फलिनीं मित्रां स्वनुजां वर्षकरीं च वर्जयेत् ॥ ११॥

जो कन्या अप्रशस्त (भद्दे) नाम वाली हो, जिसे छिपाकर रखा गया हो, जो किसी की वाग्दता हो, जो भूरे बालों वाली हो, जो सफेद दाग वाली हो, जो पुरुष-जैसे शरीर या डीलडौल वाली हो, जिसके कन्धे झुके रहते हों, जो विकटनितम्बा (चौड़ी जाँघों वाली) हो, जिसके सिर पर काफी पीछे बाल हों (ऊँचे माथे वाली), जिसने अपने माता-पिता का दाहसंस्कार किया हो, जिसे किसी पुरुष ने दूषित कर रखा हो, जिसकी योनि रज से क्षत हो गयी हो, जो मूक (गूँगी) हो, जो बाल्यकाल की साथिन हो, जो अप्राप्तयौवना हो और जिसके हाथ-पैरों में अत्यधिक पसीना आता हो—ऐसी कन्या से विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ११॥

नक्षत्राख्यां नदीनाम्नीं वृक्षनाम्नीं च गर्हिताम्।
लकाररेफोपान्तां च वरणे परिवर्जयेत् ॥ १२॥

जिस कन्या का नाम नक्षत्र, नदी और वृक्ष के नाम पर हो, जो निन्दित नाम वाली हो, जिसके नाम के अन्त से पहले अक्षर में ल और र अक्षर आते हों, उसके साथ कदापि विवाह नहीं करना चाहिये ॥ १२॥

यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिः। नेतरामाद्रियेत्। इत्येके ॥ १३॥

जिस कन्या को देखकर मन रम जाये और आँखें, लग जायें, उसी से विवाह करने में सुख-समृद्धि होती है—ऐसा भी कामशास्त्र के कुछ आचार्यों का मत है ॥ १३॥

तस्मात् प्रदानसमये कन्यामुदारवेषां स्थापयेयुः। अपराह्णिकं च। नित्यं प्रसाधितायाः सखीभिः सह क्रीडा। यज्ञविवाहादिषु जनसन्द्रावेषु प्रायत्निकं दर्शनम्। तथोत्सवेसु च। पण्यसधर्मत्वात् ॥ १४॥

कन्या पक्ष की तैयारी—अतएव कन्या के युवा होने पर अभिभावक उसे उज्ज्वल और सुन्दर वस्त्र ही पहनायें। सन्ध्याकाल के समय भी वह अपनी सखियों के मध्य सुसज्जित होकर ही क्रीड़ा करे। यज्ञ, विवाह, उत्सव आदि में, जहाँ अनेक व्यक्ति एकत्र होते हैं, उसे सुसज्जित रूप में ही ले जाना चाहिये, क्योंकि वह तो बिक्री की वस्तु जैसी है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बिक्री की वस्तु को सुन्दर और भव्य रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है, जिससे वह ग्राहकों को आकर्षित कर सके, उसी प्रकार कन्या को भी उत्सव आदि में सुसज्जित रूप में ही ले जाना चाहिये जिससे लोग उसकी ओर आकर्षित हों और उससे विवाह की बात चलायें॥ १४॥

वरणार्थमुपगतांश्च भद्रदर्शनान् प्रदक्षिणवाचश्च तत्सम्बन्धिसङ्गतान् पुरुषान् मङ्गलैः प्रतिगृह्णीयुः॥ १५॥

वरपक्ष का स्वागत-सत्कार—जब सुन्दर और मधुरभाषी व्यक्ति अपने मित्रों एवं सम्बन्धियों के साथ कन्यावरण हेतु आयें तो कन्यापक्ष वालों को मांगलिक और स्वादिष्ट पदार्थों से उनका स्वागत करना चाहिये॥ १५॥

कन्यां चैषामलंकृतामन्यापदेशेन दर्शयेयुः॥ १६॥

कन्या दिखाने की रीति—किसी बहाने से ही वस्त्राभूषणों से सज्जित कन्या को वरपक्ष को दिखाना चाहिये॥ १६॥

दैवं परीक्षणं चावधिं स्थापयेयुः। आ प्रदाननिश्चयात्॥ १७॥

जब तक लेन-देन (दहेज) का निश्चित न हो जाये, तब तक वरपक्ष वालों से यह कह दें कि वर-कन्या की जन्मकुण्डली मिलवाने और अपने मित्रों एवं सम्बन्धियों से परामर्श करने के पश्चात् आपको उत्तर देंगे॥ १७॥

स्नानादिषु नियुज्यमाना वरयितारः सर्वं भविष्यतीत्युक्त्वा न तदहरेवाभ्युपगच्छेयुः॥ १८॥

विशेष बात—यदि कन्या पक्ष वाले वरपक्ष वालों से स्नानादिक के लिए कहें, तो वर पक्ष को चाहिये कि 'समय आने पर सब हो जायेगा' ऐसा कहकर उस दिन स्वीकार न करें॥ १८॥

देशप्रवृत्तिसात्म्याद्वा ब्राह्मप्राजापत्यार्षदैवानामन्यतमेन विवाहेन शास्त्रतः परिणयेत्। इति वरणविधानम्॥ १९॥

विवाह-भेद—अपने देशाचार या अपनी अनुकूलता से ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष और दैव—इन चार प्रशस्त विवाह-प्रकारों में से किसी एक के द्वारा शास्त्र-विधि से कन्या से विवाह करना चाहिये। वरणविधान पूर्ण हुआ॥ १९॥

समस्याद्याः सहक्रीडा विवाहाः सङ्गतानि च।
समानैरेव कार्याणि नोत्तमैर्नापि वाधमैः॥ २०॥

इस विषय में कुछ आनुवंश्य श्लोक प्राप्त होते हैं—किसी समस्या आदि को लेकर एक साथ क्रीड़ा करना, विवाह और मित्रता—ये तीनों कार्य समान शील और समान स्थिति वाले पुरुषों के साथ ही करने चाहिये। ये कार्य न तो अपने से ऊँचे के साथ करे और न नीचे के ही॥ २०॥

कन्यां गृहीत्वा वर्तेत प्रेष्यवद्यत्र नायकः।
तं विद्यादुच्चसम्बन्धं परित्यक्तं मनस्विभिः॥ २१॥

(क) उच्च सम्बन्ध सम्बन्ध-भेद—समानता को आधार बनाकर सम्बन्ध तीन प्रकार के होते हैं—सम सम्बन्ध, उच्च सम्बन्ध और हीन सम्बन्ध। यहाँ दोनों ही पक्ष अपने को बराबरी का समझें, वहाँ सम सम्बन्ध होता है। जहाँ दूसरे पक्ष के समक्ष नौकरों के समान रहना पड़े, उसे उच्च सम्बन्ध कहते हैं और इसके विपरीत को हीन सम्बन्ध। अब इनके स्वरूप को स्पष्ट करते हैं—जिस सम्बन्ध में कन्या को लेकर नायक (वर) को नौकर के समान रहना पड़ता है, उसे उच्च सम्बन्ध कहते हैं। बुद्धिमान् और मनस्वी व्यक्ति ऐसे सम्बन्धों को कदापि नहीं करते॥ २१॥

स्वामिवद्विचरेद् यत्र बान्धवैः स्वैः पुरस्कृतः।
अश्लाध्यो हीनसम्बन्धः सोऽपि सद्भिर्विनिन्द्यते॥ २२॥

(ख) हीन सम्बन्ध—जिस सम्बन्ध में वर, कन्या के बन्धु-बान्धवों के समक्ष स्वामी के समान विचरण करे, और कन्या दासी के समान बनी रहे, उसे हीन सम्बन्ध कहते हैं। ऐसा सम्बन्ध भी प्रशंसनीय नहीं है, क्योंकि सज्जन व्यक्ति ऐसे सम्बन्ध की निन्दा करते हैं॥ २२॥

परस्परसुखास्वादा क्रीडा यत्र प्रयुज्यते।
विशेषयन्ती चान्योन्यं सम्बन्धः स विधीयते॥ २३॥

(ग) समान सम्बन्ध—जिस सम्बन्ध में वरपक्ष और कन्यापक्ष—दोनों समान सुख का अनुभव करें, दोनों एक दूसरे के पूरक और शोभावर्धक हों, वह समान या उचित सम्बन्ध होता है॥ २३॥

कृत्वापि चोच्चसम्बन्धं पश्चाज्ज्ञातिषु सन्नमेत्।
न त्वेव हीनसम्बन्धं कुर्यात् सद्भिर्विनिन्दितम्॥ २४॥

उच्च और हीन सम्बन्धों में उच्च श्रेष्ठ—उच्च कुल की कन्या से विवाह करके, उसे अपने बन्धु-बान्धों में ले आये, श्वसुर के घर ही न पड़ा रहे, किन्तु सज्जनों द्वारा निन्दित हीन सम्बन्ध को तो कदापि न करे॥ २४॥

वरणसंविधान प्रकरण नामक प्रथम अध्याय सम्पन्न॥

●

द्वितीय अध्याय

कन्याविस्त्रम्भणप्रकरण

सङ्गतयोस्त्रिरात्रमधःशय्या ब्रह्मचर्यं क्षारलवणवर्जमाहारस्तथा सप्ताहं सतूर्यमङ्गलस्नानं प्रसाधनं सहभोजनं च प्रेक्षासम्बन्धिनां च पूजनम्। इति सार्ववर्णिकम्॥ १॥

दस दिन के कृत्य—विवाह के पश्चात् तीन दिन तक नवपरिणीत पति-पत्नी भूमि पर शयन करें, ब्रह्मचर्य का पालन करें, भोजन में क्षार और लवणहीन पदार्थ लें। तत्पश्चात् एक सप्ताह तक गाजे-बाजे और मङ्गल गीतों के साथ स्नान करें, वर-वधू, दोनों वस्त्राभरणों से सज्जित हों, दोनों साथ-साथ भोजन करें, काव्य गोष्ठी नाटक आदि देखने में साथ-साथ रहें, सम्बन्धियों, गुरुओं, अतिथियों आदि का स्वागत-सत्कार करें—ये नियम सभी वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिये हैं॥ १॥

तस्मिन्नेतां निशि विजने मृदुभिरुपचारैरुपक्रमेत॥ २॥

नवपरिणीता पत्नी में विश्वास उत्पन्न करने के उपाय—इन रातों में, एकान्त स्थान पर, कोमल उपचारों द्वारा पत्नी को अनुरक्त करना चाहिये॥ २॥

त्रिरात्रमवचनं हि स्तम्भमिव नायकं पश्यन्ती कन्या निर्विद्येत परिभवेच्च तृतीयामिव प्रकृतिम्। इति बाभ्रवीयाः॥ ३॥

कोमल उपचारों का कारण—प्रथम तीन रात्रियों में यदि पति स्तम्भ के समान जड़ बना रहे, न तो रससिक्त वार्तालाप ही करे और न मधुर स्पर्श ही, तो नववधू दुःखी होती है, और उसे ग्राम्य एवं नपुंसक समझकर उसका तिरस्कार कर डालती है—ऐसा आचार्य बाभ्रव्य के अनुयायियों का मत है॥ ३॥

उपक्रमेत विस्रम्भयेच्च, न तु ब्रह्मचर्यमतिवर्तेत। इति वात्स्यायनः॥ ४॥

प्रथम तीन रात्रियों में पति, पत्नी के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करे, उसे अपना विश्वस्त बनाये, किन्तु ब्रह्मचर्य का त्याग न करे—ऐसा महर्षि वात्स्यायन का मत है॥ ४॥

उपक्रममाणश्च न प्रसह्य किञ्चिदाचरेत्॥ ५॥

कोमल उपचार—प्रेम-प्रदर्शन के उपक्रमण में किसी प्रकार की प्रचण्डता न दिखाये अर्थात् रसग्निग्ध वार्तालाप, आलिङ्गन, चुम्बन आदि उतने ही करे कि जिससे पत्नी उद्विग्न न हो॥ ५॥

कुसुमसधर्माणो हि योषितः सुकुमारोपक्रमाः। तास्त्वनधिगतविश्वासैः प्रसभमुपक्रम्यमाणाः सम्प्रयोगद्वेषिण्यो भवन्ति। तस्मात् साम्नैवोपचरेत्॥ ६॥

इसका कारण—चूँकि स्त्रियाँ फूल के समान कोमल होती हैं, इसलिये सुकुमार उपचारों से ही उनको अनुरक्त करना चाहिये। जिस पति के प्रति उनमें विश्वास उत्पन्न नहीं है, यदि वह व्यवहार में प्रचण्डता दिखाने लगे, तो वे संभोग से घृणा करने लगती हैं। अतएव उनके साथ सुकुमार व्यवहार ही करना चाहिये॥ ६॥

युक्त्यापि तु यतः प्रसरमुपलभेत्तेनैवानु प्रविशेत्॥ ७॥

यथासम्भव प्रयास—जिस युक्ति से भी अवसर मिले, पत्नी का अन्तरङ्ग बनने का प्रयास करे॥ ७॥

तत्प्रियेणालिङ्गनेनाचरितेन नातिकालत्वात्॥ ८॥

सर्वप्रथम आलिङ्गन—इस प्रकार अवसर मिल जाने पर प्रेमपूर्वक स्त्री का आलिङ्गन करे, किन्तु यह अल्पकालिक ही होना चाहिये॥ ८॥

पूर्वकायेण चोपक्रमेत्। विषह्यत्वात्॥ ९॥

प्रथम उपक्रम—प्रारम्भ में पत्नी के नाभि से ऊपर के अङ्गों का ही स्पर्श करना चाहिये, क्योंकि इसे वह सह लेती है॥ ९॥

दीपालोके विगाढयौवनायाः पूर्वसंस्तुतायाः। बालाया अपूर्वायाश्चान्धकारे॥ १०॥

अन्धकार और प्रकाश—यदि पत्नी पूर्वपरिचिता या उन्मत्तयौवना हो, तो उसका आलिङ्गन प्रकाश में भी किया जा सकता है, लेकिन यदि वह अपरिचिता या अप्राप्तयौवना हो तो उसका आलिङ्गन अन्धकार में ही करना चाहिये॥ १०॥

अङ्गीकृतपरिष्वङ्गायाश्च वदनेन ताम्बूलदानम्। तदप्रतिपद्यमानां च सान्त्वनैर्वाक्यैः शपथैः प्रतियाचितैः पादपतनैश्च ग्राहयेत्। व्रीडायुक्तापि योषिदत्यन्तक्रुद्धापि न पादपतनमतिवर्तते इति सार्वत्रिकम्॥ ११॥

मुख से ताम्बूलदान—जब पत्नी आलिङ्गन को सहने लगे, तो पति को अपने मुख में पान रखकर उसे देना चाहिये। यदि वह उसे अस्वीकार करे, तो प्रीतिपूर्ण मनुहारों से अनुरोध करे, अपनी शपथ दिलाये, उससे ताम्बूल माँगे आदि। इतने पर भी मुख से पान न ले तो पैरों में गिरकर उसे मनाना चाहिये। अत्यधिक लज्जाशील या कुपित स्त्री भी पति के पैरों में पड़ने का अतिक्रमण नहीं कर सकती—यह प्रवृत्ति सभी स्थानों की स्त्रियों में समान रूप से मिलती है॥ ११॥

तद्दानप्रसङ्गेन मृदु विशदमकाहलमस्याश्चुम्बनम्॥ १२॥

प्रथम चुम्बन—मुख से ताम्बूल देते समय उसका कोमल और निःशब्द चुम्बन कर लेना चाहिये॥ १२॥

तत्र सिद्धामालापयेत्॥ १३॥

वार्तारस—जब चुम्बन से पत्नी प्रसन्न होने लगे तो उससे रसपूर्ण वार्तालाप प्रारम्भ कर दे॥ १३॥

तच्छ्रवणार्थं यत्किंचिदल्पाक्षराभिधेयमजानन्निव पृच्छेत्॥ १४॥

बोलने को विवश करने का उपाय—बातचीत को सुनती हुई पत्नी से थोड़े शब्दों में कही जाने वाली बात को पति पूर्णतः अनजान बनकर पूछे॥ १४॥

तत्र निष्प्रतिपत्तिमनुद्वेजयन् सान्त्वनायुक्तं बहुश एव पृच्छेत्॥ १५॥

यदि वह तब भी चुप रहे, कोई उत्तर न दे, तो उसे विना उद्विग्न किये ही चाटुकारिता भरे वचनों से बार बार पूछे॥ १५॥

यत्राप्यवदन्तीं निर्बध्नीयात्॥ १६॥

यदि इसके पश्चात् भी वह चुप रहे, तो इसी प्रकार की रससिक्त बातों में उसे फँसा ले॥ १६॥

सर्वा एव हि कन्याः पुरुषेण प्रयुज्यमानं वचनं विषहन्ते। न तु लघुमिश्रामपि वाचं वदन्ति। इति घोटकमुमखः॥ १७॥

सभी नवविवाहिता कन्याएँ पति द्वारा कही गयी प्रत्येक बात को सुन लेती हैं, किन्तु पूछी गयी किसी भी बात का उत्तर नहीं देतीं—यह आचार्य घोटकमुख का अभिमत है॥ १७॥

निर्बध्यमाना तु शिरःकम्पेन प्रतिवचनानि योजयेत्। कलहे तु न शिरः कम्पयेत्॥ १८॥

नवपरिणीता के उत्तर देने की रीति—पति द्वारा बार बार बोलने के लिये विवश किये जाने पर, सिर हिलाकर हाँ या ना का उत्तर दे और यदि वह क्रुद्ध हो तो सिर भी न हिलाये॥ १८॥

इच्छसि मां नेच्छसि वा, किं तेऽहं रुचितो न रुचितो वेति पृष्टा चिरं स्थित्वा निर्बध्यमाना तदानुकूल्येन शिरः कम्पयेत्। प्रपञ्च्यमाना तु विवदेत्॥ १९॥

प्रेमजिज्ञासा का स्वरूप—'तुम मुझे चाहती हो या नहीं', 'मैं तुम्हें पसन्द आया या नहीं'—इस प्रकार पति द्वारा पूछे जाने पर, पत्नी कुछ समय ठहरकर, आग्रह करने पर ही अनुकूलतासूचक सिर हिलाये, और यदि क्रुद्ध हो तो झगड़ पड़े॥ १९॥

संस्तुता चेत् सखीमनुकूलामुभयतोऽपि विस्रब्धां तामन्तरा कृत्वा कथां योजयेत्। तस्मिन्नधोमुखी विहसेत्। तां चातिवादिनीमधिक्षिपेद्विदेच्च। सा तु परिहासार्थमिदमनयोक्तमिति चानुक्तमपि ब्रूयात्। तत्र तामपनुद्य प्रतिवचनार्थमभ्यर्थ्यमाना तूष्णीमासीत। निर्बध्यमाना तु नाहमेवं ब्रवीमीत्यव्यक्ताक्षरमनवसितार्थं वचनं ब्रूयात्। नायकं च विहसन्ती कदाचित् कटाक्षैः प्रेक्षेत। इत्यालापयोजनम्॥ २०॥

पूर्वपरिचिता के साथ वार्तालाप की रीति—यदि नवपरिणीता पत्नी पहले से परिचित है तो अपने अनुकूल और दोनों की विश्वस्त सखी को माध्यम बनाकर इस प्रकार वार्ता प्रारम्भ करे। इसमें पति की बातें सुनकर कन्या हँसती रहे और सखी के कुछ अधिक बोलने पर उस पर यह आक्षेप लगाये कि तू बहुत बोलने लगी है और उससे विवाद करने लगे। सखी भी हँसी के लिए कही और अनकही बातें भी कह डाले कि यह तो यहाँ तक कह रही थी कि जबसे उन्हें देखा है तब से न दिन में चैन मिलता है और न रात में नींद आती है। यदि सखी को रोककर उससे उत्तर देने का निवेदन किया जाये, तो 'मैंने ऐसे नहीं कहा' इस प्रकार अस्पष्ट शब्द और अनिश्चित अर्थों वाले अक्षरों में उत्तर दे। कभी कभी नायक की ओर कटाक्षों से देखे। प्रारम्भ में यह वार्तालाप की रीति हुई॥ २०॥

एवं जातपरिचया चानिर्वदन्ती तत्समीपे याचितं ताम्बूलं विलेपनं स्रजं निदध्यात्। उत्तरीये वास्य निबध्नीयात्॥ २१॥

प्रिय के पास ताम्बूल आदि रखना—इस प्रकार परिचय हो जाने पर नायिका, माँगने पर ताम्बूल, चन्दन और माला, विना बोले ही, नायक के पास रख दे अथवा उसके उत्तरीय में बाँध दे॥ २१॥

तथायुक्तामाच्छुरितकेन स्तनमुकुलयोरुपरि स्पृशेत्॥ २२॥

कुचस्पर्श—नायिका के इस प्रकार ताम्बूल आदि रखने पर, नायक आच्छुरितक नामक आलिङ्गन से, नायिका के दोनों स्तनरूपी अर्धोन्मीलित पुष्पों का स्पर्श करे॥ २२॥

वार्यमाणश्च त्वमपि मां परिष्वजस्व ततो नैवमाचरिष्यामीति स्थित्या परिष्वञ्जयेत्। स्वं च हस्तमानाभिदेशात् प्रसार्य निर्वर्तयेत्। क्रमेण चैना-मुत्सङ्गमारोप्याधिकमधिकमुपक्रमेत्। अप्रतिपद्यमानां च भीषयेत्॥ २३॥

परवर्ती क्रियाएँ—यदि पत्नी स्तनों का स्पर्श न करने दे, तो 'तुम भी मेरा इसी प्रकार आलिङ्गन करो, मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा' यह कहकर उसका आलिङ्गन करे। अपने हाथ को उसके स्तनों से नाभिदेश तक ले जाकर हटा ले। तत्पश्चात् उसे क्रमशः अपनी गोद में बिठाने का प्रयत्न करे, और फिर धीरे धीरे आगे की क्रियाएँ बढ़ाता जाये। यदि वह ना करे तो नखक्षत-दन्तक्षत आदि की बात सुनाकर उसे भयभीत कर दें॥ २३॥

अहं खलु तव दन्तपदान्यधरे करिष्यामि स्तनपृष्ठे च नखपदम्। आत्मनश्च स्वयं कृत्वा त्वया कृतमिति ते सखीजनस्य पुरतः कथयिष्यामि। सा त्वं किमत्र वक्ष्यसीति बालविभीषिकैर्बालप्रत्यायनैश्च शनैरेनां प्रतारयेत्।

आतंकित करने की रीति—यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगी तो मैं तुम्हारे अधर पर दन्तक्षत और स्तनों पर नखक्षत बना दूँगा। मैं अपने शरीर पर स्वयं नखक्षत करके तुम्हारी सखियों से कहूँगा कि तुम्हारी सखी ने मेरे शरीर पर ये नखक्षत बना दिये हैं। तब तुम उनके सामने क्या कहोगी? इस प्रकार बच्चों के समान पत्नी को डरा धमकाकर धीरे धीरे उसे अपने कार्यों में लगा ले॥ २४॥

द्वितीयस्यां तृतीयस्यां च रात्रौ किञ्चिदधिकं विस्रम्भितां हस्तेन योजयेत्॥ २५॥

द्वितीय और तृतीय रात्रि—इस प्रकार प्रथम रात्रि में विश्वास में आयी हुई नायिका को दूसरी और तीसरी रात्रि में कुछ अधिक विश्वास में लेकर उसकी जाँघों आदि पर हाथ फेरना चाहिये॥ २५॥

सर्वाङ्गिकं चुम्बनमुपक्रमेत॥ २६॥

हस्तयोजन (हाथ फेरना) के उपाय—यदि नायिका नाभि से नीचे के अङ्गों पर हस्तयोजन न करने दे, तो मस्तक, नयन कपोल आदि का चुम्बन लेना प्रारम्भ कर दे॥ २६॥

ऊर्वोश्चोपरि विन्यस्तहस्तः संवाहनक्रियायां सिद्धायां क्रमेणोरुमूलमपि संवाहयेत्। निवारिते संवाहने को दोष इत्याकुलयेदेनाम्। तच्च स्थिरीकुर्यात्। तत्र सिद्धाया गुह्यदेशाभिमर्शनम्॥ २७॥

हस्तयोजनविधि—जाँघों के ऊपर हाथ रखकर संवाहन (मुट्ठी भरना) कर्म करता हुआ नायक क्रमशः नायिका की जाँघों के जोड़ तक हाथ ले जाये। यदि नायिका ऐसा करने से मना करे, तो 'इसमें क्या दोष है?'—ऐसा कह दे और जाँघों को सहलाने के साथ ही आलिङ्गन और चुम्बन से व्याकुल बना दे, लेकिन जाँघों का संवाहनकर्म स्थिरतापूर्वक करता रहे। यदि नायिका इसमें रुचि लेने लगे तो हाथ धीरे धीरे योनि तक पहुँचा देना चाहिये॥ २७॥

रशनावियोजनं नीवीविस्रंसनं वसनपरिवर्तनमूरुमूलसंवाहनं च। एते चास्यान्यापदेशाः। युक्तयन्त्रां रञ्जयेत्। न त्वकाले व्रतखण्डनम्॥ २८॥

नीवीविस्रंसन (नाड़ा खोलना) आदि कार्य—जाँघों का संवाहन करते समय ही करधनी खोलना, नाड़ा खोलना और कपड़े हटाना—ये कार्य भी होने चाहिये। ये सम्पूर्ण क्रियाएँ नायिका के मन में प्रेम और विश्वास उत्पन्न करने के लिए हैं, असमय में ब्रह्मचर्य का खण्डन करने के लिए नहीं। सम्भोग में उसका पूर्ण रञ्जन करे, लेकिन प्रथम तीन रात्रियों में ब्रह्मचर्य का त्याग न करे॥ २८॥

अनुशिष्याच्च। आत्मानुरागं दर्शयेत्। मनोरथांश्च पूर्वकालिकाननुवर्णयेत्। आयत्यां च तदानुकूल्येन प्रवृत्तिं प्रतिजानीयात्। सपत्नीभ्यश्च साध्वसमवच्छिन्द्यात्। कालेन च क्रमेण विमुक्तकन्याभावामनुद्वेजयन्नुपक्रमेत्। इति कन्यावि-स्रम्भणम्॥ २९॥

अन्य कार्य—प्रथम तीन रात्रियों में पत्नी को कामकला की शिक्षा देनी चाहिये। अपने प्रेम को प्रकट करना चाहिये। अपने पहले मनोरथों को उसे सुनाना चाहिये। भविष्य में उसके अनुकूल चलने की प्रतिज्ञा करनी चाहिये। उसके हृदय से सपत्नियों का भय निकाल देना चाहिये। कालक्रम से जैसे जैसे उसका कन्याभाव दूर होता जाये, वैसे वैसे उसे विना उद्विग्न किये ही अधिकाधिक उपक्रियाओं (आलिङ्गन, चुम्बन, नखक्षत, प्रहणन, सीत्कार आदि) का उपयोग करता रहे। इस प्रकार **कन्याविश्रम्भण प्रकरण पूर्ण** हुआ॥ २९॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

एवं चित्तानुगो बालामुपायेन प्रसाधयेत्।
तथास्य सानुरक्ता च सुविस्रब्धा प्रजायते॥ ३०॥

प्रकरण का उपसंहार—इस विषय में कुछ आनुवंश्य श्लोक प्राप्त होते हैं, उन्हें उद्धृत करते हैं—इस प्रकार नवपरिणीता पत्नी के हृदय की प्रवृत्तियों को समझकर, उसे युक्तिपूर्वक सिद्ध कर ले, तो वह विश्वस्त और अनुरक्त हो जायेगी॥ ३०॥

नात्यन्तमानुलोम्येन न चातिप्रातिलोम्यतः।
सिद्धिं गच्छति कन्यासु तस्मान्मध्येन साधयेत्॥ ३१॥

ध्यातव्य तथ्य—नवपरिणीता पत्नी से न तो दास बनकर सुख प्राप्त किया जा सकता है और न उससे प्रतिकूल होकर ही, इसलिये उसे मध्यमार्ग (कभी प्रेम और कभी कठोरता) से ही प्रसन्न करना चाहिये॥ ३१॥

आत्मनः प्रीतिजननं योषितां मानवर्धनम्।
कन्याविस्रम्भणं वेत्ति यः स तासां प्रियो भवेत्॥ ३२॥

विश्वस्त बनाने का फल—स्त्रियों के मन में अपने प्रति प्रीति उत्पन्न करना, उनका सम्मान करना और नवपरिणीता में विश्वास जगाना—इन तीन बातों को जो जानता है, वही स्त्रियों का प्रिय हो सकता है॥ ३२॥

अतिलज्जान्वितेत्येवं यस्तु कन्यामुपेक्षते।

सोऽनभिप्रायवेदीति पशुवत् परिभूयते॥ ३३॥

लज्जाशील की उपेक्षा उचित नहीं—जो पति 'यह अत्यधिक लज्जाशील है' ऐसा समझकर नवपरिणीता की उपेक्षा करता है, वह वास्तव में उसके हृदय का अभिप्राय न जानने के कारण उससे पशु के समान तिरस्कृत होता है॥ ३३॥

सहसा वाप्युपक्रान्ता कन्याचित्तमविन्दता।
भयं वित्रासमुद्वेगं सद्यो द्वेषं च गच्छति॥ ३४॥

विना विश्वास जगाये समागम उचित नहीं—जो पति नवपरिणीता में विना विश्वास जगाये, उसकी चित्तवृत्ति को विना जाने ही, सहसा सम्भोग कर बैठता है, तो उसके मन में शीघ्र ही भय, कम्पन, उद्वेश्य और द्वेष उत्पन्न हो जाता है॥ ३४॥

सा प्रीतियोगमप्राप्ता तेनोद्वेगेन दूषिता।
पुरुषद्वेषिणी वा स्याद् विष्टा वा ततोऽन्यगा॥ ३५॥

पति की प्रीति न पाकर नवपरिणीता ईर्ष्या और घृणा से भर उठती है। तत्पश्चात् वह या तो अपने पति या पुरुषमात्र से द्वेष करने लगती है अथवा अन्य पुरुष से अनुरक्त हो जाती है॥ ३५॥

कन्याविस्रम्भण प्रकरण नामक द्वितीय अध्याय सम्पन्न॥

तृतीय अध्याय

बालोपक्रमण

धनहीनस्तु गुणयुक्तोऽपि, मध्यस्थगुणो हीनापदेशो वा; सघनो वा प्रातिवेश्यः मातृपितृभ्रातृषु च परतन्त्रः, बालवृत्तिरुचितप्रदेशो वा कन्यामलभ्यत्वान्न वरयेत्॥ १॥

कन्या न मिलने के कारण—जो रूप, शील, ज्ञान और गुण-सम्पन्न होने पर भी धनहीन है, जो गुणों की दृष्टि से मध्यम होकर भी निम्न कुल में उत्पन्न हुआ है, जो धनी होकर भी पड़ोस का रहने वाला है, जो माता-पिता और भाई के अधीन है, जो अपनी बालवृत्ति के कारण किसी भी घर में प्रवेश कर जाता है, ऐसे युवक को माता-पिता अपनी कन्या नहीं देते, फलतः उन्हें गान्धर्वादि विवाहों से कन्याप्राप्ति का प्रयास करना चाहिये॥ १॥

बाल्यात् प्रभृति चैनां स्वयमेवानुरञ्जयेत्॥ २॥

कन्याप्राप्ति के उपाय—ऐसे व्यक्ति को चाहिये कि वे बाल्यावस्था से ही अपनी मनोवाञ्छित कन्या को अनुरक्त रखें॥ २॥

तथायुक्तश्च मातुलकुलानुवर्ती दक्षिणापथे बाल एव मात्रा च पित्रा च वियुक्तः परिभूतकल्पो धनोत्कर्षादलभ्यां मातुलदुहितरमन्यस्मै वा पूर्वदत्तां साधयेत्॥ ३॥

दक्षिण भारत में कन्या को अनुरक्त करने की रीति—दक्षिण भारत में जिन हीनताओं

के कारण अभिभावक अपनी कन्याएँ नहीं देते, उन्हीं हीनताओं से युक्त, माता-पिता से रहित, असहाय बालक अपने मामा के घर रहकर, धनोत्कर्ष के कारण सर्वथा अलभ्य ममेरी बहिन (मामा की लड़की) को भी सिद्ध कर लेते हैं, भले ही उसका वाग्दान हो भी गया हो। इसी प्रकार अन्य युवकों को भी वाञ्छित कन्या को सिद्ध कर लेना चाहिये॥ ३॥

अन्यामपि बाह्यां स्पृहयेत्॥ ४०॥

मामा की बेटी के अतिरिक्त जो कन्या अपने माता-पिता के गोत्र की न हो, उसे भी इसी प्रकार अनुरक्त करके गान्धर्वविवाह कर लेना चाहिये॥ ४॥

बालायामेवं सति धर्माधिगमे संवननं श्लाघ्यमिति घोटकमुखः॥ ५॥

यदि लड़की से बाल्यकाल से ही सच्चा प्रेम है, तो उसे वश में कर लेना—विवाह कर लेना (श्लाघनीय ही है) ऐसा आचार्य घोटकमुख का मत है॥ ५॥

तया सह पुष्पावचयं ग्रथनं गृहकं दुहितृकाक्रीडायोजनं भक्तपानकरणमिति कुर्वीत। परिचयस्य वयसश्चानुरूप्यात्॥ ६॥

बालक के प्रयास—वाञ्छित कन्या के साथ फूल चुनना, फूलों की मालाएँ बनाना, मिट्टी के घरौंदे बनाना, गुड़ियों का खेल खेलना, भात बनाना, पेयपदार्थ तैयार करना—ये खेल अपने परिचय और अवस्था के अनुरूप खेले॥ ६॥

आकर्षक्रीडा पट्टिकाक्रीडा मुष्टिद्यूतक्षुल्लकादिद्यूतानि मध्यमाङ्गुलिग्रहणं षट्पाषाणकादीनि च देश्यानि तत्सात्म्यात् तदाप्तदासचेटिकाभिस्तया च सहानुक्रीडेत॥ ७॥

रस्सा खींचना, दोनों हाँथों की अंगुलयों को एक-दूसरे में फँसाकर चक्कर लगाते हुए खेलना, मुट्ठी में कोई वस्तु रखकर पूछना कि बता—इसमें क्या है? बीच की अंगुलि को अन्य अंगुलियों में छिपाकर पकड़वाना और गोटी खेलना—बाल्यकाल में इस देश्य खेलों को भी वाञ्छित कन्या के साथ खेलना चाहिये॥ ७॥

क्ष्वेडितकानि, सुनिमीलितकामारब्धिकां लवणवीथिकामनिलताडितकां गोधूमपुञ्जिकामङ्गुलिताडितकाम् सखीभिरन्यानि च देश्यानि॥ ८॥

आँखमिचौनी, कृष्णफलक्रीड़ा, लवणवीथिका, अनिलताडितका, गोधूमपञ्जिका, अंगुलिताड़ितका तथा अपने अपने प्रदेश में प्रचलित खेलों को वाञ्छित कन्या के साथ खेलना चाहिये॥ ८॥

यां च विश्वास्यामस्यां मन्येत तया सह निरन्तरां प्रीतिं कुर्यात्। परिचयाँश्च बुध्येत्॥ ९॥

युवक के प्रयास—जिस कन्या से युवक प्रेम करना चाहता हो, उसकी विश्वस्त सखी से निरन्तर प्रेम और परिचय बढ़ाता रहे॥ ९॥

धात्रेयिकां चास्याः प्रियहिताभ्यामधिकमुपगृह्णीयात्। सा हि प्रीयमाणा विदिताकाराप्यप्रत्यादिशन्ती तं तां च योजयितुं शक्नुयात्। अनभिहितापि प्रत्याचार्यकम्॥ १०॥

सखी को वशवर्ती बनाने का लाभ—नायिका की धाय की पुत्री या सखी को प्रिय और हितकर बातों से अपने वशीभूत कर लेना चाहिये, क्योंकि वशीभूत हो जाने पर वह दोनों के मनोभावों को जानकर, किसी से कहे विना ही मिला देगी, मिलाने में तो वह आचार्य ही होती है॥ १०॥

अविदिताकारापि हि गुणानेवानुरागात् प्रकाशयेत्। यथा प्रयोज्यानुरज्येत॥ ११॥

सखी का कार्य—नायिका के मनोभावों को विना जाने ही वह नायक के अनुराग से उसके गुणों को इस प्रकार प्रकाशित करे कि नायिका उस पर अनुरक्त हो जाये॥ ११॥

यत्र यत्र च कौतुकं प्रयोज्यायास्तदनु प्रविश्य साधयेत्॥ १२॥

नायक के कार्य—नायिका की जिस जिस वस्तु की कामना हो, नायक उसे समझकर उसे वह वस्तु प्राप्त करा दे॥ १२॥

क्रीडनकद्रव्याणि यान्यपूर्वाणि यान्यन्यासां विरलशो विद्येरँस्तान्यस्या अयत्नेन सम्पादयेत्॥ १३॥

जो अन्य सखियों के पास कम ही दिखते हों, ऐसे बहुमूल्य और दुर्लभ खिलौने नायिका को सहजतापूर्वक लाकर दे॥ १३॥

तत्र कन्दुकमनेकभक्तिचित्रमल्पकालान्तरितमन्यदन्यच्च सन्दर्शयेत्। तथा सूत्रदारुगवलगजदन्तमयीर्दुहितृका मधूच्छिष्टपिष्टमृन्मयीश्च॥ १४॥

खिलौने—नायक को चाहिये कि नायिका को ऐसी गेंद दिखाये जिसमें भिन्न भिन्न रंगों की फाँके बनी हों, उनमें सुन्दर सुन्दर चित्र अङ्कित हों और जो लुढ़कने पर थोड़े थोड़े समय बाद रङ्ग बदलती जायें। अन्य दूसरे प्रकार की गेदें भी दिखाये। धागा, लकड़ी, सींग, हाथीदाँत, मोम, मैदा और मिट्टी से बनी भिन्न भिन्न प्रकार की पुतलियाँ और गुड़िया दिखाये॥ १४॥

भक्तपाकार्थमस्या महानसिकस्य च दर्शनम्॥ १५॥

भात (भोजन) बनाने के लिये पाककला सिखानी चाहिये॥ १५॥

काष्ठमेढ्रकयोश्च संयुक्तयोश्च स्त्रीपुंसयोरजैडकानां देवकुलगृहकाणां मृद्विदल-काष्ठविनिर्मितानां शुकपरभृतमदनसारिकालावकुक्कुटतित्तिरिपञ्जरकाणां च विचित्राकृतिसंयुक्तानां जलभाजनानां च यन्त्रिकाणां वीणिकानां पटोलिकानामलक्तकमनःशिलाहरितालहिङ्गुलकश्यामवर्णकादीनां तथा चन्दनकुङ्कुमयोः पूगफलानां पत्राणां कालयुक्तानां च शक्तिविषये प्रच्छन्नं दानं प्रकाशद्रव्याणां च प्रकाशम्। यता च सर्वाभिप्रायसंवर्धकमेनं मन्येत तथा प्रयतितव्यम्॥ १६॥

एक ही लकड़ी पर बने स्त्री-पुरुष, बकरा-बकरी, गाय-बैल आदि के युगल, मिट्टी, बाँस और लकड़ी से निर्मित देवमन्दिर, पिंजड़ों में स्थित तोता, कोयल, मैना, सारिका, लवा, मुर्गा (कुक्कुट), तीतर आदि पक्षी, विचित्र आकृति वाले शङ्ख, सीपियाँ, कौड़ी आदि से निर्मित पानी के बर्तन, वीणा, प्रसाधन की सामग्री, पटोलिका, महावर, मनःशिला, हरिताल, हिंगुल,

काला रङ्ग आदि, चन्दन, कुंकुम, सुपारी, पान आदि वस्तुएँ समय और शक्ति के अनुरूप, अवसर देखकर, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अपनी प्रेमिका को देता रहे। इन पदार्थों को जिस प्रकार भी सम्पूर्ण अभिप्रायों को बढ़ाने वाला समझे, उसी प्रकार उन्हें देने का प्रयास करना चाहिये॥ १६॥

वीक्षणे च प्रच्छन्नमर्थयेत् तथा कथायोजनम्॥ १७॥

उपहारदान का प्रयोजन—नायिका से प्रच्छन्न रूप से मिलने का अनुरोध करे और ऐसी ही कथावार्ताएँ सुनाये जिससे उसका अनुराग बढ़े॥ १७॥

प्रच्छन्नदानस्य तु कारणमात्मनो गुरुजनाद्भयं ख्यापयेत्। देयस्य चान्येन स्पृहणीयत्वमिति॥ १८॥

यदि नायिका प्रच्छन्न रूप से वस्तुएँ देने का कारण पूछे तो अपने गुरुजन का भय बताये अथवा कहे कि दी जाने वाली वस्तु को अन्य व्यक्ति भी चाहते हैं॥ १८॥

वर्धमानानुरागं चाख्यानके मनः कुर्वतीमन्वर्थाभिः कथाभिश्चित्तहारिणीभिश्च रञ्जयेत्॥ १९॥

बढ़ते हुए अनुराग के समय यदि नायिका कथा सुनने में रुचि प्रदर्शित करे, तो नायक को अवसरानुकूल मनोहर कथाओं से उसका मनोरञ्जन करना चाहिये॥ १९॥

विस्मयेषु प्रसह्यमानामिन्द्रजालैः प्रयोगैर्विस्मापयेत्। कलासु कौतुकिनीं तत्कौशलेन गीतप्रियां श्रुतिहरैर्गीतैः। आश्वयुज्यामष्टमीचन्द्रके कौमुद्यामुत्सवेषु यात्रायां ग्रहणे गृहाचारे वा विचित्रैरापीडैः कर्णपत्रभङ्गैः सिक्थकप्रधानैर्वस्त्रा-ङ्गुलीयकभूषणदानैश्च। नो चेद्दोषकराणि मन्येत॥ २०॥

कौतुकप्रदर्शन—यदि नायिका की कौतुक देखने में रुचि हो, तो उसे इन्द्रजाल (जाल) के खेल दिखाकर आश्चर्यचकित कर दे। यदि कलाओं का कौशल देखना चाहती हो तो कलाकौशल दिखाकर प्रसन्न करे। कोजागरीव्रत, बहुला अष्टमी, कौमुदी पर्व आदि उत्सवों के दिन,देवयात्रा और ग्रहण के दिन घर आने पर विचित्र प्रकार के आपीड़, कर्णपत्रभङ्ग, मोम, वस्त्र, अंगूठी, आभूषण आदि देकर उसे प्रसन्न करे, किन्तु ये वस्त्राभूषण तभी दे, जब इन्हें देने से किसी प्रकार का दोष (कलह, अपयश आदि) न देखे॥ २०॥

अन्यपुरुषविशेषाभिज्ञतया धात्रेयिकास्याः पुरुषप्रवृत्तौ चातुःषष्टिकान् योगान् ग्राहयेत्॥ २१॥

धाय की पुत्री या सखी नायक की प्रशंसा करते हुए कहे कि यह कामकला में निपुण हैं, और उसे नायक से मिलवाकर कामकला के चौंसठ योगों को सिखवाये॥ २१॥

तद्ग्रहणोपदेशेन च प्रयोज्यायां रतिकौशलमात्मनः प्रकाशयेत् ॥ २२॥

रतिकौशल का प्रकटीकरण—सखी द्वारा प्रशंसा किये जाने पर नायक को चाहिये कि उनके उपदेश से नायिका पर अपना रतिकौशल प्रकट करे॥ २२॥

उदारवेषश्च स्वयमनुपहतदर्शनश्च स्यात्। भावं च कुर्वतीमिङ्गिताकारैः सूचयेत्॥ २३॥

नायक का वेश और कार्य—नायिका के समक्ष नायक को भव्य वेशभूषा में ही रहना चाहिये और सदैव उसकी दृष्टि में पड़ते रहना चाहिये। यह मुझ से प्रेम करती है या नहीं—इस बात को सङ्केत और चेष्टाओं से समझ लेना चाहिये॥ २३॥

युवतयो हि संसृष्टमभीक्ष्णदर्शनं च पुरुषं प्रथमं कामयन्ते। कामयमाना अपि तु नाभियुञ्जत इति प्रायोवादः। इति बालायामुपक्रमाः॥ २४॥

भव्य वेशभूषा का कारण—यह निश्चित बात है कि अधिकाशं युवतियाँ अपने परिचित और सदैव दिखने वाले पुरुषों को चाहती हैं, और चाहती हुई भी लज्जावश उनसे समागम नहीं करता इस प्रकार बाला के उपक्रम पूर्ण हुए॥ २४॥

तानिङ्गिताकारान् वक्ष्यामः॥ २५॥

युवक द्वारा कन्या-प्राप्ति के प्रयासों में कहा गया है—'यह मुझसे प्रेम करती है या नहीं, इस बात को सङ्केत और चेष्टाओं से समझना चाहिये।' इसलिए अब सङ्केत और चेष्टाओं को बताते हैं। शास्त्रकार वात्स्यायन इसके निर्देश के लिए सूत्र देते हैं—

इङ्गिताकारसूचन प्रकरण—अब संकेत और चेष्टाओं को कहेंगे॥ २५॥

सम्मुखं तं तु न वीक्षते। वीक्षिता व्रीडां दर्शयति। रुच्यमात्मानोऽङ्गमपदेशेन प्रकाशयति। प्रमत्तं प्रच्छन्नं नायकमतिक्रान्तं च वीक्षते॥ २६॥

देखने की रीति—अधिकांशतः युवतियाँ सम्मुख खड़े नायक को नहीं देखतीं। नायक द्वारा देखे जाने पर लज्जा से मुख नीचा कर लेती है। अपने स्तन आदि मनोहर अंगों को किसी बहाने से दिखाती हैं। यदि नायक उनकी ओर उन्मुख न हो, असावधान हो या दूर हो, तो जी भरकर देखती हैं॥ २६॥

पृष्टा च किञ्चित् सस्मितमव्यक्ताक्षरमनवसितार्थं च मन्दमन्दमधोमुखी कथयति। तत्समीपे चिरं स्थानमभिनन्दति। दूरे स्थिता पश्यतु मामिति मन्यमाना परिजनं सवदनविकारमाभाषते। तं देशं न मुञ्चति॥ २७॥

बोलने की रीति—अधिकांशतः युवतियाँ नायक द्वारा कुछ पूछे जाने पर मन्द मन्द मुस्काते हुए एवं मुख नीचा करके अस्पष्ट भाषा में ऐसा उत्तर देती हैं जिसका अर्थ शीघ्र ही समझ में न आये। नायक के पास देर तक ठहरना पसन्द करती हैं। दूर खड़ी 'यह मुझ देखे' ऐसा मानती हुई, अपने परिजनों के साथ मुख बनाकर बोलती हैं और उस स्थान को नहीं छोड़तीं॥ २७॥

यत्किञ्चिद् दृष्ट्वा विहसितं करोति। तत्र कथामवस्थानार्थमनुबध्नाति। बालस्याङ्कगतस्यालिङ्गनं चुम्बनं च करोति। परिचारिकायास्तिलकं च रचयति। परिजनानवष्टभ्य तास्ताश्च लीला दर्शयति॥ २८॥

भावप्रेरित चेष्टाएँ—जहाँ नायक खड़ा हो, वहाँ कुछ भी देखकर हँसती रहती हैं। वहाँ खड़े रहने के लिये बातें प्रारम्भ कर देती हैं। गोद में स्थित बालक का आलिङ्गन और चुम्बन करने लगती हैं। परिचारिका से अपना तिलक ठीक कराती हैं तथा परिजनों सहारा लेकर भावप्रेरित चेष्टाएँ दिखाने लगती हैं॥ २८॥

तन्मित्रेषु विश्वसिति। वचनं चैषां बहु मन्यते करोति च। तत्परिचारकैः सह प्रीतिं सङ्कथां द्यूतमिति च करोति। स्वकर्मसु च प्रभविष्णुरिवैतान्नियुङ्क्ते। तेषु च नायकसङ्कथामन्यस्य कथयत्स्ववहिता तां शृणोति॥ २९॥

नायक के सहचरों एवं अनुचरों के साथ व्यवहार—नायक के मित्रों पर विश्वास करती है। उनकी बातों का समादर करती है और तदनुकूल ही व्यवहार करती है। उसके नौकरों के साथ प्रीतिपूर्ण वार्तालाप करती है और उनके साथ ताश, शतरंज आदि खेलती है। उसके नौकरों को स्वामी के समान आदेश देती है। यदि वे नायकविषयक बातें करते हैं तो उन्हें एकाग्रचित्त होकर सुनती है॥ २९॥

धात्रेयिकया चोदिता नायकस्योदवसितं प्रविशति। तामन्तरा कृत्वा तेन सह द्यूतं क्रीडामालापं चायोजयितुमिच्छति। अनलङ्कृता दर्शनपथं परिहरति। कर्णपत्रमङ्गुलीयकं स्रजं वा तेन याचिता सधीरमेव गात्रादवतार्य सख्या हस्ते ददाति। तेन च दत्तं नित्यं धारयति। अन्यवरसङ्कथासु विषण्णा भवति। तत्पक्षकैश्च सह न संसृज्यत इति॥ ३०॥

नायक से सम्पर्क की वाञ्छा—धाय की पुत्री या सखी कहने पर नायक के घर चली जाती है। उस सखी को माध्यम बनाकर नायक के साथ द्यूत, खेल, वार्तालाप आदि करना चाहती है। नायक के सामने विना शृंगार किये नहीं आती। यदि वह कर्णफूल, अँगूठी या माला माँगता है, तो गम्भीरतापूर्वक शरीर से उतारकर सखी के हाथ पर रख देती है। नायक द्वारा दी गयी अँगूठी, माला आदि वस्तुओं को नित्य धारण करती है। दूसरे नायकों की कथा से विमुख हो जाती है और उनके पक्ष वालों के साथ संसर्ग नहीं करती॥ ३०॥

भवतश्चात्र श्लोकौ—

दृष्ट्वैतान् भावसंयुक्तानाकारानिङ्गितानि च।
कन्यायाः सम्प्रयोगार्थं ताँस्तान् योगान्विचिन्तयेत्॥ ३१॥

उपसंहार—इस प्रकार कन्या के भावसंयुक्त सङ्केतों और चेष्टाओं को देखकर ही, उसके साथ समागम के लिये समुचित उपायों को प्रयोग में लाना चाहिये॥ ३१॥

बालक्रीडनकैर्बाला कलाभिर्यौवने स्थिता।
वत्सला चापि संग्राह्या विश्वास्यजनसंग्रहात्॥ ३२॥

बाला नायिकाओं को बालक्रीड़ा से, तरुणी को कामकलाओं से और प्रौढ़ा को उसकी विश्वस्त सखियों से सम्पर्क करके वश में किया जा सकता है॥ ३२॥

बालोपक्रम एवं इंगिताकारसूचन नामक तृतीय अध्याय सम्पन्न॥

●

चतुर्थ अध्याय

एकपुरुषाभियोगादि प्रकरण

दर्शितेङ्गिकारां कन्यामुपायैरभियुञ्जीत॥ १॥

उपाय—कन्या के भावों और चेष्टाओं को अपने अनुकूल देखकर उसे उपायों से प्राप्त करना चाहिये॥ १॥

द्यूते क्रीडनकेषु च विवदमानः साकारमस्याः पाणिमवलम्बेत॥ २॥

साधिकार करग्रहण—शतरंज, द्यूत (ताश आदि) तथा अन्य खेलों में विवाद करता हुआ नायक, नायिका का हाथ साधिकार पकड़ ले॥ २॥

यथोक्तं च स्पृष्टकादिकमालिङ्गनविधिं विदध्यात्॥ ३॥

आलिङ्गन—स्पृष्टक, विद्धक, उद्धृष्टक और पीड़ितक—इन आलिङ्गन-प्रकारों का अवसर के अनुरूप विधिपूर्वक उपयोग करे॥ ३॥

पत्रच्छेद्यक्रियायां च स्वाभिप्रायसूचकं मिथुनमस्या दर्शयेत्॥ ४॥

पत्रच्छेद्य से अभिप्रायज्ञापन—पत्रच्छेद्य क्रिया में अपने अभिप्राय को ज्ञापित करने वाला हंसमिथुन आदि बनाकर नायिका को दिखाये॥ ४॥

एवमन्यद् विरलशो दर्शयेत्॥ ५॥

मिथुनदर्शन—कभी-कभी मिथुन (युगल) चित्र भी दिखाने चाहिये॥ ५॥

जलक्रीडायां तद्दूरतोऽप्सु निमग्नः समीपमस्या गत्वा स्पृष्ट्वा चैनां तत्रैवोन्मज्जेत्॥ ६॥

जलक्रीड़ा में अभिप्रायज्ञापन—जलक्रीड़ा में नायिका से दूर पानी में डुबकी लगाकर, उसके समीप पहुँचकर और उसे छूकर ही पानी से बाहर निकले॥ ६॥

नवपत्रिकादिषु च सविशेषभावनिवेदनम्॥ ७॥

नवपत्रिका में अभिप्रायज्ञापन—नवपत्रिका आदि देश्य खेलों में अपने अभिप्राय का निवेदन करना चाहिये॥ ७॥

आत्मदुःखस्यानिर्वेदेन कथनम्॥ ८॥

दुःखनिवेदन—अपने दुःख को, विना किसी वेदना के कहना चाहिये॥ ८॥

स्वप्नस्य च भावयुक्तस्यान्यापदेशेन॥ ९॥

स्वप्नकथन—किसी बहाने से भावयुक्त स्वप्न की बातें कहनी चाहिये॥ ९॥

प्रेक्षणके स्वजनसमाजे वा समीपोपवेशनम्। तत्रान्यापदिष्टं स्पर्शनम्॥ १०॥

बहाने से अङ्गस्पर्श—खेल आदि देखते समय या स्वजनगोष्ठी में नायक, नायिका के पास ही बैठे और किसी बहाने से उसका अङ्गस्पर्श करे॥ १०॥

अपाश्रयार्थं च चरणेन चरणस्य पीडनम्॥ ११॥

चरणपीड़न—उसके अङ्गों पर अपना अङ्ग रखने के लिये, उसके पैर को अपने पैर से दबाये॥ ११॥

ततः शनकैरेकैकामङ्गुलिमभिस्पृशेत्॥ १२॥

अंगुलिकस्पर्श—तत्पश्चात् धीरे धीरे एक एक अंगुलि का स्पर्श करे॥ १२॥

पादाङ्गुष्ठेन च नखाग्राणि घट्टयेत्॥ १३॥

अपने पैर के अँगूठे से उसके पैर के नखों को हिलाये॥ १३॥

तत्र सिद्धः पदात् पदमधिकमाकाङ्क्षेत्॥ १४॥

यदि बैठे बैठे यह कार्य करने में सफल हो जाये अर्थात् नायिका यह सह ले, तो अपने पैर से उसके पैर के ऊपरी भाग को दबाये॥ १४॥

क्षान्त्यर्थं च तदेवाभ्यसेत्॥ १५॥

अङ्गस्पर्श और सङ्घर्षण को सहन कराने के लिये इन कार्यों को बार बार करना चाहिये॥ १५॥

पादशौचे पादाङ्गुलिसन्दंशेन तदङ्गुलिपीडनम्॥ १६॥

आन्तरिक-बाह्य स्पर्श—पैर की अंगुलियों का स्पर्श करा लेने के पश्चात्, अपने पैर की अंगुलियों में उसके पैर की अंगुलि फँसाकर दबाये॥ १६॥

द्रव्यस्य समर्पणे प्रतिग्रहे वा तद्गतो विकारः॥ १७॥

अभिज्ञान—उसे दी जाने वाली या उससे प्राप्त होने वाली वस्तुओं पर नखक्षत आदि के चिह्न अङ्कित कर दे॥ १७॥

आचमनान्ते चोदकेनासेकः॥ १८॥

प्रेमपूर्ण छेड़छाड़—आचमन के अन्त में शेष बचा थोड़ा सा जल उस पर छिड़क दे॥ १८॥

विजने तमसि च द्वन्द्वमासीनः क्षान्तिं कुर्वीत। समानदेशशय्यायां च॥ १९॥

यदि एकान्त और अन्धकार में परस्पर सटकर बैठे हुए हों, तो धीरे धीरे उसे नोचता रहे, उसके अङ्गों को दबाता रहे। यदि एक ही शैय्या पर बैठे या लेटे हुए हों, तब भी ऐसा ही करे, किन्तु यह कार्य सहनशीलता की सीमा में ही होना चाहिये॥ १९॥

तत्र यथार्थमनुद्वेजयतो भावनिवेदनम्॥ २०॥

भावनिवेदन—एकान्त या अन्धकार में नायिका को उद्विग्न किये विना ही सङ्केतों से अपने भावों का निवेदन करे॥ २०॥

विविक्ते च किञ्चिदस्ति कथयितव्यमित्युक्त्वा निर्वचनं भावं च तत्रोपलक्षयेत्। यथा पारदारिके वक्ष्यामः॥ २१॥

एकान्त में नायक, नायिका से इतना ही कहे—'मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।' 'क्या कहना है?' नायिका के यह कहने पर अपनी बात युक्तिपूर्वक कहे और यह निरीक्षण करता रहे कि उस पर क्या प्रभाव हो रहा है। भावपरीक्षण की रीति आगे पारदारिक अधिकारों में विस्तार से कहेंगे॥ २१॥

विदितभावस्तु व्याधिमपदिश्यैनां वार्ताग्रहणार्थं स्वमुदवसितमानयेत्॥ २२॥

गृह-आमन्त्रण—नायिका को इच्छुक जान लेने के पश्चात् सिरदर्द आदि का बहाना करके वार्तालाप के लिये उसे अपने घर पर बुलवाये॥ २२॥

आगतायाश्च शिरःपीडने नियोगः। पाणिमवलम्ब्य चास्याः साकारं नयनयोर्ललाटे च निदध्यात्॥ २३॥

आयी हुई नायिका को सिर दबाने में लगा दे। उसका हाथ अपने हाथों में पकड़कर अपने मस्तक और नेत्रों से लगाये॥ २३॥

औषधापदेशार्थं चास्याः कर्म विनिर्दिशेत्॥ २४॥

जब सिर दबा दे, तो दर्द-निवारक औषधि लगाने के लिये कहे॥ २४॥

इदं त्वया कर्तव्यम्। नह्येतदृते कन्याया अन्येन कार्यमिति गच्छन्ती पुनरागमनानुबन्धमेनां विसृजेत्॥ २५॥

यह कार्य तुम्हें ही करना है, क्योंकि इसे कुमारिका के अतिरिक्त किसी अन्य से नहीं कराया जाता। यदि वह जाने लगे तो पुनः आने का वचन लेकर ही जाने दे॥ २५॥

अस्य च योगस्य त्रिरात्रं त्रिसन्ध्यं च प्रयुक्तिः॥ २६॥

कन्यासाध्य इस योग को तीन बार रात्रि या सन्ध्या के समय ही प्रयोग करना चाहिये॥ २६॥

अभीक्ष्णदर्शनार्थमागतायाश्च गोष्ठीं वर्धयेत्॥ २७॥

इस प्रपञ्च का उद्देश्य—बार बार देखने के लिये आयी हुई नायिका के साथ रोचक वार्ताएँ करनी चाहिये॥ २७॥

अन्याभिरपि सह विश्वासनार्थमधिकमधिकं चाभियुञ्जीत। न तु वाचा निर्वदेत्॥ २८॥

नायिका को विश्वास दिलाने के लिये अन्यान्य वार्ताएँ करता रहे, किन्तु अपने मुख से उद्देश्य स्पष्ट न करे॥ २८॥

दूरगतभावोऽपि हि कन्यासु न निर्वेदेन सिध्यतीति घोटकमुखः॥ २९॥

युवतियों का प्रेम और विश्वास कितना भी ऊँचा पहुँच जाये, किन्तु विरक्ति से उनकी सिद्धि नहीं होती, अतएव उनकी प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिये—यह आचार्य घोटकमुख का मत है॥ २९॥

यदा तु बहुसिद्धां मन्येत तदैवोपक्रमेत्॥ ३०॥

जब अनेक उपायों द्वारा नायिका को सिद्ध समझ ले, तभी उसके साथ सम्भोग के लिये तत्पर होना चाहिये॥ ३०॥

प्रदोषे निशि तमसि च योषितो मन्दसाध्वसाः सुरतव्यवसायिन्यो रागवत्यश्च भवन्ति। न च पुरुषं प्रत्याचक्षते। तस्मात्तत्कालं प्रयोजयितव्या इति प्रायोवादः॥ ३१॥

समागमकाल—प्रदोष काल में, रात्रि में और अन्धकार में स्त्रियों में भय कम रहता है,

उनका अनुराग बढ़ता है और वे सम्भोग की अभिलाषा करती हैं। ऐसे समय वे पुरुष के प्रस्ताव को मना नहीं कर पातीं। अतएव ऐसे ही समय नायिका को सम्भोग के लिये तैयार करना चाहिये॥ ३१॥

एकपुरुषाभियोगानां त्वसम्भवे गृहीतार्थया धात्रेयिकया सख्या वा तस्यामन्तर्भूतया तमर्थमनिर्वदन्त्या सहैनामङ्कमानाययेत्। ततो यथोक्तमभि-युञ्जीत॥ ३२॥

नायिका से दूर रहने के कारण यदि अकेले अभियोग सम्भव न हो, तो उसकी धाय की पुत्री या सखी को, जो इस प्रेम-प्रसङ्ग से परिचित हो, माध्यम बना ले, और वह नायिका को बिना बताये ही, नायक के घर ले आये। तत्पश्चात् पूर्वोक्त विधि से सम्भोग करना चाहिये॥ ३२॥

स्वां वा परिचारिकामादावेव सखीत्वेनास्याः प्रणिदध्यात्॥ ३३॥

अथवा अपनी परिचारिको की उसकी सखी बनाकर पहले से ही उसके पास छोड़ दे॥ ३३॥

यज्ञे विवाहे यात्रायामुत्सवे व्यसने प्रेक्षणक्षकव्यापृते जने तत्र तत्र च दृष्टेङ्गिताकारां परीक्षितभावामेकाकिनीमुपक्रमेत॥ ३४॥

यज्ञ, विवाह, यात्रा, उत्सव और विपत्ति के समय सभी व्यक्ति व्यग्र (व्यस्त) हो जाते हैं। ऐसे अवसर पर जिस युवती ने हाव-भाव और चेष्टाओं से अनुकूलता दिखा दी हो, और जिसके भावों की परीक्षा कर ली गयी हो, उसे गान्धर्व विधि से प्राप्त कर ले॥ ३४॥

न हि दृष्टभावा योषितो देशे काले च प्रयुज्यमाना व्यावर्तन्त इति वात्स्यायनः। इत्येकपुरुषाभियोगाः॥ ३५॥

जिनके भावों की अनेक बार परीक्षा की जा चुकी हो, ऐसी युवतियाँ देश और काल के अनुरूप प्रयोग की जायें, तो वे कदापि मना नहीं करतीं—यह महर्षि वात्स्यायन का अभिमत है॥ ३५॥

एकपुरुषाभियोग नामक प्रकरण पूर्ण॥

मन्दापदेशा गुणवत्यपि कन्या धनहीना कुलीनापि समानैरयाच्यमाना मातापितृवियुक्ता वा ज्ञातिकुलवर्तिनी वा प्राप्तयौवना पाणिग्रहणं स्वयम-भीप्सेत॥ ३६॥

प्रयोज्योपावर्तन प्रकरण : विवाह न हो पाने के कारण—हीन कुल में उत्पन्न हुई हो या गुण सम्पन्न होने पर उसके अभिभावक विवाह न कर रहे हो, अथवा कुलीन होने पर भी निर्धनता के कारण समानता वाले विवाह न कर रहे हों, अथवा आभिजात्य कुल में उत्पन्न होने पर भी माता पिता से रहित हो, जाति और कुल के उच्च होने पर भी यौवन आने पर ऐसी कन्या को स्वयं विवाह कर लेना चाहिये॥ ३६॥

सा तु गुणवन्तं शक्तं सुदर्शनं बालप्रीत्याभियोजयेत्॥ ३७॥

समान पति चुनने के उपाय—ऐसी युवती किसी ऐसे गुणवान्, शक्तिशाली और सुन्दर युवक से विवाह करे जो बालसखा हो॥ ३७॥

यं वा मन्येत मातापित्रोरसमीक्षया स्वयमप्ययमिन्द्रियदौर्बल्यान्मयि प्रवर्तिष्यत इति प्रियहितोपचारैरभीक्षणसंदर्शनेन च तमावर्जयेत्॥ ३८॥

वर में दर्शनीय गुण—ऐसी युवती जिसको यह समझे कि यह माता-पिता की समीक्षा (आलोचना) की चिन्ता किये विना, अपने इन्द्रिय-दौर्बल्य के कारण स्वयं ही मुझसे अनुरक्त हो जायेगा, उसे प्रिय और हितकर उपचारों से और हाव-भावों से अपनी ओर आकृष्ट करे॥ ३८॥

माता चैनां सखीभिर्धात्रेयिकाभिश्च सह तदभिमुखीं कुर्यात्॥ ३९॥

माता का कर्तव्य—माता को चाहिये कि वह युवती की धाय की पुत्री या सखियों के साथ उसको उस युवक की ओर अग्रसर करे॥ ३९॥

पुष्पगन्धताम्बूलहस्ताया विजने विकाले च तदुपस्थानम्. कलाकौंशल-प्रकाशने वा सम्वाहने शिरसः पीडने चौचित्यदर्शनम्। प्रयोज्यस्य सात्म्ययुक्ताः कथायोगाः बालायामुपक्रमेषु यथोक्तमाचरेत्॥ ४०॥

बाह्य उपचार—युवती को चाहिये कि एकान्त और कुसमय (रागोद्दीपन या रात्रिकाल) में पुष्प, गन्ध, ताम्बूल आदि से नायक का सत्कार करे। औचित्यपूर्वक कलाकौशल, अङ्गमर्दन या शिर दबाने की अपनी कुशलता प्रकटित करे। नायक की रुचि के अनुरूप वार्तालाप करे और बालोपक्रम प्रकरण (तृतीय अधिकरण, तृतीय अध्याय) में नायक के जो उपाय बताये गये हैं, उन्हें भी प्रयोग में लाये॥ ४०॥

न चैवान्तरापि पुरुषं स्वयमभियुञ्जीत। स्वयमभियोगिनी हि युवतिः सौभाग्यं जहातीत्याचार्याः॥ ४१॥

सम्भोग के लिए पहल घातक—अत्यधिक कामातुर होने पर भी सम्भोग के लिये स्वयं पहल न करे, क्योंकि सम्भोग के लिये स्वयं ही अभियोग करने वाली युवती अपना सौभाग्य नष्ट कर देती है—ऐसा कामशास्त्र के आचार्यों का मत है॥ ४१॥

तत्प्रयुक्तानां त्वभियोगानामानुलोम्येन प्रहणम्॥ ४२॥

नायक के प्रयासों को स्वीकृति—यदि नायक अभियोगों का प्रयोग करे, अर्थात् रमणेच्छा प्रकटित करे, तो उन्हें अनुकूलता से स्वीकार करे॥ ४२॥

परिष्वक्ता च न विकृतिं भजेत्। श्लक्ष्णमाकारमजानतीव प्रतिगृह्णीयात्। वदनग्रहणे बलात्कारः॥ ४३॥

आभ्यन्तर उपचार—नायक के आलिङ्गन-चुम्बन आदि करने पर अपना राग प्रकट न होने दे। नायक के स्निग्ध व्यवहार को मुग्धभाव वाला (अनजान) बनकर ही स्वीकार करे, और ऐसा व्यवहार करे कि नायक बलपूर्वक मुखचुम्बन कर ले॥ ४३॥

रतिभावनामभ्यर्थ्यमानायाः कृच्छ्राद् गुह्यसंस्पर्शनम्॥ ४४॥

यदि नायक शिश्न को स्पर्श करने के लिये प्रेरित करे, तो कठिनतापूर्वक उसका स्पर्शमात्र ही करे॥ ४४॥

अभ्यर्थितापि नातिविवृता स्वयं स्यात्। अन्यत्रानिश्चयकालात्॥ ४५॥

महत्त्वपूर्ण परामर्श—नायक के प्रार्थना करने पर भी नायिका को अपने भाव और अङ्ग

प्रत्यङ्गों को नहीं दिखाना चाहिये, क्योंकि वह कब और कैसे विवाह करेगा, यह अभी निश्चित नहीं है ॥ ४५ ॥

यदा तु मन्येतानुरक्तो मयि न व्यावर्तिष्यत इति, तदैवैनमभियुञ्जानं बालभावमोक्षाय त्वरेत् ॥ ४६ ॥

जब नायिका पूर्णतः आश्वस्त हो जाये कि नायक पूरे मनोयोग से मुझ पर अनुरक्त है और वह प्रत्येक स्थिति में मुझसे विवाह करेगा ही, तभी एकान्त में प्रयत्नशील नायक को अपना कौमार्य भङ्ग करने दे ॥ ४६ ॥

विमुक्तकन्याभावा च विश्वास्येषु प्रकाशयेत्। इति प्रयोज्यस्योपावर्तनम् ॥ ४७ ॥

गान्धर्व विवाह के पश्चात् जब नायिका अपना कौमार्य भंग करा ले, तो अपनी विश्वस्त सखियों से यह बता दे। इस प्रकार प्रयोज्य (नायक) को अपनी ओर आकृष्ट करने की विधि पूर्ण हुई ॥ ४७ ॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

कन्याभियुज्यमाना तु ये मन्येताश्रयं सुखम्।
अनुकूलं च वश्यं च तस्य कुर्यात्परिग्रहम् ॥ ४८ ॥

इस विषय में कुछ आनुवंश्य श्लोक दे रहे हैं—

सुखों का आश्रय, अनुकूल और वश्य—अपने उपायों से वर का चयन करती हुई कन्या, जिसे सुखों का आश्रय, चित्तवृत्ति के अनुकूल चलने वाला और यथोक्तकारी (कहने के अनुसार करने वाला) माने, उसी से विवाह करे ॥ ४८ ॥

अनपेक्ष्य गुणान् यत्र रूपमौचित्यमेव च।
कुर्वीत धनलोभेन पतिं सापत्नकेष्वपि ॥ ४९ ॥

अर्थलिप्सा—यदि युवती को अर्थलिप्सा हो, धन को ही वह सर्वस्व मानती हो तो रूप, औचित्य और नायकोचित गुणों की ओर ध्यान न देकर, सपत्नियों के होते हुए भी, धनवान् को ही अपना पति चुन ले ॥ ४९ ॥

तत्र युक्तगुणं वश्यं शक्तं बलवदर्थिनम्।
उपायैरभियुञ्जानं कन्या न प्रतिलोमयेत् ॥ ५० ॥

विशेष महत्त्वपूर्ण—जो युवक गुण सम्पन्न हो, अपनी चित्तवृत्ति के अनुकूल हो, प्रत्येक प्रकार से समर्थ हो, प्रबल आकर्षण रखता हो, और प्राप्ति का उपाय भी कर रहा हो, ऐसे युवक को पतिरूप में पाने का लोभ कन्या को कदापि नहीं छोड़ना चाहिये ॥ ५० ॥

वरं वश्यो दरिद्रोऽपि निर्गुणोऽप्यात्मधारणः।
गुणैर्युक्तोऽपि न त्वेवं बहुसाधारणः पतिः ॥ ५१ ॥

एकनिष्ठ ही वरणीय—चित्तवृत्ति के अनुरूप चलने वाला पति अच्छा है, भले ही वह दरिद्र ही क्यों न हो, गुणविहीन हो, केवल परिवार का पेट पालने में समर्थ (निर्धन) हो, परन्तु अनेक सपत्नियों वाला, गुणसम्पन्न और धनवान् पति अच्छा नहीं ॥ ५१ ॥

प्रायेण धनिनां दारा बहवो निरवग्रहाः।
बाह्ये सत्युपभोगेऽपि निर्विस्रम्भा बहिःसुखाः॥ ५२॥

धनवान् की पत्नी बनने में दोष—धनवानों के घरों में प्राय: अनेक पत्नियाँ होती हैं, किन्तु वे प्राय: सभी स्वच्छन्द हुआ करती हैं; क्योंकि उन्हें भौतिक सुखों के साधन (भवन, वाहन, वस्त्राभूषण आदि) तो प्राप्त होते हैं, लेकिन सुरतरूप आन्तरिक सुख प्राप्त नहीं होता॥ ५२॥

नीचो यस्त्वभियुञ्जीत पुरुषः पलितोऽपि वा।
विदेशगतिशीलश्च न स संयोगमर्हति॥ ५३॥

नीच, वृद्ध और प्रवासी वरणीय नहीं—यदि नीच जाति या अधम स्वभाववाला व्यक्ति, वृद्ध व्यक्ति या निरन्तर प्रवास में रहने वाला व्यक्ति भी विवाह के लिये आमन्त्रित करे तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसे व्यक्ति ही सम्प्रयोग के योग्य नहीं होते॥ ५३॥

यदृच्छयाभियुक्तो यो दम्भद्यूताधिकोऽपि वा।
सपत्नीकश्च सापत्यो न स संयोगमर्हति॥ ५४॥

बलात्कारी, कपटी, जुआरी वरणीय नहीं—जो स्त्री की इच्छा न होने पर भी केवल अपनी इच्छा से सम्भोग करता है, जो कपटी और जुआरी है, और जो पत्नी और बच्चों वाला है, उससे कदापि विवाह नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा व्यक्ति सम्प्रयोग के योग्य नहीं होता॥ ५४॥

गुणसाम्येऽभियोक्तॄणामेको वरयिता वरः।
तत्राभियोक्तरि श्रैष्ठ्यमनुरागात्मको हि सः॥ ५५॥

अवरणीयों में अनुरागशील ही उत्तम—यदि कन्या को प्राप्त करने का प्रयास करने वाले कई व्यक्ति हों, तो कन्या उसी का वरण करे जो उससे सच्चा अनुराग रखता हो। प्रयास करने वालों में निश्छल अनुराग रखने वाला ही श्रेष्ठ होता है॥ ५५॥

एकपुरुषाभियोगादि प्रकरण नामक चतुर्थ अध्याय सम्पन्न॥

●

पञ्चम अध्याय
विवाहयोगप्रकरण

प्राचुर्येण कन्याया विविक्तदर्शनस्यालाभे धात्रेयिकां प्रियहिताभ्यामुपगृह्योपसर्पेत्॥ १॥

कन्यासिद्धि की विधि—यदि कन्या का एकान्त में अधिक दर्शन सम्भव न हो, तो धाय की पुत्री या उसकी सखी को प्रिय और हितकर कार्यों द्वारा उपकृत करके उसके समीप भेजे॥ १॥

सा चैनामविदिता नाम नायकस्य भूत्वा तद्गुणैरनुरञ्जयेत्। तस्याश्च रुच्यान्नायकगुणान् भूयिष्ठमुपवर्णयेत्॥ २॥

निसृष्टार्था दूती के कार्य—वह नायक से अपरिचित सी बनकर उस नायिका को नायक के गुणों पर अनुरक्त कर दे। इसके लिये वह नायक के उन्हीं गुणों का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करे जो नायिका को रुचिकर लगते हों॥ २॥

अन्येषां वरयितृणां दोषानभिप्रायविरुद्धान् प्रतिपादयेत्॥ ३॥

अन्य प्रतिद्वन्द्वियों में दोषदर्शन—अन्य नायकों (जिनमें लड़की की रुचि हो या जिनसे विवाहविषयक बातें चल रहीं हों) के उन दोषों को प्रकट करे, जिन्हें वह पसन्द न करती हो या जिनसे वह घृणा करती हो॥ ३॥

मातापित्रोश्च गुणानभिज्ञतां लुब्धतां च चपलतां च बान्धवानाम्॥ ४॥

अभिभावकों की भर्त्सना—दूती नायिका से कहे कि तुम्हारे माता-पिता और भाई-बन्धु गुणों को नहीं समझते, वे लोभी हैं, इसलिये गुणसम्पन्न वर को न खोजकर गुणविहीन धनवान् को चाहते हैं॥ ४॥

याश्चान्या अपि समानजातीयाः कन्याः शकुन्तलाद्याः स्वबुद्ध्या भर्तारं प्राप्य सम्प्रयुक्ता मोदन्ते स्म ताश्चास्या निदर्शयेत्॥ ५॥

स्वयंवरण के उदाहरण—अन्य सजातीय कन्याओं और शकुन्तला आदि, जो अपनी बुद्धि से वर चुनकर, सम्प्रयोग को प्राप्त होकर, आनन्दित रही थीं, की कहानियाँ सुनाये और उसे स्वयंवरण के लिये प्रेरित करे॥ ५॥

महाकुलेषु सापत्नकैर्बाध्यमाना विद्विष्टाः दुःखिताः परित्यक्ताश्च दृश्यन्ते॥ ६॥

नायिका को समझाये कि बड़े घरों में सपत्नियों द्वारा पीड़ित, विद्वेष का शिकार बनी, दुःखी और पतिपरित्यक्ता स्त्रियाँ भी देखी जाती हैं॥ ६॥

आयतिं चास्य वर्णयेत्॥ ७॥

नायक की प्रशंसा—दूती जिस नायक से उसका विवाह कराना चाहे, उसके उज्ज्वल और मङ्गलमय भविष्य का वर्णन करे॥ ७॥

सुखमनुपहतमेकचारितायां नायकानुरागं च वर्णयेत्॥ ८॥

उसका अक्षुण्ण सुख और नायक का एकचारिता (एकपत्नीव्रत) में अनुराग भी दिखाये॥ ८॥

समनोरथायाश्चास्या अपायं साध्वसं व्रीडां च हेतुभिरवच्छिन्द्यात्॥ ९॥

जब दूती यह देख ले कि नायिका उसकी ओर आकृष्ट हो रही है, तो समुचित हेतुओं से उसके भय और सङ्कोच को दूर कर दे॥ ९॥

दूतीकल्पं च सकलमाचरेत्॥ १०॥

उसे चाहिये कि दूती के समस्त कर्मों का प्रयोग करे॥ १०॥

त्वामजानतीमिव नायको बलाद् ग्रहीष्यतीति तथा सुपरिगृहीतं स्यादिति योजयेत्॥ ११॥

नायिका को बता दे कि नायक तुम्हें अपरिचित के समान हर ले जायेगा। इस प्रकार तुम उसकी पत्नी भी बन जाओगी और तुम्हें कोई दोष भी नहीं देगा—यह अन्त में योजना करे॥ ११॥

प्रतिपन्नामभिप्रेतावकाशवर्तिनीं नायकः श्रोत्रियागारादग्निमानाय्य कुशाना-स्तीर्य यथास्मृति हुत्वा च त्रिः परिक्रमेत्॥ १२॥

विधिवत् विवाह आवश्यक—दूती द्वारा बहकायी गयी और नायक द्वारा हरण कर ली गयी नायिका जब नायक के साथ निर्जन स्थान में पहुँच जाये, तो किसी अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर से अग्नि लाकर, स्मृतिशास्त्र (धर्मशास्त्र) के अनुसार हवन करके नायक और नायिका, दोनों अग्नि की तीन परिक्रमा करे॥ १२॥

ततो मातरि पितरि च प्रकाशयेत्॥ १३॥

तत्पश्चात् पति और पत्नी, दोनों अपने अपने अभिभावकों को विवाह की सूचना दे दें॥ १३॥

अग्निसाक्षिका हि विवाहा न निवर्तन्त इत्याचार्यसमयः॥ १४॥

अग्नि की साक्षी में किये गये विवाह अमान्य नहीं होते—ऐसा आचार्यों का संकेत हैं॥ १४॥

दूषयित्वा चैनां शनैः स्वजने प्रकाशयेत्॥ १५॥

गुप्तरूप से दूषित कर विवाह—वाञ्छित कन्या को दूषित कर धीरे से उसके परिवार वालों को बता देना चाहिये॥ १५॥

तद्बान्धवाश्च यथा कुलस्याघं परिहरन्तो दण्डभयाच्च तस्मा एवैनां दद्युस्तथा योजयेत्॥ १६॥

नायिका के बान्धव, जिस प्रकार, कुल के कलंक को दूर करते हुए और राजदण्ड से आतङ्कित होकर उसे नायक को दे दें, वैसी ही योजना करनी चाहिये॥ १६॥

अनन्तरं च प्रीत्युपग्रहेण रागेण तद्बान्धवान् प्रीणयेदिति॥ १७॥

इस प्रकार जब छलछद्म से कन्या नायक को पत्नीरूप में प्राप्त हो जाये, तो प्रेमपूर्ण अनुरोधों, उपहारों और उपकारों से कन्या के बन्धु-बान्धवों को प्रसन्न कर ले॥ १७॥

गान्धर्वेण विवाहेन वा चेष्टेत॥ १८॥

अथवा गान्धर्व विवाह की ही चेष्टा करे और इस नीच कर्म में प्रवृत्त ही न हो॥ १८॥

अप्रतिपद्यमानायामन्तश्चारिणीमन्यां कुलप्रमादं पूर्वसंसृष्टां प्रीयमाणां चोपगृह्य तया सह विषह्यमवकाशमेनामन्यकार्यापदेशेनानाययेत्॥ १९॥

मध्यस्थों के माध्यम से गुप्त विवाह—जो नायिका स्वयं पाणिग्रहण कराने में असमर्थ हो, तो दोनों (वर एवं कन्या) पक्षों से अन्तरङ्ग सम्बन्ध रखने वाली किसी कुलवधू को धन का

लोभ देकर और मध्यस्थ बनाकर, किसी बहाने से उसके साथ नायिका को निर्धारित स्थान पर बुलाये ॥ १९ ॥

ततः श्रोत्रियागारादग्निमिति समानं पूर्वेण ॥ २० ॥

तत्पश्चात् किसी वेदपाठी अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर से अग्नि मँगाकर पूर्वोक्त रीति से विवाह कर ले ॥ २० ॥

आसन्ने च विवाहे मातरमस्यास्तदभिमतदोषैरनुशयं ग्राहयेत् ॥ २१ ॥

माता की सहमति से गुप्त विवाह—यदि नायिका का सम्बन्ध कहीं निश्चित हो गया हो, तो विवाह-तिथि के निकट आने पर निश्चित वर के दुर्गुणों का वर्णन कर, कन्या की माता के मन मस्तिष्क को विकृत कर दे, और जब वह उस वर को अपनी पुत्री देने को मना कर दे, तो नायक की प्रशंसा करके उसके लिए तैयार कर ले ॥ २१ ॥

ततस्तदनुमतेन प्रातिवेश्याभवने निशि नायकमानाय्य श्रोत्रियागारादग्निमिति समानं पूर्वेण ॥ २२ ॥

इसके पश्चात् उसकी माता की अनुमति से, पड़ोसी के घर पर, रात्रि के समय नायक को बुलाकर और वेदपाठी अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर से अग्नि लाकर पूर्ववत् विवाह कर ले ॥ २२ ॥

भ्रातरमस्या वा समानवयसं वेश्यासु परस्त्रीषु वा प्रसक्तमसुकरेण साहाय्यदानेन प्रियोपग्रहैश्च सुदीर्घकालमनुरञ्जयेत्। अन्ते च स्वाभिप्रायं ग्राहयेत् ॥ २३ ॥

भाई की सहमति से विवाह—वेश्या या परस्त्री पर पूर्णतः आसक्त, समान अवस्था वाले कन्या के भाई को दुर्लभ सहायता और प्रिय उपहारों से दीर्घकाल तक आकृष्ट और अनुरक्त करे और अन्त में अपना अभिप्राय प्रकट कर दे ॥ २३ ॥

प्रायेण हि युवानः समानशीलव्यसनवयसां वयस्यानामर्थे जीवितमपि त्यजन्ति। ततस्तेनैवान्यकार्यात् तामानाययेत्। विषह्यं सावकाशमिति समानं पूर्वेण ॥ २४ ॥

यह सुनिश्चित तथ्य है कि प्रायः युवक समान शील, व्यसन और अवस्था वाले युवकों के लिए अपने प्राण तक न्यौछावर कर डालते हैं। अतएव भाई को ही माध्यम बनाकर किसी बहाने से नायिका को बुला ले और किसी निरापद स्थान पर पूर्ववत् अग्नि की साक्षी में विवाह कर ले ॥ २४ ॥

अष्टमीचन्द्रिकादिषु च धात्रेयिका मदनीयमेनां पाययित्वा किञ्चिदात्मनः कार्यमुद्दिश्य नायकस्य विषह्यं देशमानयेत्। तत्रैनां मदात् संज्ञामप्रतिपद्यमानां दूषयित्वेति समानं पूर्वेण ॥ २५ ॥

पैशाचविवाह—अष्टमी, चन्द्रिका आदि उत्सवों पर धाय की पुत्री या सखी नायिका को मदिरा आदि पिलाकर, अपने किसी कार्य के बहाने निरापद स्थान पर ले आये। वहाँ मदिरापान के कारण स्थिति न समझ पाने वाली नायिका को नायक से दूषित कराकर उसके बन्धु-बान्धवों से प्रकट कर दिया जाये ॥ २५ ॥

सुप्तां चैकचारिणीं धात्रेयिकां वारयित्वा संज्ञामप्रतिपद्यमानां दूषयित्वेति समानं पूर्वेण॥ २६॥

एकाकी को दूषित कर प्राप्त करना—सोती हुई, अकेली जाती हुई या सखी को अलग कर एकाकी बनायी हुई नायिका को चेतनाशून्य कर, तदुपरान्त सम्भोग द्वारा उसे दूषित कर, पूर्ववत् विवाह करना भी पैशाच विवाह है॥ २६॥

ग्रामान्तरमुद्यानं वा गच्छन्तीं विदित्वा सुसंभृतसहायो नायकस्तदा रक्षिणो वित्रास्य हत्वा वा कन्यामपहरेत्। इति विवाहयोगाः॥ २७॥

राक्षसविवाह—दूसरे गाँव या उद्यान को जाती हुई नायिका का पता लगाकर, अपने साथियों को साथ ले जाकर और उसके रक्षकों को डरा-धमकाकर या मारकर कन्या का हरण कर लेना राक्षस विवाह है। इस प्रकार ये **विवाहयोग पूर्ण** हुए॥ २७॥

पूर्वः पूर्वः प्रधानं स्याद् विवाहो धर्मतः स्थिते।
पूर्वाभावे ततः कार्यो यो य उत्तर उत्तरः॥ २८॥

उत्कृष्टता का विचार—यदि धर्म की दृष्टि से विचार किया जाये, तो पूर्व पूर्व विवाह श्रेष्ठ हैं, और पूर्व के अभाव में ही उत्तरोत्तर विवाह-प्रकारों को स्वीकार करना चाहिये॥ २८॥

व्यूढानां हि विवाहानामनुरागः फलं यतः।
मध्यमोऽपि हि सद्योगो गान्धर्वस्तेन पूजितः॥ २९॥

गान्धर्वविवाह की श्रेष्ठता—क्योंकि विवाह का उद्देश्य ही अनुराग प्राप्त करना है, अतएव मध्यम होते हुए भी गान्धर्वविवाह अच्छे योग वाला होने से पूज्य है॥ २९॥

सुखत्वादबहुक्लेशादपि चावरणादिह।
अनुरागात्मकत्वाच्च गान्धर्वः प्रवरो मतः॥ ३०॥

गान्धर्वविवाह सुख का हेतु, अल्प प्रयत्न वाला, वरणसंविधान के प्रपञ्चों से मुक्त और अनुरागात्मक होने से श्रेष्ठ माना जाता है॥ ३०॥

विवाहयोग प्रकरण नामक पञ्चम अध्याय सम्पन्न॥

४.

भार्याधिकारिक चतुर्थ अधिकरण

प्रथम अध्याय

एकचारिणीवृत्तप्रकरण

भार्यैकचारिणी गूढविश्रम्भा देववत् पतिमानुकूल्येन वर्तेत॥ १॥

एकचारिणी भार्या (पत्नी) को पति को अतिविश्वासपात्र बनकर और पति को देवता मानकर, उसकी चित्तवृत्ति के अनुरूप व्यवहार करना चाहिये॥ १॥

तन्मतेन कुटुम्बचिन्तामात्मनि संनिवेशयेत्॥ २॥

एकचारिणी भार्या के आचरण—पति की सहमति से कुटुम्ब की व्यवस्था का दायित्व अपने ऊपर ले ले॥ २॥

वेश्म च शुचि सुसम्मृष्टस्थानं विरचितविविधकुसुमं श्लक्ष्णभूमितलं हृद्यदर्शनं त्रिषवणाचरितबलिकर्म पूजितदेवतायतनं कुर्यात्॥ ३॥

घर की स्वच्छता और पूजाकार्य—झाड़-पोंछ और धोकर घर को निर्मल पवित्र रखे, उपयुक्त स्थानों पर सुगन्धित पुष्प आदि उत्पन्न कर उन्हें सजाये, आँगन को स्वच्छ और रमणीय बनाये, प्रातः, मध्याह्न और सायं काल—तीनों समय बलिकर्म करे तथा घर के मन्दिर या पूजागृह में समय पर पूजा करे॥ ३॥

न ह्यतोऽन्यद् गृहस्थानां चित्तग्राहकमस्तीति गोनर्दीयः॥ ४॥

आचार्य गोनर्दीय का मत है कि सद्गृहस्थों का चित्त आकर्षित करने के लिये इससे बढ़कर दूसरी अन्य कोई बात नहीं है॥ ४॥

गुरुषु भृत्यवर्गेषु नायकभगिनीषु तत्पतिषु च यथार्हं प्रतिपत्तिः॥ ५॥

गुरुजन का सम्मान—गुरुजन (सास-ससुर, आचार्य, ब्राह्मण आदि), नौकर-चाकर, ननद और उसके पति के साथ यथायोग्य आचरण करे॥ ५॥

परिपूतेषु च हरितशाकवप्रानिक्षुस्तम्बाञ्जीरकसर्षपाजमोदशतपुष्पातमालगुल्माँश्च कारयेत्॥ ६॥

गृहवाटिका की व्यवस्था—साफ-सुथरे स्थान पर दैनिक प्रयोग में आने वाली शाकभाजी की क्यारियाँ बनाये, और ईख, जीरा, सरसों, अजमोद, सौंफ एवं तमाल के पौधे लगाये॥ ६॥

कुब्जकामलमल्लिकाजातीकुरण्टकनवमालिकातगरनन्द्यावर्तजपागुल्मानन्यांश्च बहुपुष्पान् बालकोशीरकपातालिकाँश्च वृक्षवाटिकायां च स्थण्डिलानि मनोज्ञानि कारयेत्॥ ७॥

गुलाबवास, मोतिया, चमेली, करण्टक (नेवारी), नवमल्लिका (वासन्ती), तगर, कदम्ब, जपाकुसुम एवं अन्यान्य फूलों के गुल्म (गाछ या झाड़ियाँ) तथा नेत्रवाला, खस.

पातालिका—इन्हें गृहवाटिका में लगाये और इन लता-पादपों के मध्य बैठने के लिये वेदिका (बेंच) बनवाये॥ ७॥

मध्ये कूपं वापीं दीर्घिकां वा खानयेत्॥ ८॥

गृहवाटिका के मध्य में कुआँ, बावड़ी या चौकोर दीर्घिका खुदवाये॥ ८॥

भिक्षुकीश्रमणाक्षपणाकुलटाकुहके-
क्षणिकामूलकारिकाभिर्नसंसृज्येत ॥ ९॥

त्याज्य स्त्रियाँ—भिखारिनों, बौद्ध एवं जैन साध्वियों (संवासिनियों), कुलटाओं, नाच-गान-तमाशा दिखाने वाली नटनियों, शकुन एवं प्रश्न बताने वाली और जादू-टोना या वशीकरण करने वाली स्त्रियों से कदापि संसर्ग न करे॥ ९॥

भोजने च रुचितमिदमस्मै द्वेष्यमिदं पथ्यमिदमपथ्यमिदमिति च विन्द्यात्॥ १०॥

भोजन की व्यवस्था—भोजन बनाते (या बनवाते) समय यह सदैव ध्यान रखे कि यह पदार्थ इनको रुचिकर लगता है और यह अरुचिकर, यह इन्हें पथ्य (कल्याणकारी) है और यह अपथ्य॥ १०॥

स्वरं बहिरुपश्रुत्य भवनमागच्छतः किं कृत्यमिति ब्रुवती सज्जा भवनमध्ये तिष्ठेत्॥ ११॥

पति का स्वागत—बाहर से घर में प्रवेश करते हुए पति की आवाज सुनते ही 'क्या कार्य है?' ऐसा मन में विचारते हुए कार्य-सम्पादन के लिये भवन के मध्य आँगन में आकर प्रस्तुत हो जाये॥ ११॥

परिचारिकामपनुद्य स्वयं पादौ प्रक्षालयेत्॥ १२॥

पाद-प्रक्षालन—परिचारिका को हटाकर स्वयं पति के पैर धुलवाये॥ १२॥

नायकस्य च न विमुक्तभूषणं विजने सन्दर्शने तिष्ठेत्॥ १३॥

अलंकृत दिखे—एकान्त में पति के समक्ष अलंकारविहीन होकर न जाये॥ १३॥

अतिव्ययमसद्व्ययं वा कुर्वाणं रहसि बोधयेत्॥ १४॥

पति के अधिक व्यय करने या अनावश्यक व्यय करने पर उसे एकान्त में समझाये, सार्वजनिक रूप में लज्जित न करे॥ १४॥

आवाहे विवाहे यज्ञे गमनं सखीभिः सह गोष्ठीं देवताभिगमनमित्यनुज्ञाता कुर्यात्॥ १५॥

बहिर्गमन के लिए अनुमति—विवाह के समय वर या कन्या के घर जाने, यज्ञादि अनुष्ठानों में सम्मिलित होने, सखियों के साथ खानपान या वार्तागोष्ठी और देवदर्शन के लिये जाने हेतु पति की अनुमति प्राप्त कर ले॥ १५॥

सर्वक्रीडासु च तदानुलोम्येन प्रवृत्तिः॥ १६॥

उत्सवों में सम्मिलित होने के लिये अनुमति—लोक में आयोजित होने वाले सभी खेलों (समारोहों) में पति की इच्छा के अनुकूल ही सम्मिलित हो॥ १६॥

पश्चात्संवेशनं पूर्वमुत्थानमनवबोधनं च सुप्तस्य॥ १७॥

सोना और जागना—पत्नी को पति के सो जाने पर सोना चाहिये और उसके जागने से पहले जागना और उठ जाना चाहिये॥ १७॥

महानसं च सुगुप्तं स्याद्दर्शनीयं च॥ १८॥

पाकशाला (रसोईघर)—पाकशाला स्वच्छ, प्रकाशपूर्ण तथा एक ओर होनी चाहिये॥ १८॥

नायकापचारेषु किञ्चित्कलुषिता नात्यर्थं निर्वदेत्॥ १९॥

पति के अपराध करने पर भी अकलुषित रहना—पति के अपराध करने पर भी अल्प अप्रसन्नता दिखाये और भविष्य में ऐसा न करने की रससिक्त चेतावनी दे॥ १९॥

साधिक्षेपवचनं त्वेनं मित्रजनमध्यस्थमेकाकिनं वाप्युपालभेत। न च मूलकारिका स्यात्॥ २०॥

जादू-टोनों से दूर—यदि पति को उपालम्भ देना आवश्यक ही हो, तो एकान्त या उसके मित्रों के मध्य ही दे, किन्तु जादू-टोना या वशीकरण कदापि न करे॥ २०॥

नह्यतोऽन्यदप्रत्ययकसारणमस्तीति गोनर्दीयः॥ २१॥

पति-पत्नी के मध्य अविश्वास उत्पन्न करने वाला इनके अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है—ऐसा आचार्य गोनर्दीय का मत है॥ २१॥

दुर्व्याहृतं दुर्निरीक्षितमन्यतो मन्त्रणं द्वारदेशावस्थानं निरीक्षणं वा निष्कुटेषु मन्त्रणं विविक्तेषु चिरमवस्थानमिति वर्जयेत्॥ २२॥

वर्जित कृत्य—दुर्वाक्य बोलना, आँखे तरेरकर देखना, विमुख होकर बातें करना, द्वार पर खड़े रहना या वहाँ से आने जाने वालों को देखना, इधर उधर खड़े होकर परामर्श करना, एकान्त में देर तक खड़े रहना—इन कुत्सित प्रवृत्तियों को छोड़ देना चाहिये॥ २२॥

स्वेददन्तपङ्कदुर्गन्धांश्च बुध्येतेति विरागकारणम्॥ २३॥

शरीरसंस्कार और शृंगार—पसीने की गन्ध, मुख की दुर्गन्ध तथा अन्य शारीरिक दुर्गन्धों को तत्काल दूर करना चाहिये, क्योंकि इनसे पति में विरक्ति आ सकती है॥ २३॥

बहुभूषणं विविधकुसुमानुलेपनं विविधाङ्गरागसमुज्ज्वलं वास इत्याभिगामिको वेषः॥ २४॥

समागम का वेश—अनेक प्रकार के आभूषण, विविध प्रकार के सुगन्धित अनुलेप (क्रीम), विविध प्रकार के अङ्गराग (पाउडर) लगाकर और उज्ज्वल वस्त्र पहनकर ही पति के पास सम्भोगार्त जाना चाहिये॥ २४॥

प्रतनुश्लक्ष्णाल्पदुकूलता परिमितमाभरणं सुगन्धिता नात्युल्वणमनुलेपनम्। तथा शुक्लान्यन्यानि पुष्पाणीति वैहारिको वेषः॥ २५॥

गोष्ठीविहार का वेश—यदि गोष्ठीविहार के लिये जाना हो, तो नायिका शरीर पर हल्का, पतला और चिकना परिधान पहने; केवल नाक, कान और गले में आभूषण धारण करे, चन्दन

आदि का अनुलेप (सुगन्धित क्रीम) लगाये, इत्रादि का प्रयोग करे और केशों में श्वेत पुष्पों की माला लगाये॥ २५॥

नायकस्य व्रतमुपवासं च स्वयमपि करणेनानुवर्तेत। वारितायां च नाहमत्र निर्बन्धनीयेति तद्वचसो निवर्तनम्॥ २६॥

व्रतोपवास—पति द्वारा किये जाने वाले व्रतोपवासों का स्वयं भी आचरण करे। यदि पति मना करे, तो 'आप मुझसे ऐसा आग्रह न करें। मैं आपकी सहधर्मिणी हूँ, इसलिए मुझे भीआपके व्रतोपवासों का पालन करना चाहिये'—ऐसा कहकर मना करने से रोक दे॥ २६॥

मृद्विदलकाष्ठचर्मलोहभाण्डानां च काले समर्घग्रहणम्॥ २७॥

समयानुसार क्रय—मिट्टी, बाँस, काष्ठ, चर्म और लोहे का उपयोगी सामान जब भी सस्ता और अच्छा मिले खरीदकर रख ले॥ २७॥

तथा लवणस्नेहयोश्च गन्धद्रव्यकटुकभाण्डौषधानां च दुर्लभानां भवनेषु प्रच्छन्नं निधानम्॥ २८॥

उपयोगी सामग्री का संग्रह—नमक, घी, तेल, सुगन्धित वस्तुएँ, कटुक, बर्तन, औषध और दुर्लभ वस्तुओं को भवन में ढँककर सुरक्षित रखे॥ २८॥

मूलकालुकपालङ्की-दमनकाम्रातकैर्वारुकत्रपुसवार्ताककूष्माण्डालाबु - सूरणशुकनासास्वयंगुप्तातिलपर्णिकाग्निमन्थलशुनपलाण्डुप्रभृतीनां सर्वौषधीनां च बीजग्रहणं काले वापश्च॥ २९॥

मूली, आलु (अरवी), पालक, दोना, आभरा, ककड़ी, खीरा, बैंगन, काशीफल, लौकी, जिमीकन्द, सोनापाठा, कौंच, खम्भारी, अरणी, लहसुन, प्याज और नानाविध औषधियों के बीज सँभालकर रखे और उन्हें समय पर बोये॥ २९॥

स्वस्य च सारस्य परेभ्यो नाख्यानं भर्तृमन्त्रितस्य च॥ ३०॥

गोपनीयता को अक्षुण्ण रखना—अपना धन और पति की गोपनीय बातों को किसी से नहीं कहना चाहिये॥ ३०॥

समानाश्च स्त्रियः कौशलेनोज्ज्वलतया पाकेन मानेन तथोपचारैरतिशयीत॥ ३१॥

समानता वाली स्त्रियों का अतिक्रमण—समान अवस्था एवं प्रतिष्ठा वाली स्त्रियों का कलाकौशल से, उज्ज्वलता से, पाककला से, मान-सम्मान से और उपचारों से अतिक्रमण कर जाये॥ ३१॥

सांवत्सरिकमायं सङ्ख्याय तदनुरूपं व्ययं कुर्यात्॥ ३२॥

आय के अनुरूप ही व्यय—वर्ष-भर की अपनी आय की गणना कर तदनुरूप ही व्यय करे॥ ३२॥

भोजनावशिष्टाद् गोरसाद् घृतकरणम्, तथा तैलगुडयोः। कर्पासस्य च सूत्रकर्तनम् सूत्रस्य वानम्। शिक्यरज्जुपाशवल्कलसंग्रहणम्। कुट्टनकण्डनावेक्षणम्। आमचामण्डतुषकखकुट्यङ्गाराणामुपयोजनम्। भृत्यवेतनभरणज्ञानम्। कृषि-

पशुपालनचिन्तावाहनविधानयोगाः। मेषकुक्कुटलावकशुकशारिकापरभृतमयूरवानरमृगाणामवेक्षणम्। दैवसिकायव्ययपिण्डीकरणमिति च विद्यात्॥ ३३॥

व्यवस्थाविषयक निर्देश—भोजन से बचे गोरस (दही, मक्खन) से घी, ईख (गन्ना) से गुड़ एवं सरसों आदि से तेल निकालना, कपास से सूत कातना और सूत से कपड़ा बुनवाना, छींके, रस्सी, फन्दे एवं वल्कल आदि सहेजकर रखना, दासियों द्वारा अनाजों एवं दालों को छड़ते, फटकते, दलते एवं कूटते समय ध्यान रखना, भात (चावल) का माँड़, धान की भूसी, चावल की किनकी, पशुओं का अवशिष्ट चारा (कुट्टी) और जले हुए कोयलों का पुनः उपयोग करना, नौकरों के वेतन एवं भोजन का ध्यान रखना, कृषि एवं पशुपालन की चिन्ता करना, गाड़ी, रथ आदि वाहनों की व्यवस्था (रखरखाव) करना; भेड़, मुर्गा, लवा, तोता, मैना, कोयल, मोर, बन्दर, मृग आदि पालतू पशु-पक्षियों की देखभाल और दिनभर के आय-व्यय का लेखा-जोखा रखना—इन बातों का भार्या को सदैव ध्यान रखना चाहिये॥ ३३॥

तज्जघन्यानां च जीर्णवाससां सञ्चयस्तैर्विविधरागैः शुद्धैर्वा कृतकर्मणां परिचारकाणामनुग्रहो मानार्थेषु च दानमन्यत्र वोपयोगः॥ ३४॥

पुरातन वस्त्रों का उपयोग—पति के पुराने वस्त्रों को एकत्र कर धुलवा दे। उनमें जो रँगने योग्य हों, उन्हें रंगवा दे और अच्छा काम करने वाले नौकरों को देकर अपना अनुग्रह (कृपा) एवं सम्मान प्रकट करे। जो वस्त्र अधिक जर्जर हों, देने योग्य न हों, उन्हें दूसरे कामों में प्रयोग करे॥ ३४॥

सुराकुम्भीनामासवकुम्भीनां च स्थापनं तदुपयोगः क्रयविक्रयावायव्ययावेक्षणम्॥ ३५॥

पेय की व्यवस्था—सुरा और आसव के घड़ों (पात्रों) को छिपाकर रखना और समय पर उनका उपयोग करना, आवश्यकतानुसार उनका क्रय-विक्रय और उससे प्राप्त हानि-लाभ को देखना भी भार्या का दायित्व है॥ ३५॥

नायकमित्राणां च स्रगनुलेपनताम्बूलदानैः पूजनं न्यायतः॥ ३६॥

पति के मित्रों से व्यवहार—पति के मित्रों का पुष्पमाला, चन्दन, ताम्बूल आदि से समुचित स्वागत-सत्कार करना चाहिये॥ ३६॥

श्वश्रूश्वशुरपरिचर्या तत्पारतन्त्र्यमनुत्तरवादिता परिमिताप्रचण्डालापकरणमनुच्चैर्हासः तत्प्रियाप्रियेषु स्वप्रियाप्रियेष्विव वृत्तिः॥ ३७॥

सास-ससुर से व्यवहार—सास-ससुर की सेवा करना, उनकी आज्ञा मानना, उन्हें पलटकर उत्तर न देना, उनके समक्ष शान्तभाव से सीमित बोलना और धीरे से हंसना चाहिये। उनके प्रिय व्यक्तियों के साथ प्रिय और अप्रिय व्यक्तियों के साथ अप्रिय व्यवहार करना चाहिये॥ ३०॥

भोगेष्वनुत्सेकः॥ ३८॥

सुखभोगों के विषय में कदापि अभिमान नहीं करना चाहिये॥ ३८॥

परिजने दाक्षिण्यम्॥ ३९॥

परिवार के सभी सदस्यों के साथ प्रीतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिये ॥ ३९ ॥

नायकस्यानिवेद्य न कस्मैचिद्दानम् ॥ ४० ॥

पति की अनुमति के बिना किसी को कोई वस्तु न दे ॥ ४० ॥

स्वकर्मसु भृत्यजननियमनमुत्सवेषु चास्य पूजनमित्येकचारिणीवृत्तम् ॥ ४१ ॥

नौकरों को उनके काम में लगाये रहे, और त्यौहार, उत्सव आदि पर उनका सम्मान भी करे। इस प्रकार एकचारिणीवृत्त पूर्ण हुआ ॥ ४१ ॥

प्रवासे मङ्गलमात्राभरणा देवतोपवासपरा वार्तायां स्थिता गृहानवेक्षेत ॥ ४२ ॥

सात्त्विक जीवनयापन—पति के विदेश जाने पर मात्र माङ्गलिक आभूषण धारण करे, शेष सभी को उतार दे, देवताओं की पूजा और उपवास में लगी रहे, और पति की शिक्षाओं का पालन करती हुई घर की व्यवस्था देखे ॥ ४२ ॥

शय्या च गुरुजनमूले। तदभिमता कार्यनिष्पत्तिः। नायकाभिमतानां चार्थानामर्जने प्रतिसंस्कारे च यत्नः ॥ ४३ ॥

गुरुजनों के समीप शयन—पति के विदेश जाने पर पत्नी को सास-ससुर के समीप ही सोना चाहिये, उनके सुझाव और परामर्श से ही कार्य करना चाहिये तथा पति के प्रिय पदार्थों को एकत्र करने एवं उनकी रक्षा करने का प्रयत्न करना चाहिये ॥ ४३ ॥

नित्यनैमित्तिकेषु कर्मसूचितो व्ययः। तदारब्धानां च कर्मणां समापने मतिः ॥ ४४ ॥

अनधिक व्यय—नित्य एवं नैमित्तिक कार्यों में समुचित या पति द्वारा निर्धारित ही व्यय करे। पति ने जिन कार्यों का समारम्भ किया हो, उन्हें यथासमय पूर्ण करने की निरन्तर चेष्टा करती रहे ॥ ४४ ॥

ज्ञातिकुलस्यानभिगमनमन्यत्र व्यसनोत्सवाभ्याम्। तत्रापि नायकपरिजनाधिष्ठिताया नातिकालमवस्थानमपरिवर्तितप्रवासवेषता च ॥ ४५ ॥

अत्यावश्यक होने पर ही बहिर्गमन—अपने माता-पिता के घर भी व्यसन (मृत्यु आदि) और उत्सव (विवाह आदि) के अतिरिक्त न जाये। वहाँ भी ससुरकुल का एक व्यक्ति (देवर या ननद) साथ ले जाये और अधिक समय न लगाये तथा उत्सव में भी प्रोषित पतिकाओं जैसी सरल एवं सात्त्विक वेशभूषा ही धारण करे ॥ ४५ ॥

गुरुजनानुज्ञातानां करणमुपवासानाम्। परिचारकैः शुचिभिराज्ञाधिष्ठितैरनुमतेन क्रयविक्रयकर्मणा सारस्यापूरणं तनूकरणं च शक्त्या व्ययानाम् ॥ ४६ ॥

उपवास एवं अर्थ-व्यवस्था—सास-ससुर की अनुमति से ही व्रतोपवास करें। ईमानदार और आज्ञाकारी नौकरों के माध्यम से क्रय-विक्रय कर धनाभाव को पूरा करे और व्यय में यथासम्भव कमी लाये ॥ ४६ ॥

आगते च प्रकृतिस्थाया एव प्रथमतो दर्शनं दैवतपूजनमुपहाराणां चाहरणमिति प्रवासचर्या ॥ ४७ ॥

प्रोषितपतिका के रूप में ही दर्शन—पति के प्रवास से लौटने पर पहली बार पत्नी

प्रोषितपतिका के ही रूप में दिखे; उसकी वापसी पर पत्नी देवपूजन करे और भेंट चढ़ाये। यह प्रवासचर्या पूर्ण हुई ॥ ४० ॥

भवतश्चात्र श्लोकौ—

तद्वृत्तमनुवर्तेत नायकस्य हितैषिणी।
कुलयोषा पुनर्भूर्वा वेश्या वाप्येकचारिणी॥
धर्ममर्थं तथा कामं लभन्ते स्थानमेव च।
निःसपत्नं च भर्तारं नार्यः सद्वृत्तमाश्रिताः॥ ४८ ॥

इस विषय में दो आनुवंश्य श्लोक प्राप्त होते हैं—

एकचारिणी भार्या का चाहे वह कुलवधू हो, पुनर्भू हो अथवा वेश्या हो, यह कर्तव्य है कि वह अपने पति की हितैषिणी बनकर सदाचार का पालन करे। स्त्रियाँ सदाचार पर चलकर ही धर्म, अर्थ, काम, प्रतिष्ठा और सपत्नी (सौत) विहीन पति प्राप्त करती हैं ॥ ४८ ॥

एकचारिणीवृत्त प्रकरण नामक प्रथम अध्याय सम्पन्न ॥

●

द्वितीय अध्याय

ज्येष्ठादिवृत्तप्रकरण

जाड्यदौःशील्यदौर्भाग्येभ्यः प्रजानुत्पत्तेराभीक्ष्ण्येन दारिकोत्पत्तेर्नायकचापलाद्वा सपत्न्यधिवेदनम्॥ १ ॥

द्वितीय विवाह का कारण—मूर्खता, चरित्रहीनता, दुर्भाग्य, सन्तानहीनता, बार बार लड़कियों का उत्पन्न होना या पति की चञ्चलता के कारण पत्नी को सपत्नी की वेदना भोगनी पड़ती है ॥ १ ॥

तदादित एव भक्तिशीलवैदग्ध्यख्यापनेन परिजिहीर्षेत्। प्रजानुत्पत्तौ च स्वयमेव सापत्नके चोदयेत्॥ २ ॥

विदग्ध भार्या का कर्तव्य—भार्या को चाहिये कि वह प्रारम्भ से ही पतिभक्ति, सच्चरित्रता और विदग्धता का आचरण कर पति को दूसरा विवाह करने का अवसर ही न दे। यदि सन्तान उत्पन्न न हो, तो स्वयं ही पति को दूसरा विवाह करने के लिये प्रेरित करे ॥ २ ॥

अधिविद्यमाना च यावच्छक्तियोगादात्मनोऽधिकत्वे स्थितिं कारयेत्॥ ३ ॥

ज्येष्ठा का दायित्व—ज्येष्ठा को चाहिये कि अपने को यथाशक्ति अधिक ही बनाकर रखे अर्थात् अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाये ॥ ३ ॥

आगतां चैनां भगिनीवदीक्षेत। नायकविदितं च प्रादोषिकं विधिमतीव यत्नादस्याः कारयेत्। सौभाग्यजं वैकृतमुत्सेकं वास्या नाद्रियेत॥ ४ ॥

कनिष्ठा के साथ व्यवहार—नवपरिणीता को अपनी बहिन के समान समझे। प्रथम रात्रि

में सम्भोग के लिये उसका शृङ्गार एवं शयनव्यवस्था इस तरह प्रयत्नपूर्वक करा दे जिससे उन दोनों को यह पता चले कि यह सम्पादन उसी ने किया है। यदि कनिष्ठा सौभाग्यवश अनादरपूर्वक बोले या मान दिखाये तो उसे कदापि सहन न करे॥ ४॥

भर्तरि प्रमाद्यन्तीमुपेक्षेत। यत्र मन्येतार्थमियं स्वयमपि प्रतिपत्स्यत इति तत्रैनामादरत एवानुशिष्यात्॥ ५॥

पतिविषयक प्रमाद पर उपेक्षा—यदि कनिष्ठा पतिविषयक कोई प्रमाद करे तो उसकी उपेक्षा कर दे। यदि यह समझे कि पति को प्राप्त करने के लिये यह स्वयं ही संभल जायेगी तो उसे आदरपूर्वक स्वयं समझा दे॥ ५॥

नायकसम्भवे च रहसि विशेषानधिकान् दर्शयेत्॥ ६॥

वैशिष्ट्यप्रदर्शन—ऐसे एकान्त में उसे कामकला की शिक्षा दे जहाँ से पति भी सुन सके॥ ६॥

तदपत्येष्वविशेषः। परिजनवर्गेऽधिकानुकम्पा। मित्रवर्गे प्रीतिः। आत्मज्ञातिषु नात्यादरः। तज्ज्ञातिषु चातिसम्भ्रमः॥ ७॥

सन्तति, परिजन एवं पुरजनों से प्रेम—कनिष्ठा के बच्चों से अत्यधिक प्रेम करे, उसके परिजनों (सेवकों) पर अनुग्रह रखे, उसकी सखियों से प्रीति रखे और उसके भाई-भतीजों को अपनों से अधिक आदर दे॥ ७॥

बह्वीभिस्त्वधिविन्ना अव्यवहितया संसृज्येत्॥ ८॥

कई सपत्नियों में द्वितीय से संसर्ग—यदि कई सपत्नियाँ हों, तो ज्येष्ठा को अपने से दूसरी के साथ संसर्ग रखना चाहिये॥ ८॥

यां तु नायकोऽधिकां चिकीर्षेत्तां भूतपूर्वसुभगया प्रोत्साह्य कलहयेत्॥ ९॥

कलह की योजना—पति जिस (नवप्रिया) पत्नी को अब सर्वाधिक प्रेम करता हो, उसके साथ उस (पूर्वप्रिया) पत्नी को भड़काकर लड़वा दे जिसे पति पहले सर्वाधिक प्रेम करता था॥ ९॥

ततश्चानुकम्पेत॥ १०॥

तत्पश्चात् कलह बढ़ाने के लिये नवोढ़ा को आश्वासन दे दे॥ १०॥

ताभिरेकत्वेनाधिकां चिकीर्षितां स्वयमविवदमाना दुर्जनीकुर्यात्॥ ११॥

पतिप्रिया की निकृष्टता-सिद्धि—यदि पति किसी पत्नी को अधिक प्रेम और महत्त्व देना चाहे, तो ज्येष्ठा को चाहिये कि स्वयं विवाद में न पड़ते हुए, उसे अन्य सपत्नियों से लड़ा-लड़ाकर निकृष्ट (दुष्ट) सिद्ध करा दे॥ ११॥

नायकेन तु कलहितामेनां पक्षपातावलम्बनोपबृंहितामाश्वासयेत्॥ १२॥

कलहकारिणी को आश्वासन—जब पति का नवप्रिया से कलह हो जाये, और वह पति को रूक्ष वचन कह दे, तो उसे आश्वासन दे दे॥ १२॥

कलहं च वर्धयेत्॥ १३॥

कलहवर्धन—ज्येष्ठा को चाहिये कि सपत्नियों में कलह बढ़ाती रहे॥ १३॥

मन्दं वा कलहमुपलभ्य स्वयमेव सन्धुक्षयेत्॥ १४॥

कलह के मन्द पड़ने पर स्वयं भड़का दे॥ १४॥

यदि नायकोऽस्यामद्यापि सानुनय इति मन्येत तदा स्वयमेव सन्धौ प्रयतेतेति ज्येष्ठावृत्तम्॥ १५॥

शान्ति-प्रयास—यदि यह समझ ले कि पति अब भी नवप्रिया पर प्रेम रखता है, तो स्वयं दोनों में मेल कराने का प्रयत्न करे—इस प्रकार ज्येष्ठावृत्त पूर्ण हुआ॥ १५॥

कनिष्ठा तु मातृवत् सपत्नीं पश्येत्॥ १६॥

कनिष्ठावृत्त-प्रकरण—कनिष्ठा, ज्येष्ठा को माता के समान पूज्य समझे॥ १६॥

ज्ञातिदायमपि तस्या अविदितं नोपयुञ्जीत॥ १७॥

उसकी अनुमति के विना माता पिता द्वारा दी गयी वस्तु का भी उपभोग न करे॥ १७॥

आत्मवृत्तान् ताँस्तदधिष्ठितान् कुर्यात्॥ १८॥

सब कुछ बता दे—अपनी सद्-असद् सभी बातें ज्येष्ठा को बता दे॥ १८॥

अनुज्ञाता पतिमधिशयीत॥ १९॥

ज्येष्ठा की अनुमति से ही पति के साथ शयन कहे॥ १९॥

न वा तस्या वचनमन्यस्याः कथयेत्॥ २०॥

रहस्योद्घाटन न करे—ज्येष्ठा द्वारा कही गयी बातें या उसकी चरित्रविषयक बातें कभी किसी से न कहे॥ २०॥

तदपत्यानि स्वेभ्योऽधिकानि पश्येत्॥ २१॥

सन्तान पर प्राणन्यौछावर—ज्येष्ठा की सन्तान को अपनी सन्तान से अधिक प्रेम करे॥ २१॥

रहसि पतिमधिकमुपचरेत्॥ २२॥

ऐकान्तिक उपाचार—संयोग के समय पति का भरपूर मनोरञ्जन करे॥ २२॥

आत्मनश्च सपत्नीविकारजं दुःखं नाचक्षीत॥ २३॥

सपत्नियों की अनिन्दा—सपत्नियों से मिलने वाले तिरस्कारजन्य दुःख को पति से कदापि न कहे॥ २३॥

पत्युश्च सविशेषकं गूढं मानं लिप्सेत्॥ २४॥

पति से सम्मान—एकान्त में पति से सर्वाधिक प्रेम और सम्मान पाने का सदैव प्रयास करे॥ २४॥

अनेन खलु पथ्यदानेन जीवामीति ब्रूयात्॥ २५॥

पति से कहे कि आपका प्रेम और सम्मान ही मेरे जीवन का एकमात्र सहारा है॥ २५॥

तत्तु श्लाघया रागेण वा बहिर्नाचक्षीत॥ २६॥

सम्मान का अकथन—पति से प्राप्त सम्मान को आत्मश्लाघा (आत्मप्रशंसा) या अनुरागवश भी कभी किसी से न कहे॥ २६॥

भिन्नरहस्या हि भर्तुरवज्ञां लभते॥ २७॥

सम्मान-कथन में दोष—पति का रहस्य प्रकट करने वाली स्त्रियाँ सदैव पति द्वारा तिरस्कृत होती है॥ २७॥

ज्येष्ठाभयाच्च निगूढसम्मानार्थिनी स्यादिति गोनर्दीयः॥ २८॥

ज्येष्ठा के भय से पति से प्राप्त प्रेम एवं सम्मान का आनन्द एकान्त में ही लेना चाहिये—यह इस अधिकरण के व्याख्याता एवं विशेषज्ञ आचार्य गोनर्दीय का मत है॥ २८॥

दुर्भगामनपत्यां च ज्येष्ठामनुकम्पेत नायकेन चानुकम्पयेत्॥ २९॥

निःसन्तान पर अनुकम्पा—यदि ज्येष्ठा दुर्भगा (उपेक्षिता) या सन्तानरहित हो, तो उस पर सदैव अनुग्रह रखे, और पति से भी अनुग्रह रखने का निवेदन करे॥ २९॥

प्रसह्य त्वेनामेकचारिणीवृत्तमनुतिष्ठेदिति कनिष्ठावृत्तम्॥ ३०॥

इस प्रकार कनिष्ठा अपने स्नेहिल व्यवहार से दुर्भगा (उपेक्षिता) का अतिक्रमण कर एकचारिणी के आचरण का पालन करे। यह कनिष्ठावृत्त पूर्ण हुआ॥ ३०॥

विधवा त्विन्द्रियदौर्बल्यादातुरा भोगिनं गुणसम्पन्नं च या पुनर्विन्देत् सा पुनर्भूः॥ ३१॥

पुनर्भ-वृत्तप्रकरण—अपनी कामवासनाओं को नियन्त्रित न रख पाने वाली विधवा, जब कामपीड़ित होकर गुणसम्पन्न एवं भोगी व्यक्ति को पतिरूप में प्राप्त कर ले तो उसे पुनर्भू कहा जाता है॥ ३१॥

यतस्तु स्वेच्छया पुनरपि निष्क्रमणं निर्गुणोऽयमिति तदान्यं काङ्क्षेदिति बाभ्रवीयाः॥ ३२॥

पुनर्भू के गृहत्याग की रीति—पुनर्भू स्वेच्छा से वर्तमान पति का घर छोड़कर अन्य के घर बैठना चाहे, तो 'यह गुणविहीन है' ऐसा कहकर दूसरे को पतिरूप में स्वीकारे—यह आचार्य बाभ्रव्य के अनुयायियों (शिष्यों) का मत है॥ ३२॥

सौख्यार्थिनी सा किलान्यं पुनर्विन्देत॥ ३३॥

यदि अधिक इन्द्रिय-सुख चाहे, तो उसे भी छोड़कर अन्य पुरुष को प्राप्त कर ले॥ ३३॥

गुणेषु सोपभोगेषु सुखसाकल्यं तस्मात्ततो विशेष इति गोनर्दीयः॥ ३४॥

यदि पुनर्भू छोड़े गये दूसरे और तीसरे नायक से चौथे नायक में समस्त भोगों की सुलभता देखे, तो चौथे स्थान पर भी जा सकती है—यह आचार्य गोनर्दीय का अभिमत है, लेकिन इससे आगे उसे नहीं बढ़ना चाहिये॥ ३४॥

आत्मनश्चित्तानुकूल्यादिति वात्स्यायनः॥ ३५॥

वात्स्यायन की व्यवस्था—जो भी पुरुष अपनी चित्तवृत्ति के अनुकूल हो, वहीं पुनर्भू को बैठ जाना चाहिये—यह महर्षि वात्स्यायन की व्यवस्था है॥ ३५॥

सा बान्धवैर्नायकादापानकोद्यानश्रद्धादानमित्रपूजनादिव्ययसहिष्णु कर्म लिप्सेत॥ ३६॥

उत्तम पुनर्भू की इच्छा—उत्तम प्रकृति की पुनर्भू अपने नायक या बान्धवों की परिचर्या

करके इतना धन अवश्य चाहे जिससे मद्यपान, विहार, दान-दक्षिणा और मित्रों के स्वागत-सत्कार आदि का कार्य चल सके॥ ३६॥

आत्मनः सारेण वालङ्कारं तदीयमात्मीयं वा बिभृयात्॥ ३७॥

मध्यम और अधम पुनर्भू की इच्छा—मध्यम और अधम प्रकृति की पुनर्भू मद्यपान आदि का खर्च अपने निजी धन से चलाये और अपने ही आभूषण धारण करे। यदि अपने आभूषण न हों तो नायक द्वारा दिये गये आभूषण ही पहने॥ ३७॥

प्रीतिदायेष्वनियमः॥ ३८॥

नायक द्वारा प्रेमपूर्वक जो उपहार दिया है, उसके विषय में कोई निश्चित नियम नहीं है॥ ३८॥

स्वेच्छया च गृहान्निर्गच्छन्ती प्रीतिदायादन्यन्नायकदत्तं जीयेत। निष्कास्यमाना तु न किञ्चिद्दद्यात्॥ ३९॥

प्रेमोपहारों के अतिरिक्त सभी सम्पदा पर नायक का अधिकार—यदि पुनर्भू स्वेच्छा से नायक का घर छोड़कर, अन्य नायक के घर बैठे, तो प्रेमोपहारों के अतिरिक्त नायक द्वारा प्रदत्त अन्य सभी सुविधाओं और सम्पदाओं को उसे वापस कर दे, और यदि नायक स्वयं घर से निकाले, तो जो उसके पास है, उसमें से कुछ भी वापस न करे॥ ३९॥

सा प्रभविष्णुरिव तस्य भवनमाप्नुयात्॥ ४०॥

स्वामिनीवत् रहे—पुनर्भू जिस नायक के भी घर बैठे, वहाँ स्वामिनी बनकर रहे॥ ४०॥

कुलजासु तु प्रीत्या वर्तेत॥ ४१॥

धर्मपत्नी से व्यवहार—नायक की धर्मपत्नियों के साथ प्रीतिपूर्ण व्यवहार रखे॥ ४१॥

दाक्षिण्येन परिजने सर्वत्र सपरिहासा मित्त्रेषु प्रतिपत्तिः। कलासु कौशल-मधिकस्य च ज्ञानम्॥ ४२॥

परिजनों एवं मित्रों के साथ व्यवहार—नायक के पारिवारिक सदस्यों के साथ शालीनता और शिष्टता का व्यवहार करे और मित्रों के साथ हास-परिहासपूर्वक वार्तालाप करे। कलाओं में कुशलता और अभिज्ञता का परिचय दे॥ ४२॥

कलहस्थानेषु च नायकं स्वयमुपालभेत॥ ४३॥

कलह के स्थान पर केवल उपालम्भ—कलह के कारणों पर नायक को केवल उपाल्भ ही दे॥ ४३॥

रहसि च कलया चतुःषष्ट्यानुवर्तेत। सपत्नीनां च स्वयमुपकुर्यात्। तासाम-पत्येष्वाभरणदानम्। तेषु स्वामिवदुपचारः। मण्डनकानि वेषानादरेण कुर्वीत। परिजने मित्त्रवर्गे चाधिकं विश्राणनम्। समाजापानकोद्यानयात्राविहारशीलता चेति पुनर्भूवृत्तम्॥ ४४॥

परामर्श—एकान्त में नायक की इच्छानुरूप चौंसठ कामकलाओं का प्रदर्शन करे। अपनी सपत्नियों (नायक की धर्मपत्नियों) का स्वेच्छा से उपकार करे। उनके बच्चों को आभूषण आदि दे। अभिभाविका के समान उनकी सेवा-शुश्रूषा (लालन-पालन) करे। आदर-सत्कारपूर्वक उन्हें वस्त्राभूषणों से सज्जित करे। नायक के पारिवारिक सदस्यों और मित्रों के

प्रति उदारता दिखाये। उत्सव, मद्यपान, गोष्ठी और उद्यान-विहार के प्रति अधिकाधिक रुचि दिखाये। इस प्रकार पुनर्भूवृत्त पूर्ण हुआ ॥ ४४ ॥

दुर्भगा तु सापत्नकपीडिता या तासामधिकमिव पत्यावुपचरेत् तामाश्रयेत्। प्रकाम्यानि च कलाविज्ञानानि दर्शयेत्। दौर्भाग्याद्रहस्यानामभावः ॥ ४५ ॥

दुर्भगावृत्त—दुर्भगा तो सपत्नियों से पीड़ित होती है, अतः उसे ऐसी सपत्नी का आश्रय लेना चाहिये जिसे पति अधिक प्रेम एवं सम्मान देता हो। दर्शनीय कलाओं को उसे दिखाये, क्योंकि वैदग्ध्य ही दुर्भगता की निवृत्ति का कारण है ॥ ४५ ॥

नायकापत्यानां धात्रेयिकानि कुर्यात् ॥ ४६ ॥

सन्तति का लालन-पालन—धाय के समान नायक की सन्तति का लालन-पालन करे ॥ ४६ ॥

तन्मित्राणि चोपगृह्य तैर्भक्तिमात्मनः प्रकाशयेत् ॥ ४७ ॥

नायक के मित्रों को अनुकूल बनाकर, उनके माध्यम से नायक के प्रति अपनी पतिभक्ति प्रकटित करे ॥ ४७ ॥

धर्मकृत्येषु च पुरश्चारिणी स्याद् व्रतोपवासयोश्च ॥ ४८ ॥

धार्मिक कृत्यों में पुरश्चारिणी—धार्मिक कार्यकलापों, व्रतोपवासों में सदैव पुरश्चारिणी रहे ॥ ४८ ॥

परिजने दाक्षिण्यम्। न चाधिकमात्मानं पश्येत् ॥ ४९ ॥

परिजनों से विनम्र एवं शालीन व्यवहार—नायक के पारिवारिक सदस्यों के प्रति विनम्रता, शिष्टता एवं शालीनता दिखाये और कभी भी अपने को बड़ा न समझे ॥ ४९ ॥

शयने तत्सात्म्येनात्मनोऽनुरागप्रत्यानयनम् ॥ ५० ॥

प्रेम की पुनः प्राप्ति का प्रयास—नायक के साथ शयन का अवसर मिलने पर, उसकी प्रकृति के अनुरूप ढलकर अनुराग को पुनः प्राप्त करे ॥ ५० ॥

न चोपालभेत, वामतां च न दर्शयेत् ॥ ५१ ॥

उपालम्भ और विपरीतता से दूर—न कभी नायक को उपालम्भ दे और न कभी विपरीतता ही दिखाये ॥ ५१ ॥

यया च कलहितः स्यात् कामं तामावर्तयेत् ॥ ५२ ॥

अनुकूल करने के साधन—नायक जिस पत्नी से लड़ गया हो, उसे अपनी ओर मिलाने की चेष्टा करे ॥ ५२ ॥

यां च प्रच्छन्नां कामयेत् तामनेन सह सङ्गमयेद् गोपयेच्च ॥ ५३ ॥

नायक जिस तरुणी को मन में चाहता हो, उसे उस प्रिया से मिलवा दे, लेकिन इसे गुप्त ही रखे, किसी से न कहे ॥ ५३ ॥

यथा च पतिव्रतात्वमशाठ्यं नायको मन्येत तथा प्रतिविदध्यादिति दुर्भगा-वृत्तम् ॥ ५४ ॥

नायक जिस प्रकार भी उसे पतिव्रता एवं विदग्ध समझे, वही करे। **दुर्भगावृत्त पूर्ण** हुआ॥ ५४॥

अन्तःपुराणां च वृत्तमेतेष्वेव प्रकरणेषु लक्षयेत्॥ ५५॥

अन्तःपुर वृत्त—अन्तःपुर की रानियों के आचरण को भी इसी प्रकरण में देख लें॥ ५५॥

माल्यानुलेपनवासांसि चासां कञ्चुकीया महत्तरिका वा राज्ञो निवेदयेयुर्देवीभिः प्रहितमिति॥ ५६॥

राजा का आचरण—अन्तःपुर की कञ्चुकीयों और महत्तरिकाओं को चाहिये कि वे रानियों के माल्य, अनुलेपन और वस्त्र लेकर राजा से निवेदन करे कि उस रानी ने यह भेजा है॥ ५६॥

तदादाय राजा निर्माल्यमासां प्रतिप्राभृतकं दद्यात्॥ ५७॥

राजा उन वस्तुओं को लेकर, अपनी धारण की गयी वस्तु को उन उन रानियों के पास भेज दें, जिन्होंने माल्यादि भिजवाये थे॥ ५७॥

अलंकृतश्च स्वलंकृतानि चापराह्णे सर्वाण्यन्तःपुराण्यैकध्येन पश्येत्॥ ५८॥

स्वयं सज संवरकर राजा अपराह्णकाल में शृङ्गारित एवं वस्त्राभूषणों से अलंकृत रानियों का सहसा अवलोकन करे॥ ५८॥

तासां यथाकालं यथार्हं च स्थानमानानुवृत्तिः सपरिहासाश्च कथाः कुर्यात्॥ ५९॥

मिलन की व्यवस्था—राजा अवस्था और योग्यता के अनुरूप उनके साथ मिलन करे, उनका सम्मान करे और हास-परिहास एवं कथावार्ताएँ भी करे॥ ५९॥

तदनन्तरं पुनर्भुवस्तथैव पश्येत्॥ ६०॥

तत्पश्चात् पुनर्भू स्त्रियों के साथ भी इसी प्रकार का आचरण करे॥ ६०॥

ततो वेश्या आभ्यन्तरिका नाटकीयाश्च॥ ६१॥

तदनन्तर अन्तपुर में रहने वाली एकनिष्ठ वेश्याओं और रङ्गमञ्च की अभिनेत्रियों का अवलोकन करे॥ ६१॥

तासां यथोक्तकक्षाणि स्थानानि॥ ६२॥

इनके स्थान भी पूर्वोक्त कक्षाओं में ही होने चाहिये॥ ६२॥

वासकपाल्यस्तु यस्या वासको यस्याश्चातीतो यस्याश्च ऋतुस्तत्परिचारिकानुगता दिवा शय्योत्थितस्य राज्ञस्ताभ्यां प्रहितमङ्गुलीयकाङ्कमनुलेपनमृतुं वासकं च निवेदयेयुः॥ ६३॥

सम्भोग के लिये निवेदन-व्यवस्था—वासकपाली (अन्तःपुर में राजा के भोगविलास का प्रबन्ध करने वाली) को चाहिये कि जिस अन्तःपुरिका की सम्भोग की पारी हो, जिसकी पारी किसी कारणवश निकल गयी हो, और ऋतुमती हुई हो, उन सबकी परिचारिकाओं को साथ लेकर, दिन में भोजन के पश्चात् राजा के सोकर उठने पर, उन उन रानियों द्वारा भेजी गयी नामांकित अँगूठी, कुंकुम के अनुलेपन तथा वासक भेंट करें॥ ६३॥

तत्र राजा यद् गृह्णीयात्तस्या वासकमाज्ञापयेत्॥ ६४॥

इनमें से राजा जिसके प्रतीक को स्वीकार कर लें, उसी की परिचारिका को यह सूचना दे दी जाये कि आज राजा शयनकक्ष में रतिविलास हेतु पधारेंगे॥ ६४॥

उत्सवेषु च सर्वासामनुरूपेण पूजापानाकं च। सङ्गीतदर्शनेषु च॥ ६५॥

उत्सवों में सम्मान—अन्तःपुर में आयोजित होने वाले उत्सवों में, राजा कुल और अवस्था के अनुरूप सभी का सम्मान करें और मद्यपान की व्यवस्था करें। सङ्गीतगोष्ठियों में भी यही व्यवस्था होनी चाहिये॥ ६५॥

अन्तःपुरचारिणीनां बहिरनिष्क्रमो बाह्यानां चाप्रवेशः। अन्यत्र विदितशौचाभ्यः। अपरिक्लिष्टश्च कर्मयोग इत्यान्तःपुरिकम्॥ ६६॥

आवागमन नियन्त्रित—अन्तःपुरिकाओं को बाहर न निकलने दिया जाये और सन्दिग्ध चरित्र वाले स्त्री-पुरुषों को अन्तःपुर में प्रवेश न करने दिया जाये। जिनके पवित्र आचरण की परीक्षा कर ली गयी है, वे भले ही अन्तःपुर में चले जायें। रानियों के साथ राजा पवित्रता और कलात्मकता से ही सम्भोग करें। इस प्रकार आन्तःपुरिकवृत्त पूर्ण हुआ॥ ६६॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

पुरुषस्तु बहून् दारान् समाहृत्य समो भवेत्।
न चावज्ञां चरेदासु व्यलीकान्न सहेत च॥ ६७॥

बहुत पत्नियों के साथ सामान्य व्यवहार—इस विषय में कुछ आनुवंश्य श्लोक उद्धृत करते हैं—

जो पुरुष कई पत्नियों का स्वामी हो, उसे चाहिये कि सबके साथ समान व्यवहार करे। न कभी किसी की अवज्ञा करे और न कभी किसी के अपराध को ही सहन करे॥ ६७॥

एकस्यां या रतिक्रीडा वैकृतं वा शरीरजम्।
विस्रम्भाद्वाप्युपालम्भस्तमन्यासु न कीर्तयेत्॥ ६८॥

उसे एक पत्नी के साथ की गयी कलात्मक रतिक्रीड़ा या शरीरजन्य विकारों को, विश्वास में आकर या उपालम्भ के माध्यम से, अन्य पत्नी से कदापि नहीं कहना चाहिये॥ ६८॥

न दद्यात् प्रसरं स्त्रीणाँ सपत्न्याः कारणे क्वचित्।
तथोपालभमानां च दोषैस्तामेव योजयेत्॥ ६९॥

कलह का अवसर न दे—समुचित कारण होने पर भी सपत्नियों को कलह का अवसर ही न दे, और जो पत्नी आकर उपालम्भ दे, शिकायत करें, उसी का दोष बताये॥ ६९॥

अन्यां रहसि विस्रम्भैरन्यां प्रत्यक्षपूजनैः।
बहुमानैस्तथा चान्यामित्येवं रञ्जयेत् स्त्रियः॥ ७०॥

तदनुरूप व्यवहार—सलज्ज को एकान्त में विश्वास देकर, सपत्नियों में स्थान चाहने वाली को प्रत्यक्ष सम्मान देकर, मनस्विनी पत्नी को अत्यधिक सम्मान देकर सभी पत्नियों को अनुरक्त रखे॥ ७०॥

उद्यानगमनैर्भोगैर्दानैस्तज्ज्ञातिपूजनैः।
रहस्यैः प्रीतियोगैश्चेत्येकैकामनुरञ्जयेत्॥ ७१॥

अनुकूलवृत्ति से प्रसादन—वनविहार (पिकनिक), भोगविलास, वस्त्राभूषणदान, भाई भतीजों का स्वागत-सत्कार और ऐकान्तिक प्रेमक्रीड़ा—इनके द्वारा एक एक का स्वतन्त्र अनुरञ्जन करे ॥ ७१ ॥

युवतिश्च जितक्रोधा यथाशास्त्रप्रवर्तिनी।
करोति वश्यं भर्तारं सपत्नीश्चाधितिष्ठति ॥ ७२ ॥

अधिकरण के अनुष्ठान का फल—जो युवती अपने क्रोध को नियन्त्रित करके शास्त्र के अनुसार आचरण करती है, वह अपने पति को वशीभूत करके सभी सपत्नियों में श्रेष्ठ पद प्राप्त कर लेती है ॥ ७२ ॥

ज्येष्ठादिवृत्तप्रकरण नामक द्वितीय अध्याय सम्पन्न ॥

●

५.

पारदारिक नामक पञ्चम अधिकरण

प्रथम अध्याय

स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनप्रकरण

व्याख्यातकारणाः परपरिग्रहोपगमाः ॥ १ ॥

प्रकरणशुद्धि का स्मरण—परकीया के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के कारण पहले ही (नायिकाविमर्श में) दिये जा चुके हैं ॥ १ ॥

तेषु साध्यत्वमनत्ययं गम्यत्वमायतिं वृत्तिं चादित एव परीक्षेत ॥ २ ॥

परकीयागमन से पूर्व विचारणीय बातें—परकीया से सम्बन्ध स्थापित करने से पहले इन बातों का भलीप्रकार विचार कर लेना चाहिये—अभीष्ट स्त्री मुझे प्राप्त हो सकेगी या नहीं? उसे प्राप्त करने में प्राणों का सङ्कट तो उपस्थित नहीं हो जायेगा? वह गमन के योग्य है या नहीं? उससे सम्बन्ध स्थापित हो जाने के पश्चात् मेरा प्रभाव कैसा होगा? मुझे सम्बन्ध रखने से क्या लाभ होगा? ॥ २ ॥

यदा तु स्थानात्स्थानान्तरं कामं प्रतिपद्यमानं पश्येत्तदात्मशरीरोपघातत्राणार्थं परपरिग्रहानभ्युपगच्छेत् ॥ ३ ॥

प्रमुखतम कारण—जब एक अवस्था से दूसरी अवस्था में बढ़ते हुए काम को देखे, और यह समझ ले कि इस स्त्री के विना मैं रह नहीं सकता, तो प्राणरक्षा के लिये परकीया के साथ भी गमन करे ॥ ३ ॥

दश तु कामस्य स्थानानि ॥ ४ ॥

दश कामदशाएँ—व्यवहार के लिये काम की दश दशाएँ हैं ॥ ४ ॥

चक्षुःप्रीतिर्मनःसङ्गः सङ्कल्पोत्पत्तिर्निद्राच्छेदस्तनुता विषयेभ्यो व्यावृत्ति-र्लज्जाप्रणाश उन्मादो मूर्च्छा मरणमिति तेषां लिङ्गानि॥ ५॥

कामदशाओं का क्रमशः वर्णन—नेत्रों में प्रेम का छलक उठना, चित्त का आसक्त होना, प्राप्ति का संकल्प उत्पन्न होना, नींद का उड़ जाना, दुर्बल होते जाना, चित्त का विषयों से हट जाना, लज्जा का नष्ट हो जाना, उन्माद, मूर्च्छा आना और मृत्यु—ये कामदशाओं के परिचायक हैं॥ ५॥

तत्राकृतितो लक्षणतश्च युवत्याः शीलं सत्यं शौचं साध्यतां चण्डवेगतां च लक्षयेदित्याचार्याः॥ ६॥

शीलादि की परीक्षा—कामशास्त्र के आचार्यों का मत है कि परकीया से सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व उसकी आकृति और लक्षणों से युवती के शील, सत्य, शौच, साध्यता और चण्डवेगता का भलीभाँति परीक्षण कर लेना चाहिये॥ ६॥

व्यभिचारादाकृतिलक्षणयोगानामिङ्गिताकाराभ्यामेव प्रवृत्तिर्बोद्धव्या योषित इति वात्स्यायनः॥ ७॥

वात्स्यायन का अभिमत—स्त्री के शरीर और उसके विभिन्न अंगों पर जो चिह्नादि देखे जाते हैं, उनसे स्त्री के शीलादि का पता नहीं चलता, अतएव सङ्केत और चेष्टाओं से ही उसकी प्रवृत्ति समझनी चाहिये॥ ७॥

यं कञ्चिदुज्ज्वलं पुरुषं दृष्ट्वा स्त्री कामयते। तथा पुरुषोऽपि योषितम्। अपेक्षया तु न प्रवर्तते इति गोणिकापुत्रः॥ ८॥

गोणिकापुत्र का मत—किसी भी उज्ज्वल वर्ण-वेश वाले पुरुष को देखकर स्त्रियाँ अनुरक्त हो जाती हैं। इसी प्रकार पुरुष भी उज्ज्वल वर्ण-वेश वाली युवती को देखकर आसक्त हो जाते हैं, किन्तु कारणवश परस्पर अनुरक्त होते हुए भी एक-दूसरे में प्रवृत्त नहीं हो पाते॥ ८॥

तत्र स्त्रियं प्रति विशेषः॥ ९॥

स्त्री में अनुराग का आधिक्य—यद्यपि स्त्री और पुरुष, दोनों में ही अन्य पर अनुरक्त होने की भावना मिलती है, किन्तु स्त्रियों में परपुरुष पर आसक्ति अधिक देखी जाती है॥ ९॥

न स्त्री धर्ममधर्मं चापेक्षते कामयत एव। कार्यापेक्षया तु नाभियुङ्क्ते॥ १०॥

स्त्री-स्वभाव की विशेषता—स्त्री धर्म-अधर्म की चिन्ता नहीं करती, वह केवल कामना करती है, किन्तु मिलन में दोष देखकर वह फिर नहीं मिलती॥ १०॥

स्वभावाच्च पुरुषेणाभियुज्यमाना चिकीर्षयन्त्यपि व्यावर्तते॥ ११॥

स्वतः हटने की प्रवृत्ति—पुरुष द्वारा मिलन का उपाय करने पर और स्वयं चाहने पर भी वह स्वतः पीछे हट जाती है॥ ११॥

पुनःपुनरभियुक्ता सिध्यति॥ १२॥

बार-बार प्रयत्न से सिद्धि—पुरुष के बार बार अभियोग करने पर ही वह उससे सम्बन्ध स्थापित करती है॥ १२॥

पुरुषस्तु धर्मस्थितिमार्यसमयं चापेक्ष्य कामयमानोऽपि व्यावर्तते॥ १३॥

पुरुष-स्वभाव—पुरुष धार्मिक मर्यादा और शिष्टाचार को देखकर परकीया की कामना करता हुआ भी पीछे हट जाता है॥ १३॥

तथाबुद्धिश्चाभियुज्यमानोऽपि न सिध्यति॥ १४॥

विचारशील की प्राप्ति असम्भव—धार्मिक मर्यादा और शिष्टाचार का ध्यान रखने वाला पुरुष परकीया द्वारा अभियोग करने पर भी प्राप्त नहीं हो पाता॥ १४॥

निष्कारणमभियुङ्क्ते। अभियुज्यापि पुनर्नाभियुङ्क्ते। सिद्धायां च माध्यस्थ्यं गच्छति॥ १५॥

पुरुष-स्वभाव की विचित्रता—पुरुष कभी तो अकारण (विना काम के) अभियोग करने लगता है और कभी स्त्री के सिद्ध हो जाने पर भी उससे उदासीन हो जाता है॥ १५॥

सुलभामवमन्यते। दुर्लभामाकाङ्क्षत इति प्रायोवादः॥ १६॥

सुलभ की अवमानना और दुर्लभ की आकांक्षा—प्रायः देखा जाता है कि पुरुष सहजता से प्राप्त हो जाने वाली स्त्री को महत्त्व नहीं देता और अभियोगों द्वारा कठिनता से मिलने वाली स्त्री की आकांक्षा करता है॥ १६॥

तत्र व्यावर्तनकारणानि॥ १७॥

व्यावृत्तिकारण—जिन कारणों से स्त्री परपुरुष की कामना करती हुई भी स्वयं पीछे हट जाती हैं, उन्हें कहते हैं॥ १७॥

पत्यावनुरागः॥ १८॥

पतिविषयक प्रेम—परपुरुष की कामना करती हुई स्त्री, पति के अनुराग का ध्यान कर पीछे हट जाती है॥ १८॥

अपत्यापेक्षा॥ १९॥

सन्तति की अपेक्षा—बच्चों के प्रति वात्सल्य भी उसे परपुरुष से विरत कर देता है॥ १९॥

अतिक्रान्तवयस्त्वम्॥ २०॥

प्रौढ़ावस्था का ध्यान—यौवन बीत जाने पर वह स्वयं पीछे हट जाती है॥ २०॥

दुःखाभिभवः॥ २१॥

शोकाकुलता—शोकाकुल स्त्री भी स्वयं पीछे हट जाती है॥ २१॥

विरहानुपलम्भः॥ २२॥

विरह की असमर्थता—पति के विरह को सहने में असमर्थ स्त्री भी स्वयं पीछे हट जाती है॥ २२॥

अवज्ञयोपमन्त्रयत इति क्रोधः॥ २३॥

अवज्ञा की शंका—कहीं अनादर के लिये तो नहीं बुला रहा है, इस भय से भी स्वयं पीछे हट जाती है॥ २३॥

अप्रतर्क्य इति सङ्कल्पवर्जनम्॥ २४॥

अवश्यता का अनुमान—यह पुरुष वश में नहीं आ सकेगा, ऐसा मानकर भी परपुरुष का सङ्कल्प छोड़ देती है॥ २४॥

गमिष्यतीत्यनायतिरन्यत्र प्रसक्तमतिरिति च॥ २५॥

अनिश्चितता की सम्भावना—यह पुरुष किसी अन्य से प्रेम कर लेगा अथवा किसी अन्य से भी प्रेम कर रहा है—यह सोचकर भी स्वयं पीछे हट जाती है॥ २५॥

असंवृत्ताकार इत्युद्वेगः॥ २६॥

रहस्योद्घाटन का भय—यह पुरुष मेरा रहस्य प्रकट कर देगा—इस भय से भी स्वयं पीछे हट जाती है॥ २६॥

मित्रेषु निसृष्टभाव इति तेष्वपेक्षा॥ २७॥

मित्रों का यथोक्तकारी—यह मित्रों से अपनी प्रत्येक बात बता देता है और उनके परामर्श से ही कार्य करता है—यह जानकर भी स्वयं पीछे हट जाती है॥ २७॥

शुष्काभियोगीत्याशङ्का॥ २८॥

निरर्थक उपायों की आशङ्का—यह मात्र केवल अभियोग करता है—इस आशङ्का से भी स्वयं पीछे हट जाती है॥ २८॥

तेजस्वीति साध्वसम्॥ २९॥

तेजस्विता का भय—यह तेजस्वी (प्रभावशाली) व्यक्ति है—इस भय से भी स्वयं पीछे हट जाती है॥ २९॥

चण्डवेगः समर्थो वेति भयं मृग्याः॥ ३०॥

प्रचण्ड काम की शङ्का—मृगी (चोटी योनि वाली) स्त्री, पुरुष को चण्डवेग और अश्व जाति का समझकर भी भयभीत हो उठती है॥ ३०॥

नागरकः कलासु विचक्षण इति व्रीडा॥ ३१॥

कलानिष्णात से सङ्कोच—यह रसिक है, कलाओं में निष्णात है और मैं अविदग्ध (ग्रामीण)—इस सङ्कोच से भी स्त्री परपुरुष से विमुख हो जाती है॥ ३१॥

सखित्वेनोपचरित इति च॥ ३२॥

पुरातन मैत्रीभाव—मैंने अब तक इसके साथ मैत्री सम्बन्ध निभाया है—यह भाव भी स्त्री को परपुरुष में प्रवृत्त होने से रोकता है॥ ३२॥

अदेशकालज्ञ इत्यसूया॥ ३३॥

नायक की विवेकहीनता—यह देश और काल को नहीं समझता—इस घृणा से भी अपनी इच्छा छोड़ देती है॥ ३३॥

परिभवस्थानमित्यबहुमानः॥ ३४॥

निन्द्य से बचना—यह मिन्दा का पात्र है—ऐसा समझकर उसका अनादर कर देती है॥ ३४॥

आकारितोऽपि नावबुध्यत इत्यवज्ञा॥ ३५॥

अविदग्ध से दूरी—यह पुरुष सङ्केत को नहीं समझता, अतः अविदग्ध (मूर्ख) है—यह जानकर भी उसकी अवज्ञा कर देती है॥ ३५॥

शशो मन्दवेग इति च हस्तिन्याः॥ ३६॥

मन्दकाम की शङ्का—यह शश जाति का और मन्दवेग है, यह समझकर हस्तिनी जाति की और चण्डवेग स्त्री पीछे हट जाती है॥ ३६॥

मत्तोऽस्य मा भूदनिष्टमित्यनुकम्पा॥ ३७॥

अनिष्ट की आशङ्का—मेरे कारण इसका कुछ अनिष्ट न हो जाये—इस अनुकम्पा से भी स्त्री विरत हो जाती है॥ ३७॥

आत्मनि दोषदर्शनान्निर्वेदः॥ ३८॥

अपने दोषों पर दृष्टि—अपने में दोष देखकर भी स्त्री परपुरुष से विरक्त हो जाती है॥ ३८॥

विदिता सती स्वजनबहिष्कृता भविष्यामीति भयम्॥ ३९॥

बहिष्कार का भय—अवैध सम्बन्धों का पता लग जाने पर परिवार द्वारा बहिष्कृत कर दी जाऊँगी—इस भय से भी स्त्री परपुरुष में प्रवृत्त नहीं होती॥ ३९॥

पलित इत्यनादरः॥ ४०॥

परपुरुष की वृद्धता—परपुरुष को वृद्ध देखकर भी उसका अनादर कर देती है॥ ४०॥

पत्या प्रयुक्तः परीक्षत इति विमर्शः॥ ४१॥

पति द्वारा परीक्षा की शङ्का—कहीं इसे मेरे पति ने ही मेरी परीक्षा के लिये न भेजा हो—यह सोचकर भी वह परपुरुष से विमुख हो जाती है॥ ४१॥

धर्मापेक्षा चेति॥ ४२॥

धर्म की मर्यादा का ध्यान—धर्म की मर्यादा को समझकर भी स्त्री कुमार्ग से निवृत्त हो जाती है॥ ४२॥

तेषु यदात्मनि लक्षयेत् तदादित एव परिच्छिन्द्यात्॥ ४३॥

प्रतिकार के उपाय—इनमें से जिन कारणों को पुरुष (उपपति) अपने में देखे, उन्हें पहले ही दूर कर दे॥ ४३॥

आर्यत्वयुक्तानि रागवर्धनात्॥ ४४॥

श्रेष्ठता को अनुराग से हटाये—श्रेष्ठता (आर्यत्व) से उत्पन्न कारणों को अनुराग बढ़ाकर हटाये॥ ४४॥

अशक्तिजान्युपायप्रदर्शनात्॥ ४५॥

दोषदर्शन का उपाय—मिलन में जिन दोषों को देखकर स्त्री विमुख हो रही हो, उन दोषों को दूर करने का उपाय पुरुष उसे बता दे॥ ४५॥

बहुमानकृतान्यतिपरिचयात्॥ ४६॥

बहुमानजन्य कारणों का उपाय—बहुमान से उत्पन्न कारणों को अतिपरिचय से दूर कर दे॥ ४६॥

परिभवकृतान्यतिशौण्डीर्याद, वैचक्षण्याच्च॥ ४७॥

परिभवजन्य कारणों का उपाय—परिभव की भावना से उत्पन्न कारणों को व्यवहार-कुशलता और कामशास्त्र की निपुणता दिखाकर दूर कर दें॥ ४७॥

तत्परिभवजानि प्रणत्या॥ ४८॥

अपने प्रति जो अविश्वास की भावना हो, उसे विनम्रता से दूर कर दे॥ ४८॥

भययुक्तान्याश्वासनादिति॥ ४९॥

भयनिवारण—भय से उत्पन्न कारणों को आश्वासन देकर दूर कर दे॥ ४९॥

पुरुषास्त्वमी प्रायेण सिद्धाः—कामसूत्रज्ञः कथाख्यानकुशलो बाल्यात्प्रभृति संसृष्टः प्रवृद्धयौवनः क्रीडनकर्मादिनागतविश्वासः प्रेषणस्य कर्तोचितसम्भाषणः प्रियस्य कर्तान्यस्य भूतपूर्वो दूतो मर्मज्ञ उत्तमया प्रार्थितः सख्या प्रच्छन्नं संसृष्टः सुभगाभिख्यातः सहसंवृद्धः प्रातिवेश्यः कामशीलस्तथाभूतश्च परिचारको धात्रेयिकापरिग्रहो नववरकः प्रेक्षोद्यानत्यागशीलो वृष इति सिद्धप्रतापः साहसिकः शूरो विद्यारूपगुणोपभोगैः पत्युरतिशयिता महार्हवेषोप-चारश्चेति॥ ५०॥

स्त्रीसिद्धपुरुष प्रकरण—प्रायः निम्नलिखित पुरुष परकीया को सिद्ध करने में निपुण होते हैं—कामसूत्र का ज्ञाता, कथा और आख्यान कहने में निपुण, बाल्यकाल का सहचर, भरपूर यौवन सम्पन्न, खेलने का विश्वासी (खिलाड़ी), यथोक्तकारी (जैसा कहो, वैसा ही मान लेने वाला), सन्तुलित बोलने वाला, मनोवाञ्छित वस्तु लाकर देने वाला, जो पहले किसी अन्य प्रेमी का दूत रहा हो, जो किसी सुन्दर स्त्री का प्रेम प्राप्त कर चुका हो, जो सखी से गुप्तरूप से मिल चुका हो, जो अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध हो, जिसका स्त्री (नायिका) के साथ लालन-पालन हुआ हो, कामी पड़ौसी, कामी नौकर, धाय की लड़की का पति, नया दामाद, जो नृत्यनाट्य देखने और वनविहार (पिकनिक) आदि में रुचि रखता हो, त्यागशील (स्त्रियों को भेंट देने वाला), हृष्टपुष्ट एवं साहसी, शूरवीर, जो विद्या रूप गुण और उपभोगों में स्त्री के पति से बढ़कर हो, सुन्दर वेश वाला, कामकलाओं में निपुण और मर्मज्ञ हो॥ ५०॥

यथात्मानः सिद्धतां पश्येदेवं योषितोऽपि॥ ५१॥

अयत्नसाध्ययोषित्-प्रकरण—जिस प्रकार पुरुष अपने उपायों की सफलता पर विचार करता है कि मैं सफल हो सकता हूँ या नहीं, उसी प्रकार उसे वांछित स्त्री (परकीया या नायिका) के विषय में भी विचार करना चाहिये कि यह सिद्ध हो सकती है अथवा नहीं॥ ५१॥

अयत्नसाध्या योषितस्त्विमाः—अभियोगमात्रसाध्याः। द्वारदेशावस्थायिनी। प्रासादाद्राजमार्गावलोकिनी। तरुणप्रातिवेश्यगृहे गोष्ठीयोजिनी। सततप्रेक्षिणी। प्रेक्षिता पार्श्वविलोकिनी। निष्कारणं सपत्न्याधिविन्ना। भर्तृद्वेषिणी विद्विष्टा च। परिहारहीना। निरपत्या॥ ५२॥

विना प्रयत्न के सिद्ध होने वाली स्त्रियाँ—ये स्त्रियाँ विना विशेष प्रयत्न के, केवल साधारण अभियोग से ही सिद्ध हो जाती है—सदैव द्वार पर खड़ी रहरने वाली, भवन की छत से सड़क पर सदैव झाँकने वाली, तरुण पड़ोसी से जाकर गप्पें लड़ाने वाली, आने जाने वालों को निरन्तर देखते रहने वाली, देखे जाने पर तिरछी निगाह से देखने वाली, जिसके पति ने अकारण दूसरा विवाह कर लिया हो, पति से द्वेष करने वाली, जिसका पति उससे द्वेष रखता हो, जिसे कोई नियन्त्रित करने वाला न हो और जो सन्तानरहित हो॥ ५२॥

ज्ञातिकुलनित्या। विपन्नापत्या। गोष्ठीयोजिनी। प्रीतियोजिनी। कुशीलव-भार्या। मृतपतिका बाला। दरिद्रा बहूपभोगा। ज्येष्ठभार्या बहुदेवरका। बहुमानिनी न्यूनभर्तृका। कौशलाभिमानिनी भर्तुर्मौर्ख्येणोद्विग्ना। अविशेषतया लोभेन॥ ५३॥

जो सदैव पितृगृह में ही रहती हो, जिसके बच्चे होकर मर जाते हों, जिसे गप्पें मारने में रुचि हो, जो सबसे मित्रता जोड़ती फिरती हो, नृत्यनाट्य करने वालों की स्त्रियाँ, बालविधवा, दरिद्र होकर भी भोगविलासों की आकांक्षा रखने वाली, अनेक देवरों वाली, जो अपने रूप गुण के अभिमान में पति को हीन मानने वाली हो, जो अपने कलाकौशल का अत्यधिक अभिमान रखती हो और पति की मूर्खता से पीड़ित हो तथा जो पति पर मुग्ध न होकर किसी अन्य को चाहती हो॥ ५३॥

कन्याकाले यत्नेन वारिता कथञ्चिदलब्धाभियुक्ता च सा तदानीम्। समान-बुद्धिशीलमेधाप्रतिपत्तिसात्म्या। प्रकृत्या पक्षपातिनी। अनपराधे विमानिता। तुल्यरूपाभिश्चाधः कृता। प्रोषितपतिकेति। ईर्ष्यालुपूतिचोक्षक्लीबदीर्घसूत्रका-पुरुषकुब्जवामनविरूपमणिकारग्राम्यदुर्गन्धिरोगिवृद्धभार्याश्चेति॥ ५४॥

जिसे मनोवाञ्छित पति न मिला हो, जिसकी बुद्धि शील मेधा और प्रतिपत्ति नायक के समान हो, जो स्वभावतः पक्षपात रखती हो, जो निरपराध होकर भी अपमानित की गयी हो, जो समानता रखने वाली सपत्नियों द्वारा अपमानित की गयी हो, जिसका पति विदेश गया हुआ हो, जिसका पति प्रेम न रखकर ईर्ष्या करता हो, जिसका पति मलिन या निम्न जाति का हो, नपुंसक हो, आलसी हो, कायर हो, कुबड़ा हो, बौना हो, कुरूप हो, जौहरी हो, गँवार हो, रोगी हो, दुर्गन्ध वाला हो और बुड्ढा हो—ऐसी स्त्रियाँ प्रायः व्यभिचारिणी बन जाती हैं॥ ५४॥

श्लोकावत्र भवतः—

इच्छा स्वभावतो जाता क्रियया परिवृंहिता।
बुद्ध्या संशोधितोद्वेगा स्थिरा स्यादनपायिनी॥ ५५॥

उपसंहार—इस विषय में दो आनुवंश्य श्लोक उद्धृत करते हैं—

पुरुष सुन्दर स्त्री को चाहता है और स्त्री सुन्दर पुरुष को—यह इच्छा स्वभावतः उत्पन्न होती है। ये सहज कामनाएँ परिचय और अभियोगों द्वारा बढ़ायी जा सकती हैं और बुद्धि से उद्वेगों का संशोधन कर इस प्रकार की कामनाएँ स्थायी बनायी जा सकती हैं॥ ५५॥

सिद्धतामात्मनो ज्ञात्वा लिङ्गान्युन्नीय योषिताम्।
व्यावृत्तिकारणोच्छेदी नरो योषित्सु सिध्यति॥ ५६॥

अपनी सफलता को जानकर, स्त्री के सङ्केतों एवं चेष्टाओं का अनुमान करके, अतिपरिचय, अनुराग आदि से प्रतिबन्धकों को दूर करके पुरुष परकीया स्त्रियों को सिद्ध करने में सफल हो जाता है॥ ५६॥

स्त्री-पुरुषशीलावस्थापन प्रकरण नामक प्रथम अध्याय सम्पन्न॥

●

द्वितीय अध्याय
परिचयकारणाभियोगप्रकरण

यथा कन्या स्वयमभियोगसाध्या न तथा दूत्या। परस्त्रियस्तु सूक्ष्मभावा दूतीसाध्या न तथात्मनेत्याचार्याः॥ १॥

जिस प्रकार कन्या स्वयं अपने उपायों से सिद्ध की जा सकती है, उस तरह दूती द्वारा नहीं। सूक्ष्म भावों से सम्पन्न परकीया जिस प्रकार दूती द्वारा सिद्ध की जा सकती है, उस तरह अपने उपायों से नहीं—यह कामशास्त्र के आचार्यों का मत है॥ १॥

सर्वत्र शक्तिविषये स्वयं साधनमुपपन्नतरकं दुरुपपादत्वात्तस्य दूतीप्रयोग इति वात्स्यायनः॥ २॥

यदि सम्भव हो, तो सर्वत्र स्वयं उपाय करना दूती की अपेक्षा श्रेष्ठ है। यदि स्वयं उपाय करना सम्भव न हो, तो दूती का प्रयोग करना चाहिये—यह आचार्य वात्स्यायन का मत है॥ २॥

प्रथमसाहसा अनियन्त्रणसम्भाषाश्च स्वयं प्रतार्याः। तद्विपरीताश्च दूत्येति प्रायोवादः॥ ३॥

जिस स्त्री का चरित्र प्रथम बार खण्डित हुआ हो और जिससे स्वयं बात की जा सकती हो, उसे स्वयं ही सिद्ध कर लेना चाहिये। इसके विपरीत, यदि नायिका का चरित्र अनेक बार खण्डित हो चुका हो और उससे वार्तालाप सम्भव न हो, तो उसे दूती के माध्यम से सिद्ध करना चाहिये॥ ३॥

स्वयमभियोक्ष्यमाणस्त्वादावेव परिचयं कुर्यात्॥ ४॥

यदि नायक स्वयं उपाय करना चाहे, तो पहले नायिका से परिचय करे, सम्बन्ध बढ़ाये। परिचय का आशय है भली प्रकार दर्शन, भेंट या जान-पहचान। यह स्वयं भी हो सकता है और दूती के माध्यम से भी॥ ४॥

तस्याः स्वाभाविकं दर्शनं प्रायत्निकं च॥ ५॥

दर्शनभेद—दर्शन दो प्रकार का होता है—स्वाभाविक और प्रायत्निक। जो दर्शन सहज भाव से हो, वह स्वाभाविक है और जो उपायों द्वारा सम्भव हो, वह प्रायत्निक है॥ ५॥

स्वाभाविकमात्मनो भवनसन्निकर्षे प्रायत्निकं मित्रज्ञातिमहामात्रवैद्यभवन-सन्निकर्षे विवाहयज्ञोत्सवव्यसनोद्यानगमनादिषु॥ ६॥

अपने भवन के निकट आती-जाती नायिका को देख लेना स्वाभाविक दर्शन है। मित्र, जाति, महामन्त्री और वैद्य के घर के निकट अथवा विवाह, उत्सव, यज्ञ, दुःख (सङ्कट), वनविहार (पिकनिक) आदि में देखना प्रायत्निक है॥ ६॥

दर्शने चास्याः सततं साकारं प्रेक्षणं केशसंयमनं नखाच्छुरणमाभरणप्रह्लादन-मधरौष्ठविमर्दनं तास्ताश्च लीला वयस्यैः सह प्रेक्षमाणायास्तत्सम्बद्धाः परापदे-शिन्यश्च कथास्त्यागोपभोगप्रकाशनं सख्युरुत्सङ्गनिषण्णस्य साङ्गभङ्गं जृम्भण-

मेकभ्रूक्षेपणं मन्दवाक्यता तद्वाक्यश्रवणं तामुद्दिश्य बालेनान्यजनेन वा सहान्योपदिष्टा द्व्यर्था कथा तस्यां स्वयं मनोरथावेदनमन्यापदेशेन तामेवोद्दिश्य बालचुम्बनमालिङ्गनं च जिह्वया चास्य ताम्बूलदानं प्रदेशिन्या हनुदेशघट्टनं तत्तद्यथायोगं यथावकाशं च प्रयोक्तव्यम्॥ ७॥

बाह्य परिचय—नायिका का दर्शन मुख और नेत्रों की भावसूचक चेष्टाओं के साथ ही करना चाहिये। उसे देखते समय बार बार अपने बालों को ठीक करे या सहलाये, नखों से खुजाये, आभूषणों को ठीक करे, अपने अधर को मसले और अपने समवयस्क मित्रों के साथ उसके देखते हुए ही उन उन लीलाओं को करे। अन्य के बहाने उसकी बात करे, अपनी त्यागशीलता और भोगविलासों को प्रकट करे, मित्र की गोद में लेटकर अँगड़ाई और जम्हाई लेता हुआ उसकी ओर भौंहे नचाये। धीरे से बोले और उसकी बातें सुनने का प्रयत्न करे। उसको लक्ष्य करके बालक का चुम्बन और आलिङ्गन करे, बालक को जीभ से पान दे, तर्जनी अंगुलि से उसके कपोलों को गुदगुदाये। समय और स्थान देखकर इन योगों में जिनका प्रयोग कर सके, उनका प्रयोग करे॥ ७॥

तस्याश्चाङ्कगतस्य बालस्य लालनं बालक्रीडनकानां चास्य दानं ग्रहणं तेन सन्निकृष्टत्वात्कथायोजनं तत्संभाषणक्षमेण जनेन च प्रीतिमासाद्य कार्यं तदनुबन्धं च गमनागमनस्य योजनं संश्रये चास्यास्तामपश्यतो नाम कामसूत्रसङ्कथा॥ ८॥

नायिका की गोद में बैठे बालक को प्यार करे, उसे खेलने के लिये खिलौने दे और फिर उन्हें ले ले। पास आकर उससे बातें करे। जो व्यक्ति उस नायिका से बातें कर सकता हो, उससे सम्बन्ध स्थापित कर ले और अपना प्रयोजन सिद्ध करने का प्रयास करे। किसी काम का बहाना निकालकर नायिका के घर आवागमन प्रारम्भ कर दे। एकान्त में बैठकर कामसूत्र की ऐसी कथा-वार्ताएँ करे जिन्हें नायिका सुन सके, किन्तु यह न समझ पाये कि यह मुझे देखकर या लक्ष्य कर ही ये रससिक्त कथा-वार्ताएँ कर रहा है॥ ८॥

प्रसृते तु परिचये तस्या हस्ते न्यासं निक्षेपं च निदध्यात्। तत्प्रतिदिनं प्रतिक्षणं चैकदेशतो गृह्णीयात्। सौगन्धिकं पूगफलानि च॥ ९॥

आभ्यन्तर परिचय—परिचय बढ़ जाने पर उस नायिका के हाथ में न्यास और निक्षेप कर दे। तत्पश्चात् प्रतिदिन या प्रतिक्षण अंशरूप में उससे ग्रहण करता चले। इत्र, सुपारी आदि वस्तुएँ प्रतिदिन दी जाती हैं॥ ९॥

तामात्मनो दारैः सह विस्रम्भगोष्ठ्यां विविक्तासने च योजयेत्॥ १०॥

उसे अपने घर की स्त्रियों के साथ एकान्त में वार्तालाप और खान पान में लगा दे॥ १०॥

नित्यदर्शनार्थं विश्वासनार्थं च॥ ११॥

सदैव ऐसे प्रयत्न करे कि नायिका प्रतिदिन दीखती रहे तथा प्रेम और विश्वास बढ़ता रहे॥ ११॥

सुवर्णकारमणिकारवैकटिकनीलीकुसुम्भरञ्जकादिषु च कामार्थिन्यां सहात्मनो वश्यैश्चैषां तत्सम्पादने स्वयं प्रयतेत॥ १२॥

सुनार, रत्नकार, वैकटिक (रत्नपरिशोधक या रत्नों का शोधन करने वाले अथवा उन्हें सुन्दर आकार देने वाले), नीलगर, रंगरेज, बढ़ई आदि से यदि नायिका का कोई काम पड़े, तो नायक अपने परिचितों द्वारा उस कार्य को कराने का दायित्व स्वयं ले ले॥ १२॥

तदनुष्ठाननिरतस्य लोकविदितो दीर्घकालं सन्दर्शनयोगः॥ १३॥

ऐसे कार्य करते हुए नायक को नायिका के निकट आने का अवसर मिलता है और निकटवर्ती लोग वास्तविकता को बहुत देर से समझ पाते हैं॥ १३॥

तस्मिंश्चान्येषामपि कर्मणामनुसन्धानम्॥ १४॥

नायिका का एक कार्य पूर्ण न होने पाये कि दूसरे कार्य को खोज ले॥ १४॥

येन कर्मणा द्रव्येण कौशलेन चार्थिनी स्यात्तस्य प्रयोगमुत्पत्तिमागममुपायं विज्ञानं चात्मायत्तं दर्शयेत्॥ १५॥

उस नायिका को जिस कार्य, द्रव्य और कौशल की इच्छा हो, उसके प्रयोग, उत्पत्ति, आगम, उपाय और विज्ञान को अपने अधीन दिखा दे॥ १५॥

पूर्वप्रवृत्तेषु लोकचरितेषु द्रव्यगुणपरीक्षासु च तया तत्परिजनेन च सह विवादः॥ १६॥

पुरातन रीतिरिवाजों एवं वस्तुओं के गुणों की परीक्षा में उसके तथा उसके परिजनों के साथ वादविवाद करे। इससे सङ्कोच दूर होता है॥ १६॥

तत्र निर्दिष्टानि पणितानि तेष्वेनां प्राश्निकत्वेन योजयेत्॥ १७॥

इस वादविवाद में वस्तु का जो मूल्य लगाया जाये, उसके पूछने के लिये नायिका को लगा दे॥ १७॥

तया तु विवदमानोऽत्यन्ताद्भुतमिति ब्रूयादिति परिचयकारणानि॥ १८॥

नायिका के साथ विवाद करता हुआ उसे विदुषी और बुद्धिमती बताये। ये परिचय के कारण हैं॥ १८॥

कृतपरिचयां दर्शितेङ्गिताकारां कन्यामिवोपायतोऽभियुञ्जीतेति। प्रायेण तत्र सूक्ष्मा अभियोगाः। कन्यानामसम्प्रयुक्तत्वात्। इतरासु तानेव स्फुटमुपदध्यात्। सम्प्रयुक्तत्वात्॥ १९॥

अभियोगप्रकरण—जिस स्त्री से भलीभाँति परिचय हो गया हो, जिसने अनुकूल सङ्केत और चेष्टाएँ दिखा दी हों, उसे कन्यासम्प्रयुक्तक अधिकरण में कहे गये कन्या को सिद्ध करने के उपायों द्वारा ही प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि कन्याएँ सम्भोग की हुई नहीं होतीं, इसलिये उन्हें प्राप्त करने के लिये सूक्ष्म उपाय ही किये जाते हैं। किन्तु जो कन्याओं के अतिरिक्त हैं, विवाहिताएँ हैं और सम्भोग कर चुकी होती हैं अथवा विवाह से पूर्व भी अनेक व्यक्तियों से सम्भोग करा चुकी हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिये प्रकट उपाय करने चाहियें॥ १९॥

सन्दर्शिताकारायां निर्भिन्नसद्भावायां समुपभोगव्यतिकरे तदीयान्युपयुञ्जीत॥ २०॥

जिस परकीया ने मुख और नेत्रों की प्रसन्नता और लालिमा से अपना हृदयस्थ अनुराग

प्रकट कर दिया हो, जिसका स्नेह सद्भाव प्रकट हो चुका हो, उसकी वस्तुओं का उपभोग प्रेमी करे और प्रेमी की वस्तुओं का उपभोग वह स्वयं करे अर्थात् प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे की वस्तुओं को उपभोग करें॥ २०॥

तत्र महार्हगन्धमुत्तरीयं कुसुमं स्यादङ्गुलीयकं च। तद्धस्ताद् गृहीतताम्बूलया गोष्ठीगमनोद्यतस्य केशहस्तपुष्पयाचनम्॥ २१॥

उपभोग की वस्तुओं का आदान-प्रदान प्रारम्भ होने पर नायक, नायिका से बहुमूल्य सुगन्धित वस्तु (इत्र या सेंट), उत्तरीय (शाल या दुपट्टा), पुष्प और अँगूठी ग्रहण कर ले। जब वह अपने हाथ से पान खा ले, तो गोष्ठी में जाने के लिये तैयार होकर उसके केशपाश (जूड़े) में खोंसे गये सुगन्धित फूल (गज़रा) माँगे॥ २१॥

तत्र महार्हगन्धं स्पृहणीयं स्वनखदशनपदचिह्नितं साकारं दद्यात्॥ २२॥

ज़ब नायक बहुमूल्य सुगन्धित वस्तु (इत्र आदि) व अन्य मनोवांछित वस्तुएँ नायिका को दे, तो उन पर अपने नखों एवं दाँतों के चिह्न अङ्कित कर दे॥ २२॥

अधिकैरधिकैश्चाभियोगैः साध्वसविच्छेदनम्॥ २३॥

नायक को चाहिये कि उत्तरोत्तर अधिकाधिक उपाय करता हुआ उसके भय को दूर कर दे॥ २३॥

क्रमेण च विविक्तदेशे गमनमालिङ्गनं चुम्बनं ताम्बूलस्य ग्राहणं दानान्ते द्रव्याणां परिवर्तनं गुह्यदेशाभिमर्शनं चेत्यभियोगाः॥ २४॥

आन्तरिक अभियोग—क्रमशः एकान्त में मिलना, आलिङ्गन, चुम्बन, पान लेना और देना, वस्तुओं का परिवर्तन और नायिका के गुह्याङ्गों का स्पर्श—ये अभियोग होने चाहिये॥ २४॥

यत्र चैकाभियुक्ता न तत्रापरामभियुञ्जीत॥ २५॥

अभियोगहेतु अनुपयुक्त स्थल—जिस स्थान पर एक परकीया से मिलन हो चुका हो, उस स्थान पर दूसरी परकीया से नहीं मिलना चाहिये॥ २५॥

तत्र या वृद्धानुभूतविषया प्रियोपग्रहैश्च तामुपगृह्णीयात्॥ २६॥

गृहस्वामिनी की अनुकूलता अनिवार्य—जहाँ परकीया के साथ रमण करना हो, वहाँ यदि कोई खेली खायी वृद्धा हो, तो दे दिलाकर उसे अवश्य अनुकूल बना लेना चाहिये॥ २६॥

श्लोकावत्र भवतः—

अन्यत्र दृष्टसञ्चारस्तद्भर्ता यत्र नायकः।
न तत्र योषितं काञ्चित् सुप्रापामपि लङ्घयेत्॥ २७॥

अनुपयुक्त घर—जिस घर में नायिका के पति ने किसी अन्य स्त्री का व्यभिचार देखा या सुना हो, वहाँ सरलता से प्राप्त होने वाली किसी स्त्री के साथ भी नहीं मिलना चाहिये॥ २७॥

शङ्कितां रक्षितां भीतां सश्वश्रूकां च योषितम्।
न तर्कयेत मेधावी जानन् प्रत्ययमात्मनः॥ २८॥

अनुपयुक्त स्त्रियाँ—बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि शङ्कित हृदय वाली, सशक्त पुरुषों द्वारा रक्षित, पति से भयभीत एवं सास ससुर वाली स्त्री की भूल कर भी कामना न करे॥ २८॥

परिचयकारणाभियोग प्रकरण नामक द्वितीय अध्याय सम्पन्न॥

●

तृतीय अध्याय

भावपरीक्षाप्रकरण

अभियुञ्जानो योषितः प्रवृत्तिं परीक्षेत। तया भावः परीक्षितो भवति। अभियोगाँश्च प्रतिगृह्णीयात्॥ १॥

सूक्ष्म निरीक्षण आवश्यक—अभियोग करता हुआ नायक स्त्री की प्रवृत्ति की परीक्षा करे, उसी से भाव की परीक्षा हो जाती है, और वह जो उपाय करे, उसका उत्तर दे॥ १॥

मन्त्रमवृण्वानां दूत्यैनां साधयेत्॥ २॥

प्रगल्भा दूती द्वारा ही साध्य—हृदय का भाव प्रकटित न करने वाली, धीर परकीया को, रहस्य न कहने वाली, चतुर दूती से ही सिद्ध करना चाहिये॥ २॥

अप्रतिगृह्याभियोगं पुनरपि संसृज्यमानां द्विधाभूतमानसां विद्यात्। तां क्रमेण साधयेत्॥ ३॥

द्विधाग्रस्त—जो स्त्री नायक के अभियोग को अस्वीकार करके भी उससे पुनः मिलती है, उसे दुविधा में फँसी हुई समझना चाहिये। उसे क्रमशः सिद्ध करना चाहिये॥ ३॥

अप्रतिगृह्याभियोगं सविशेषमलंकृता च पुनर्दृश्येत तथैव तमभिगच्छेच्च विविक्ते बलाद् ग्रहणीयां विद्यात्॥ ४॥

बलात् ग्राह्य—जो स्त्री नायक के अभियोगों को स्वीकार किये विना भी पहले की अपेक्षा वस्त्राभूषणों से अधिक सज सँवरकर आये, तो नायक को उससे पहले के समान ही मिलने का प्रयास करना चाहिये। यदि वह फिर भी हाथ न रखने दे और सज सँवर कर भी आती रहे, तो उसे एकान्त में बलपूर्वक सम्भोग कराने वाली समझना चाहिये॥ ४॥

बहूनपि विषहतेऽभियोगान्न च चिरेणापि प्रयच्छत्यात्मानं सा शुष्क-प्रतिग्राहिणी परिचयविघटनसाध्या॥ ५॥

अतिपरिचय से साध्य—जो स्त्री अनेक अभियोगों को सहन कर ले और चिरकाल तक भी सम्भोग न होने दे, उसे नीरस अभियोग वाली जानना चाहिये। ऐसी स्त्री अतिपरिचय से ही सिद्ध की जा सकती हैं॥ ५॥

मनुष्यजातेश्चित्तानित्यत्वात्॥ ६॥

मानव का चित्त अत्यन्त चञ्चल होता है, अतः वह परिचय टूटने पर पुनः परिचय कर लेता है॥ ६॥

अभियुक्तापि परिहरति, न च संसृज्यते। न च प्रत्याचष्टे। तस्मिन्नात्मनि च गौरवाभिमानात्। सातिपरिचयात् कृच्छसाध्या। मर्मज्ञया दूत्या तां साधयेत्॥ ७॥

मर्मज्ञ दूती से साध्य—कोई कोई स्त्री परपुरुष से कई कई बार मिलकर भी फिर मिलना छोड़ देती है, न सम्भोग का अवसर ही देती है और न स्पष्ट ना ही करती है तथा इसी में अपना गौरव समझती है। उसे अतिपरिचय से कठिनतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है या मर्मज्ञ दूती द्वारा साधा जा सकता है॥ ७॥

सा चेदभियुज्यमाना पारुष्येण प्रत्यादिशत्युपेक्ष्या॥ ८॥

उपेक्षणीया—जो स्त्री नायक द्वारा अभियोग किये जाने पर निष्ठुरतापूर्वक उत्तर दे दे, उसकी उपेक्षा कर देनी चाहिये॥ ८॥

परुषयित्वापि तु प्रीतियोजिनीं साधयेत्॥ ९॥

विशेष बात—जो स्त्री कठोर वचन कहकर भी प्रेमसम्बन्ध बनाना चाहे, उसे अभियोगों से सिद्ध कर लेना चाहिये॥ ९॥

कारणात् संस्पर्शनं सहते नावबुध्यते नाम द्विधाभूतमानसा सातत्येन क्षान्त्या वा साध्या॥ १०॥

अङ्गस्पर्श से साध्य—जो स्त्री किसी कारणवश अङ्गस्पर्श को इस प्रकार सहती हो मानो कुछ जानती ही न हो, दुविधा में फँसी हुई ऐसी स्त्री को निरन्तर स्पर्श (आलिङ्गन आदि) से सिद्ध किया जा सकता है॥ १०॥

समीपे शयानायाः सुप्तो नाम करमुपरि विन्यसेत्। सापि सुप्तेवोपेक्षते। जाग्रती त्वपनुदेद् भूयोऽभियोगाकांक्षिणी॥ ११॥

अधिक अभियोग चाहने वाली की पहचान—समीप में सोयी हुई सी नायिका के ऊपर सोया हुआ सा नायक अपना हाथ रख दे। वह भी सोती हुई के समान उपेक्षा कर देगी, किन्तु अधिक अभियोग को इच्छा रखने वाली नायक के हाथ को तुरन्त हटा देती है॥ ११॥

एतेन पादस्योपरि पादन्यासो व्याख्यातः॥ १२॥

पादन्यास—इसी कथन से पैर पर पर रखना भी कह दिया गया है॥ १२॥

तस्मिन् प्रसृते भूयः सुप्तसंश्लेषणमुपक्रमेत्॥ १३॥

सुप्त आलिङ्गन—जब नायक निःशङ्क होकर नायिका के हाथ पर और पैर पर पैर रखने लगे तो सोते हुए आलिङ्गन भी प्रारम्भ कर देना चाहिये॥ १३॥

तदसहमानामुत्थितां द्वितीयेऽहनि प्रकृतिवर्तिनीमभियोगार्थिनीं विद्यात्। अदृश्यमानां तु दूतीसाध्याम्॥ १४॥

प्रगल्भा—यदि आलिङ्गन करते ही स्त्री उठ खड़ी हो और दूसरे दिन शान्त या सामान्य ही हो, तो उसे अधिक अभियोग चाहने वाली समझे, अतएव उसकी प्राप्ति के लिये अभियोग करे। यदि दूसरे दिन भी वह असामान्य या कुपित दिखायी दे, तो उसे दूती से सिद्ध करने का प्रयास करे॥ १४॥

चिरमदृष्टापि प्रकृतिस्थैव संसृज्यते कृतलक्षणां तां दर्शिताकारामुपक्रमेत्॥ १५॥

आलिङ्गन को न सहकर शैय्या से उठी हुई नायिका यदि बहुत दिनों बाद शान्तभाव से मिलती है, तो उसके सङ्केत और हाव-भाव दिखाने पर पुनः अभियोग प्रारम्भ कर देना चाहिये॥ १५॥

अनभियुक्ताप्याकारयति। विविक्ते चात्मानं दर्शयति। सवेपथुगद्गदं वदति। स्विन्नकरचरणाङ्गुलिः स्विन्नमुखी च भवति। शिरःपीडने संवाहने चोर्वोरात्मानं नायके नियोजयति॥ १६॥

अनुरागिणी—जो विना अभियोग किये भी हाव-भाव दिखाती हो, एकान्त में अपने गुह्याङ्गों को दिखाती हो, कम्पनयुक्त वाणी से गद्गद वचन बोलती हो, जिसके हाथ-पैर और मुख पर पसीना आता हो, जो नायक के सिर और पैर दबाने लगती हो—उसे नायक की अनुरागिणी समझना चाहिये॥ १६॥

आतुरासंवाहिका चैकेन हस्तेन संवाहयन्ती द्वितीयेन बाहुना स्पर्शमावेदयति श्लेषयति च। विस्मितभावा॥ १७॥

कामातुर होकर वह एक हाथ से तो अपना पैर दबाती जाती है और विस्मृत सी हो कर दूसरे हाथ से स्पर्श करने लगती है॥ १७॥

निद्रान्धा वा परिस्पृश्योरुभ्यां बाहुभ्यामपि तिष्ठति। अलिकैकदेशमूर्वोरुपरि पातयति। ऊरुमूलसंवाहने नियुक्ता न प्रतिलोमयति। तत्रैव हस्तमेकमविचलं न्यस्यति। अङ्गसंदंशेन च पीडितं चिरादपनयति॥ १८॥

अथवा नींद का बहाना करके दोनों हाथों से नायक का आलिङ्गन करके घुटनों के बल खड़ी हो जाती है, अपने मस्तक को उसके घुटनों पर टिका देती है, नायक के पैर दबाती हुई हाथों को उसकी जाँघों की ओर बढ़ाती है, नीचे की ओर नहीं लाती, एक हाथ को तो जाँघों के मध्य में ही रखे रहती है और जब नायक उसके हाथ को जाँघों से बलपूर्वक दबाता है, तभी नायक के अप्रसन्न होने के भय से कुछ देर बाद हाथ हटाती है॥ १८॥

प्रतिगृह्यैवं नायकाभियोगान् पुनर्द्वितीयेऽहनि संवाहनायोपगच्छति॥ १९॥

उस दिन इस प्रकार नायक के अभियोगों को ग्रहण कर अगले दिन वह पुनः नायक पैर दबाने आ जाती है॥ १९॥

नात्यर्थं संसृज्यते। न च परिहरति॥ २०॥

न अत्यधिक संसर्ग ही करती है और न नायक को छोड़ती ही है॥ २०॥

विविक्ते भावं दर्शयति निष्कारणं चागूढमन्यत्र प्रच्छन्नप्रदेशात्॥ २१॥

एकान्त में, अकारण ही, हाव भाव दिखाने लगती है और जनसमुदाय के मध्य प्रच्छन्न रूप से भाव दिखाती है॥ २१॥

सन्निकृष्टपरिचारकोपभोग्या सा चेदाकारितापि तथैव स्यात् सा मर्मज्ञया दूत्या साध्या॥ २२॥

मर्मज्ञ दूती द्वारा साध्य—जो नायिका नायक के पास रहकर, सेवा करके भोगने योग्य हो, वह हाव भाव दिखाने पर भी ज्यों की त्यों ही रहती है, वह उसके रहस्यों को जानने वाली दूतों के द्वारा ही सिद्ध की जा सकती है॥ २२॥

व्यावर्तमाना तु तर्कणीयेति भावपरीक्षा॥ २३॥

सम्यक् परीक्षा आवश्यक—जो नायिका संकेत करती हुई भी मिलने से पीछे हट जाये, उस पर विचार करना चाहिये कि यह आन्तरिक मन से सङ्केत कर रही है या नायक को मूर्ख बनाने का आनन्द ले रही है। इस प्रकार भावपरीक्षा पूर्ण हुई॥ २३॥

भवन्ति चात्र श्लोका:—

आदौ परिचयं कुर्यात्ततश्च परिभाषणम्।
परिभाषणसम्मिश्रं मिथश्चाकारवेदनम्॥ २४॥

उपसंहार—सर्वप्रथम नायिका से परिचय करना चाहिये। तत्पश्चात् वार्तालाप करना चाहिये और इस वार्तालाप में ही भावों का आदान प्रदान और पहचान हो जानी चाहिये॥ २४॥

प्रत्युत्तरेण पश्येच्चेदाकारस्य परिग्रहम्।
ततोऽभियुञ्जीत नर: स्त्रियं विगतसाध्वस:॥ २५॥

नायक के सङ्केत करने पर नायिका सङ्केत द्वारा उत्तर दे दे तो नायक को निर्भय होकर उस स्त्री की प्राप्ति हेतु अभियोग प्रारम्भ कर देना चाहिये॥ २५॥

आकारेणात्मनो भावं या नारी प्राक्प्रयोजयेत्।
क्षिप्रमेवाभियोज्या सा प्रथमे त्वेव दर्शने॥ २६॥

जो नायिका सङ्केत के साथ साथ अपने मनोभावों को भी जोड़ देती है, वह तो प्रथम दर्शन में ही मिलन के लिये तैयार हो सकती है। अतएव ऐसी नायिका को प्रथम परिचय में ही प्राप्त किया जा सकता है॥ २६॥

श्लक्ष्णमाकारिता या तु दर्शयेत् स्फुटमुत्तरम्।
सापि तत्क्षणसिद्धेति विज्ञेया रतिलालसा॥ २७॥

जो नायिका गुप्त सङ्केत का स्पष्ट उत्तर देती है, रतिलालसा वाली उस नायिका को तो उसी समय सिद्ध समझना चाहिये अर्थात् उसे उसी समय भी प्राप्त किया जा सकता है॥ २७॥

धीरायामप्रगल्भायां परीक्षिण्यां च योषिति।
एष सूक्ष्मो विधि: प्रोक्त: सिद्धा एव स्फुटं स्त्रिय:॥ २८॥

जो नायिका स्वभाव से गम्भीर हो, अपने मनोभावों को व्यक्त न होने दे और नायक की अत्यधिक परीक्षा करती हो—ऐसी स्त्रियों के लिये ही यह सूक्ष्म विधि कही गयी है, क्योंकि वे स्त्रियाँ सिद्ध हैं, यह तो स्पष्ट ही है॥ २८॥

भावपरीक्षाप्रकरण नामक तृतीय अध्याय सम्पन्न॥

●

चतुर्थ अध्याय

दूतीकर्मप्रकरण

दर्शितेङ्गिताकारां तु प्रविरलदर्शनामपूर्वां च दूत्योपसर्पयेत्॥ १॥

दूतियों के कार्य—जिसने सङ्केत और चेष्टाओं से अनुकूलता दिखा दी हो, किन्तु कभी कभी ही दीखे या अपरिचित स्त्री हो, उसे दूती के माध्यम से सिद्ध करना चाहिये॥ १॥

सैनां शीलतोऽनुप्रविश्याख्यानकपटैः सुभगङ्करणयोगैर्लोकवृत्तान्तैः कविकथाभिः पारदारिककथाभिश्च तस्याश्च रूपविज्ञानदाक्षिण्यशीलानुप्रशंसाभिश्च तां रञ्जयेत्॥ २॥

दूती के सामान्य कार्य—दूती जिस स्त्री पर डोरे डालना चाहती हो, उसके घर अपने उत्तम शीलस्वभाव का परिचय देकर प्रवेश करे। तत्पश्चात् कपटपूर्ण आख्यानों से, सौन्दर्यवर्धक योगों से, लोकवृत्तान्तों से, कविकल्पित कथाओं से, परकीया और उपपति-विषयक शृङ्गार सम्बद्ध कहानियों से और उस स्त्री के सौन्दर्य, ज्ञान, शील और चातुर्य की प्रशंसा कर, उसे अनुरागिनी बना ले॥ २॥

कथमेवंविधायास्तवायमित्थम्भूतः पतिरिति चानुशयं ग्राहयेत्॥ ३॥

पति से विद्वेष कराना—'तुम जैसी रूपवती, कलानिपुण एवं व्यवहारकुशल को ऐसा ग्राम्य एवं अरसिक पति कैसे मिला?' यह कहकर उसके हृदय में पति के प्रति घृणा और द्वेष उत्पन्न कर दे॥ ३॥

न तव सुभगे दास्यमपि कर्तुं युक्त इति ब्रूयात्॥ ४॥

'हे सुन्दरि! यह तो तुम्हारा दास होने योग्य भी नहीं है'—ऐसा कहे॥ ४॥

मन्दवेगतामीर्ष्यालुतां शठतामकृतज्ञतां चासम्भोगशीलतां कदर्यतां चपलतामन्यानि च यानि तस्मिन् गुप्तान्यस्या अभ्याशे सति सद्भावेऽतिशयेन भाषेत॥ ५॥

'तुम्हारा पति मन्दवेग है, यह तुम्हारी अनुपम रूपमाधुरी से ईर्ष्या करता है, यह तुमसे कपटपूर्ण आचरण रखता है, यह कृतघ्न है, यह भोगविलास में रुचि नहीं रखता, अपितु उससे उदासीन रहता है, यह कदाचारी और चंचल है'—इन दोषों के अतिरिक्त भी जो अन्य गुप्त दोष उसमें हों, उन सबको पत्नी से कहे। यदि वह विदग्ध और सच्चरित्र हो तो उसमें और भी अधिक दोष दिखाये॥ ५॥

येन च दोषेणोद्विग्नां लक्षयेत्तेनैवानुप्रविशेत्॥ ६॥

जिस दोष को सुनकर नायिका को उद्विग्न देखे, उसी दोष से उसे पति से विमुख कर दे॥ ६॥

यदासौ मृगी तदा नैव शशतादोषः॥ ७॥

दोषकथन में ध्यातव्य बातें—यदि नायिका मृगी जाति की हो तो पुरुष का शश जाति का होना दोष नहीं है॥ ७॥

एतेनैव वडवाहस्तिनीविषयश्चोक्तः ॥ ८ ॥

इसी से वडवा और हस्तिनी का विषय भी कह दिया गया है ॥ ८ ॥

नायिकाया एव तु विश्वास्यतामुपलभ्य दूतीत्वेनोपसर्पयेत् प्रथमसाहसायां सूक्ष्मभावायां चेति गोणिकापुत्रः ॥ ९ ॥

जो नायिका प्रथम बार परपुरुष से मिलने का साहस करती हो या जो अपने हृदयस्थ भावों को प्रस्फुटित न कर रही हो, ऐसी नायिका की विश्वस्त बनकर दूती उसे दौत्यकर्म से अपने घर बुलाये—यह आचार्य गोणिकापुत्र का मत है ॥ ९ ॥

सा नायकस्य चरितमनुलोमतां कामितानि च कथयेत् ॥ १० ॥

नायक के प्रति अनुकूलन—वह दूती नायक की वैभवपूर्ण जीवनगाथा, उसकी सरलता और रमण के आदि, मध्य एवं अन्त के भावों का वर्णन करे ॥ १० ॥

प्रसृतसद्भावायां च युक्त्या कार्यशरीरमित्थं वदेत् ॥ ११ ॥

यदि नायिका को रमणोत्सुक देखे तो युक्तिपूर्वक उससे इस प्रकार कहे ॥ ११ ॥

'श्रृणु विचित्रमिदं सुभगे, त्वां किल दृष्ट्वामुत्रासावित्थं गोत्रपुत्रो नायकश्चित्तोन्मादमनुभवति। प्रकृत्या सुकुमारः कदाचिदन्यत्रापरिक्लिष्ट-पूर्वस्तपस्वी। ततोऽधुना शक्यमनेन मरणमप्यनुभवितुम्'—इति वर्णयेत् ॥ १२ ॥

कथनपद्धति—'हे परमसुन्दरि! मैं तुम्हें एक विचित्र बात सुनाती हूँ, तुम उसे ध्यान से सुनो। उस प्रसिद्ध परिवार का वह युवक उस स्थान पर तुम्हें देखकर कामोन्मत्त हो गया है। वह स्वभाव से अत्यन्त सुकुमार है। उसने अभी तक जीवन में कभी कष्ट नहीं उठाया है। वह तो तपस्वी है। यदि उसने तुम्हें नहीं पाया तो वह तड़प तड़प कर मर जायेगा'—इस प्रकार नायिका से कहे ॥ १२ ॥

तत्र सिद्धा द्वितीयेऽहनि वाचि वक्त्रे दृष्ट्यां च प्रसादमुपलक्ष्य पुनरपि कथां प्रवर्तयेत् ॥ १३ ॥

दूसरे दिन का कार्य—इन बातों में यदि दूती को सफलता मिल जाये अर्थात् नायिका बातें रुचिपूर्वक सुनती रहे, तो दूती उसे दूसरे दिन फिर बुलाये और यदि उसके मुख और नेत्रों पर प्रसन्नता छलकती हो तो उससे साधारण वार्तालाप प्रारम्भ कर दे ॥ १३ ॥

श्रृण्वत्यां चाहल्याविमारकशाकुन्तलादीन्यन्यान्यपि लौकिकानि च कथयेत् तद्युक्तानि ॥ १४ ॥

जब वह बातें सुनने में लीन हो जाये तो उसे अहल्या, अविमारक और शकुन्तला की कथाएँ तथा परकीय और उपपति (परपुरुष) से सम्बन्धित अन्यान्य लौकिक कथाएँ सुनाये ॥ १४ ॥

वृषतां चतुःषष्टिविज्ञतां सौभाग्यं च नायकस्य। श्लाघनीयतां (या) चास्य प्रच्छन्नं सम्प्रयोगं भूतमभूतपूर्वं वा वर्णयेत् ॥ १५ ॥

नायक की प्रबल सम्भोगशक्ति और चौंसठ कलाओं में निपुणता तथा नायिका की

सौभाग्यशालिता एवं उत्तमता का वर्णन कर, उसके पूर्वकाल में हुए या अनहुए (कल्पित) सम्भोगों का वर्णन करे॥ १५॥

आकारं चास्या लक्षयेत्॥ १६॥

भावभङ्गिमाओं की परीक्षा—नायक के सम्भोगों की बातें सुनाते समय उसकी भावभङ्गिमा की परीक्षा करती रहे॥ १६॥

सविहसितं दृष्ट्वा सम्भाषते॥ १७॥

भावबोधक व्यापार—देखकर मुसकाती हुई बोलती है॥ १७॥

आसने चोपनिमन्त्रयते॥ १८॥

सम्मानपूर्वक आसन पर बैठने के लिये कहती है॥ १८॥

क्वासितं क्व शयितं भुक्तं क्व चेष्टितं किं वा कृतमिति पृच्छति॥ १९॥

कल कहाँ बैठीं? कहाँ सोयीं? कल क्या खाना खाया? अथवा कल दिनभर क्या करती धरती रहीं?—इत्यादि प्रश्न पूछती है॥ १९॥

विविक्ते दर्शयत्यात्मानम्॥ २०॥

उससे एकान्त में बातें करती है या एकान्त में मिलती है॥ २०॥

आख्यानकानि नियुङ्क्ते॥ २१॥

नायक की बातें स्वयं आरम्भ करती है॥ २१॥

चिन्तयन्ती निःश्वसिति विजृम्भते च॥ २२॥

कुछ सोचती हुई दीर्घोच्छ्वास और जँभाई लेती है॥ २२॥

प्रीतिदायं च ददाति॥ २३॥

प्रेमपूर्वक भेंट देती है॥ २३॥

इष्टेषूत्सवेषु च स्मरति॥ २४॥

इष्ट कार्यों और उत्सवों में उसे स्मरण करती है अर्थात् उत्सव आदि में उसे आमन्त्रित करती है॥ २४॥

पुनर्दर्शनानुबन्धं विसृजति॥ २५॥

पुनः आने की शर्त पर ही घर से जाने देती है॥ २५॥

साधुवादिनी सती किमिदमशोभनमभिधत्से इति कथामनुबध्नाति॥ २६॥

'आप सदाचारिणी होकर ऐसी अशोभन बातें क्यों करती हैं?'—यह वार्तालाप के अन्तर्गत कह देती है॥ २६॥

नायकस्य शाठ्यचापल्यसम्बद्धान् दोषान् ददाति॥ २७॥

नायक की चपलता और धूर्तता को कहती है॥ २७॥

पूर्वप्रवृत्तं च तत्सन्दर्शनं कथाभियोगं च स्वयमकथयन्ती तयोच्यमानमाकांक्षति॥ २८॥

नायक की पूर्वप्रवृत्ति और उसके दर्शन से सम्बन्धित कथावार्ताओं को सङ्कोचवश स्वयं न कहकर भी दूती से सुनने की इच्छा रखती है॥ २८॥

नायकमनोरथेषु च कथ्यमानेषु सपरिभवं नाम हसति। न च निर्वदतीति॥ २९॥

नायक के मनोरथ कहे जाने पर तिरस्कारपूर्वक हँस देती है, लेकिन यह भी नहीं कहती कि उसका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा॥ २९॥

दूत्येनां दर्शिताकारां नायकाभिज्ञानैरुपबृंहयेत्॥ ३०॥

अनुकूलित आकार का फल—पूर्वोक्त रीति से जिसके भावव्यञ्जक व्यापारों को देख लिया हो, उसे दूती नायक की पुरानी बातों पर अनुरक्त करे॥ ३०॥

असंस्तुतां तु गुणकथनैरनुरागकथाभिश्चावर्जयेत्॥ ३१॥

जिस नायिका का नायक के साथ परिचय न हो, उसे तो नायक के गुणों और उसकी प्रेमकथाओं को सुना सुनाकर ही अनुरक्त करे॥ ३१॥

नासंस्तुतादृष्टाकारयोर्दूत्यमस्तीत्यौद्दालकिः॥ ३२॥

दूतीकर्म पर मतवैभिन्न्य—जो नायिका अपरिचित है और जिसके भावव्यञ्जक व्यापारों की परीक्षा नहीं की गयी है, उसके साथ दूतीकर्म नहीं हो सकता—यह महर्षि श्वेतकेतु का मत है॥ ३२॥

असंस्तुतयोरपि संसृष्टाकारयोरस्तीति बाभ्रवीयाः॥ ३३॥

अपरिचित होने पर भी यदि नायिका की अनुकूल चेष्टाएँ देख ली गयी हों, तो उसके साथ दूतीकर्म हो सकता है—ऐसा बाभ्रव्य आचार्य के अनुयायियों (शिष्यों) का मत है॥ ३३॥

संस्तुतयोरप्यसंसृष्टाकारयोरस्तीति गोणिकापुत्रः॥ ३४॥

अपरिचित और बिना अनुकूल चेष्टाओं वाली नायिका के साथ भी दूतीकर्म हो सकता है—यह इस अधिकरण के विशेषज्ञ आचार्य गोणिकापुत्र का मत है॥ ३४॥

असंस्तुतयोरदृष्टाकारयोरपि दूतीप्रत्ययादिति वात्स्यायनः॥ ३५॥

दूती के विश्वास पर पूर्णतः अपरिचित और विना अनुकूल चेष्टाओं वाली नायिका के साथ भी दूतीकर्म होता है—ऐसी महर्षि वात्स्यायन की व्यवस्था है॥ ३५॥

तासां मनोहराण्युपायनानि ताम्बूलमनुलेपनं स्रजमङ्गुलीयकं वासो वा तेन प्रहितं दर्शयेत्॥ ३६॥

वस्तुप्रेषण—अपरिचित होने पर भी नायक उसे मनोहर भेंट, पान, अनुलेप, माला, अँगूठी आदि भेजे॥ ३६॥

तेषु नायकस्य यथार्थं नखदनशनपदानि तानि तानि च चिह्नानि स्युः॥ ३७॥

उन उपहार की वस्तुओं पर नायक के नखों और दाँतों के चिह्न अङ्कित हों॥ ३७॥

वाससि च कुङ्कुमाङ्कमञ्जलिं निदध्यात्॥ ३८॥

नायिका को उपहार में भेजे जाने वाले वस्त्रों पर केसर के थापे लगा दे॥ ३८॥

पत्रच्छेद्यानि नानाभिप्रायाकृतीनि दर्शयेत्। लेखपत्रगर्भाणि कर्णपत्राण्यापीडांश्च॥ ३९॥

पत्रों पर अनेक प्रकार की अभिप्रायबोधक आकृतियाँ बनाये। कर्णपत्र और आपीड़ (माला) भी इस प्रकार बनाये कि उनके अन्दर प्रेमपत्र छिपाकर रखा जा सके॥ ३९॥

तेषु स्वमनोरथाख्यापनम्। प्रतिप्राभृतदाने चैनां नियोजयेत्॥ ४०॥

उन प्रेमपत्रों में अपने मनोरथों को बताये और प्रेमपत्रों के निरन्तर आदान-प्रदान की योजना बनाये॥ ४०॥

एवं कृतपरस्परपरिग्रहयोश्च दूतीप्रत्ययः समागमः॥ ४१॥

इस प्रकार एक-दूसरे के हृदय में कामना उत्पन्न करके दूती के विश्वास पर समागम होता है॥ ४१॥

स तु देवताभिगमने यात्रायामुद्यानक्रीडायां जलावतरणे विवाहे यज्ञव्यसनोत्सवेष्वग्न्युत्पाते चौरविभ्रमे जनपदस्य चक्रारोहणे प्रेक्षाव्यापारेषु तेषु तेषु च कार्येष्विति बाभ्रवीयाः॥ ४२॥

मिलन का अवसर—वह समागम तो देवपूजा या देवयात्रा को जाते समय, वनविहार के समय, जलविहार के समय, विवाह में सम्मिलित होते समय, आग लग जाने आदि उपद्रवों के समय, चोरों को पकड़ने के कोलाहल में, राजा के परिवर्तन के समय, खेल-तमाशों के समय और ऐसे ही अन्यान्य कार्यों के समय होता है—यह आचार्य **बाभ्रव्य के अनुयायियों का मत है**॥ ४२॥

सखीभिक्षुकीक्षपणिकातापसीभवनेषु सुखोपाय इति गोणिकापुत्रः॥ ४३॥

मिलनस्थल—सखी, भिक्षुणी, संन्यासिनी और तपस्विनी—इनके घरों में नायक और नायिका का मिलन सरलता से सम्भव है—यह आचार्य **गोणिकापुत्र** का मत है॥ ४३॥

तस्या एव तु गेहे विदितनिष्क्रमप्रवेशे चिन्तितात्ययप्रतीकारे प्रवेशनमुपपन्नं निष्क्रमणमविज्ञातकालं च तन्नित्यं सुखोपायं चेति वात्स्यायनः॥ ४४॥

यदि प्रवेश करने और निकलने का मार्ग पता हो, तो उस नायिका के घर पर भी समागम हो सकता है। यह नित्य और अविज्ञात होने से सुख का उपाय है—ऐसा आचार्य **वात्स्यायन** का मत है॥ ४४॥

निसृष्टार्था परिमितार्था पत्रहारी स्वयंदूती मूढदूती भार्यादूती मूकदूती वातदूती चेति दूतीविशेषाः॥ ४५॥

दूतीभेद—सामान्य रूप से दूतीकर्म बताकर अब दूतियों के भेद बताते हैं—निसृष्टार्था, परिमितार्था, पत्रहारी, स्वयंदूती, मूढदूती, भार्यादूती, मूकदूती और वातदूती—ये दूतियों के भेद हैं॥ ४५॥

नायकस्य नायिकायाश्च यथामनीषितमर्थमुपलभ्य स्वबुद्ध्या कार्यसम्पादिनी निसृष्टार्था॥ ४६॥

निसृष्टार्था दूती—जो दूती नायक और नायिका के अभिलषित प्रयोजन को समझकर अपनी बुद्धि से कार्य सम्पादित करती है, वह निसृष्टार्था दूती कहलाती है ॥ ४६ ॥

सा प्रायेण संस्तुतसम्भाषणयोः ॥ ४७ ॥

इसका विषय—यह दूती प्रायः उन्हीं नायक नायिकाओं का कार्य करती है जिनमें परस्पर परिचय और सम्भाषण हो ॥ ४७ ॥

नायिकया प्रयुक्ता असंस्तुतसम्भाषणयोरपि ॥ ४८ ॥

नायिका द्वारा भेजी गयी दूती परिचय और वार्तालाप के विना भी कार्य सम्पादित करती है ॥ ४८ ॥

कौतुकाच्चानुरूपौ युक्ताविमौ परस्परस्येत्यसंस्तुतयोरपि ॥ ४९ ॥

यदि यह निसृष्टार्था दूती परस्पर अनुरूप और उपयुक्त नायक नायिकाओं को मिलाना चाहे तो उन्हें भी मिला सकती है ॥ ४९ ॥

कार्यैकदेशमभियोगैकदेशं चोपलभ्य शेषं संपादयतीति परिमितार्था ॥ ५० ॥

परिमितार्था दूती—नायक-नायिका के मिलन के एक अंश (अभियोग के एक भाग) को जानकर, शेष का स्वयं उपाय कर ले, वह परिमितार्था दूती कहलाती है ॥ ५० ॥

सा दृष्टपरस्पराकारयोः प्रविरलदर्शनयोः ॥ ५१ ॥

इसका विषय—जहाँ नायक नायिका ने एक दूसरे की अनुकूल चेष्टाएँ देख ली हों, लेकिन वे एक दूसरे को कम ही दिखायी देते हों, वहाँ पर परिमितार्था दूती मिलन का कार्य करती है ॥ ५१ ॥

सन्देशमात्रं प्रापयतीति पत्रहारी ॥ ५२ ॥

पत्रहारी दूती—जो दूती नायक और नायिका का सन्देश या पत्र ले जाने का कार्य करती है, वह पत्रहारी दूती कहलाती है ॥ ५२ ॥

सा प्रगाढसद्भावयोः संसृष्टयोश्च देशकालसम्बोधनार्थम् ॥ ५३ ॥

इसका विषय—यह दूती उन नायक-नायिकाओं के मिलन के स्थल एवं समय निश्चित करने के लिए होती है जो परस्पर प्रेमपाश में बँध चुके हों और कई बार मिल चुके हों ॥ ५३ ॥

दौत्येन प्रहितान्यया स्वयमेव नायकमभिगच्छेदजानती नाम तेन सहोपभोगं स्वप्ने वा कथयेत्। गोत्रस्खलितं भार्यां चास्य निन्देत्। तद्व्यपदेशेन स्वयमीर्ष्यां दर्शयेत्। नखदशनचिह्नितं वा किञ्चिद् दद्यात्। भवतेऽहमादौ दातुं सङ्कल्पितेति चाभिदधीत। मम भार्यायाः का रमणीयेति विविक्ते पर्यनुयुञ्जीत सा स्वयंदूती ॥ ५४ ॥

स्वयंदूती (प्रथम)—जब कोई नायिका किसी स्त्री को दूतकर्म के लिए भेजती है और वह स्वयं ही नायक की कामना करने लगे, तो उसे स्वयंदूती कहते हैं। वह नायक से अपरिचित होती हुई भी स्वप्न में उसके साथ सम्भोग की बातें कहे, अपने इस पतन और उसकी स्त्री (नायिका) की निन्दा करे, किसी बहाने से उस नायिका से ईर्ष्या दिखाये, अथवा नखों और दाँतों से चिह्न बनाकर कुछ वस्तु उस नायक को दे और उससे कहे कि मेरे माता पिता ने पहले

मेरा विवाह आप से ही करने का सङ्कल्प किया था। मुझमें और आप की स्त्री में, दोनों में कौन सुन्दर है ?—जो इस प्रकार से एकान्त में जाकर सब प्रकार से अनुयोग करे, उसे स्वयंदूती कहते हैं॥ ५४॥

तस्या विविक्ते दर्शनं प्रतिग्रहश्च॥ ५५॥

स्वयंदूती का मिलनस्थल—स्वयंदूती का दर्शन और सन्देशग्रहण एकान्त में ही होना चाहिये॥ ५५॥

प्रतिग्रहच्छलेनान्यामभिसन्धायास्याः संदेशश्रावणद्वारेण नायकं साधयेत् तां चोपहन्यात्सापि स्वयंदूती॥ ५६॥

स्वयंदूती (द्वितीय)—नायक का सन्देश लाने के बहाने अभिसन्धि करके नायिका का सन्देश सुनाने के माध्यम से नायक को स्वयं सिद्ध कर ले, नायिका को नायक से न मिलने दे, वह भी स्वयंदूती ही है॥ ५६॥

एतया नायकोऽप्यन्यदूतश्च व्याख्यातः॥ ५७॥

स्वयंदूत—स्वयंदूती के माध्यम से स्वयंदूत भी कह दिया गया है अर्थात् जो पुरुष किसी नायक का सन्देश ले जाने के बहाने नायिका के पास जाता है और उसे स्वयं ही अनुरक्त कर लेता है, नायक से नहीं मिलने देता, वह स्वयंदूत कहलाता है॥ ५७॥

नायकभार्यां मुग्धां विश्वास्यायन्त्रणयानुप्रविश्य नायकस्य चेष्टितानि पृच्छेत्। योगाञ्शिक्षयेत्। साकारं मण्डयेत्। कोपमेनां ग्राहयेत्। एवं च प्रतिपद्यस्वेति भावयेत्। स्वयं चास्यां नखदशनपदानि विवर्तयेत्। तेन द्वारेण नायकमाकारयेत् सा मूढदूती॥ ५८॥

मूढ़दूती—नायक की मुग्धा भार्या को विश्वास दिलाकर, बिना किसी कष्ट के उसके हृदय में छिपी हुई नायक-सम्बन्धी बातें पूछे, उसे सम्भोग की क्रियाएँ सिखाये, अभिप्रायसूचक शृङ्गार कराये, पति से उसका द्वेष करा दे, उसके अङ्गों पर स्वयं ही नखक्षत एवं दन्तक्षय अङ्कित कर दे—इस प्रकार कठिनतापूर्वक अपना आशय प्रकटित करे, उसे मूढ़दूती कहते हैं॥ ५८॥

तस्यास्तयैव प्रत्युत्तराणि योजयेत्॥ ५९॥

इसका प्रत्युत्तर—यदि कोई स्त्री ऐसी मूढ़दूती से कार्य करा रही हो, तो नायक को बदला लेने के लिये उससे ही सम्भोग करना चाहिये॥ ५९॥

स्वभार्यां वा मूढां प्रयोज्य तया सह विश्वासेन योजयित्वा तयैवाकारयेत्। आत्मनश्च वैचक्षण्यं प्रकाशयेत्। सा भार्या दूती तस्यास्तयैवाकारग्रहणम्॥ ६०॥

भार्यादूती—अपनी अबोध स्त्री को उस नायिका के साथ मिलाकर, उसी से अपने मनोभावों को प्रकटित कराये और अपनी कुशलता का परिचय दे। क्योंकि यहाँ भार्या द्वारा ही नायिका की चेष्टाओं का ग्रहण होता है, इसलिए इसे भार्यादूती कहते हैं॥ ६०॥

बालां वा परिचारिकामदोषज्ञामदुष्टेनोपायेन प्रहिणुयात्। तत्र स्रजि कर्णपत्रे वा गूढलेखनिधानं नखदशनपदं वा सा मूकदूती। तस्यास्तयैव प्रत्युत्तरप्रार्थनम्॥ ६१॥

मूकदूती—भले-बुरे का ज्ञान न रखने वाली अवयस्क परिचारिका को उस नायिका के घर खेलने भेजे। उसके साथ नायिका का अच्छा परिचय हो जाने पर माला या कर्णपत्र में गूढ़ प्रेमपत्र रखकर नखक्षत एवं दन्तक्षत बनाये। इस प्रकार कार्य करने वाली मूकदूती होती है। इसका प्रत्युत्तर उस नायिका से ही माँगे॥ ६१ ॥

पूर्वप्रस्तुतार्थलिङ्गसम्बद्धमन्यजनाग्रहणीयं लौकिकार्थं द्व्यर्थं वा वचनमुदासीना या श्रावयेत् सा वातदूती। तस्या अपि तयैव प्रत्युत्तरप्रार्थनमिति तासां विशेषः॥ ६२॥

वातदूती—नायक-नायिका के पूर्ववर्ती वृत्तान्त के बोधक, लौकिक या द्व्यर्थक वचनों को, जिन्हें अन्य न समझ सकें, जो उदासीन होकर सुनाये और उससे उसी भाषा में उत्तर भी ले ले, उसे वातदूती कहते हैं॥ ३२ ॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

विधवेक्षणिका दासी भिक्षुकी शिल्पकारिका।
प्रविशत्याशु विश्वासं दूतीकार्यं च बिन्दति॥ ६३॥

इस विषय में आनुवंश्य श्लोक उद्धृत करते हैं—

विधवा, शकुन बताने वाली, दासी, भिक्षुणी, महावर लगाने एवं बाल सँवारने वाली नाइन—ये शीघ्र ही प्रविष्ट होकर विश्वासपात्र बन जाती हैं और फिर दूती का काम करने लगती हैं॥ ६३ ॥

संक्षेपेण दूतीकर्माण्याह—

विद्वेषं ग्राहयेत् पत्यौ रमणीयानि वर्णयेत्।
चित्रान् सुरतसम्भोगानन्यासामपि दर्शयेत्॥ ६४॥

दूतीकर्म : सारसंक्षेप—दूतियाँ पतियों से विद्वेष करा दें, जिस नायक से उसे मिलाना चाहें, उसके रूप आदि की प्रशंसा करें। अन्य स्त्रियों के समक्ष भी सुरत और सम्भोगों के अश्लील चित्र दिखायें॥ ६४ ॥

नायकस्यानुरागं च पुनश्च रतिकौशलम्।
प्रार्थनां चाधिकस्त्रीभिरवष्टम्भं च वर्णयेत्॥ ६५॥

नायक के अनुराग और रतिकौशल का वर्णन करे। नायिका से भी अधिक रूपवती, धनवती और शीलवती स्त्रियों की प्रार्थना को बताये कि ये स्त्रियाँ भी उस पर अनुरक्त हैं। साथ ही, नायक के दृढ़ निश्चय को भी प्रकटित करे॥ ६५ ॥

असङ्कल्पितमप्यर्थमुत्सृष्टं दोषकारणात्।
पुनरावर्तयत्येव दूती वचनकौशलात्॥ ६६॥

जिसके विषय में कभी सोचा भी न गया हो, जो दोषों के कारण त्याग दिया गया हो, दूती अपने वाक्चातुर्य से ऐसे नायकों को भी सुन्दरियों का प्रेमी बना देती है॥ ६६ ॥

दूतीकर्म प्रकरण नामक चतुर्थ अध्याय सम्पन्न॥

●

पञ्चम अध्याय
ईश्वरकामितप्रकरण

न राज्ञां महामात्राणां वा परभवनप्रदेशो विद्यते। महाजनेन हि चरितमेषां दृश्यतेऽनुविधीयते च॥ १॥

परगृह प्रवेश न करने के कारण—राजा और महामन्त्रियों का प्रायः दूसरे के घर जाना उचित नहीं होता, क्योंकि लोक में महाजनों का जो चरित देखा जाता है, उसी का सब अनुकरण करते हैं॥ १॥

सवितारमुद्यन्तं त्रयो लोकाः पश्यन्ति अनूद्यन्ते च। गच्छन्तमपि पश्यन्त्यनुप्रतिष्ठन्ते च॥ २॥

सूर्य के दृष्टान्त से पुष्टि—सूर्य को उगते हुए देखकर तीनों लोक आलस्य छोड़कर उठ जाते हैं और उसे अस्त होते देखकर अपनी दैनिक क्रियाओं से निवृत्त हो जाते हैं॥ २॥

तसमादशक्यत्वाद् गर्हणीयत्वाच्चेति न ते वृथा किञ्चिदाचरेयुः॥ ३॥

दृष्टान्त का फलितार्थ—क्योंकि समर्थ पुरुषों को परकीयागमन, परगृह में अप्रवेश के कारण अशक्य और लोक में आलोचना का विषय होने से निन्दनीय है, अतः उन्हें इसमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये॥ ३॥

अवश्यं त्वाचरितव्ये योगान् प्रयुञ्जीरन्॥ ४॥

अपरिहार्यता पर उपाय—यदि किसी कारणवश या रागवश परकीयागमन अपरिहार्य हो जाये तो निम्न उपायों का प्रयोग करना चाहिये॥ ४॥

ग्रामाधिपतेरायुक्तकस्य हलोत्थवृत्तिपुत्रस्य यूनो ग्रामीणयोषितो वचनमात्र-साध्याः। ताश्चर्षण्य इत्याचक्षते विटाः॥ ५॥

शूद्र पुरुषों (छोटे अधिकारियों) के उपाय—ग्रामीण युवतियाँ गाँव के प्रधान, जमींदार, पटवारी आदि छोटे अधिकारियों के युवा पुत्रों के वचनमात्र से सिद्ध होती हैं। विट लोग इन्हें 'चर्षणी' (चालू) कहते हैं॥ ५॥

ताभिः सह विष्टिकर्मसु कोष्ठागारप्रवेशे द्रव्याणां निष्क्रमणप्रवेशन-योर्भवनप्रतिसंस्कारे क्षेत्रकर्मणि कर्पासोर्णातसीसणवल्कलादाने सूत्रप्रतिग्रहे द्रव्याणां क्रयविक्रयविनिमयेषु तेषु तेषु च कर्मसु सम्प्रयोगः॥ ६॥

सम्प्रयोग के अवसर—जब ये स्त्रियाँ कूटना, पीसना, पकाना आदि कार्यों के लिये कोष्ठागार (स्टोर) में प्रवेश करें; वस्तुओं को उठाने, रखने या घर की सफाई, पुताई आदि हेतु घर में प्रवेश करें; कपास, ऊन, अलसी, सन और वल्कल लेने खेत में आयें, सूंत लौटाने हेतु आयें और जिस समय वस्तुओं का क्रय-विक्रय हो रहा हो, अन्य भी ऐसे ही कार्यों के समय छोटे अधिकारी इनके साथ समागम कर सकते हैं॥ ६॥

तथा व्रजयोषिद्भिः सह गवाध्यक्षस्य॥ ७॥

गौशाला का अधिकारी—इसी प्रकार गौशाला का अधिकारी ग्वालिनों के साथ समागम कर सकता है॥ ७॥

विधवानाथाप्रव्रजिताभिः सह सूत्राध्यक्षस्य॥ ८॥

सूत का प्रभारी—विधवा, अनाथ और संन्यासिनी स्त्रियों के साथ सूत्राध्यक्ष समागम कर सकता है॥ ८॥

मर्मज्ञत्वाद् रात्रावटने चाटन्तीभिर्नागरस्य॥ ९॥

नगराध्यक्ष—रात को पहरा देने वाला नगराध्यक्ष (कोतवाल), रहस्य जानने के कारण, रात को घूमने वाली स्त्रियों के साथ समागम कर सकता है॥ ९॥

क्रयविक्रये पण्याध्यक्षस्य॥ १०॥

बाजार का अधिकारी—पण्याध्यक्ष क्रय-विक्रय करने वाली स्त्रियों के साथ समागम कर सकता है॥ १०॥

अष्टमीचन्द्रकौमुदीसुवसन्तकादिषु पत्तनगरखर्वटयोषितामीश्वरभवने सटान्तःपुरिकाभिः प्रायेण क्रीडा॥ ११॥

मुख्य अधिकारियों के उपाय—बहुला अष्टमी, कौमुदी महोत्सव, सुवसन्तक आदि बड़े उत्सवों पर राजधानी, नगर और कस्बों की स्त्रियाँ राजभवन में अन्तःपुर में रहने वाली स्त्रियों के साथ प्रायः क्रीड़ाएँ करती हैं॥ ११॥

तत्र चापानकान्ते नगरस्त्रियो यथापरिचयमन्तःपुरिकाणां पृथक्पृथग्भोगावासकान् प्रविश्य कथाभिरासित्वा पूजिताः प्रपीताश्चोपप्रदोषं निष्क्रामयेयुः॥ १२॥

इन क्रीड़ाओं में मदिरापान के पश्चात् नगर की स्त्रियाँ अपने अपने परिचय के अनुसार विभिन्न आमोदभवनों (रंगमहलों) में प्रवेश करके गप्पें मारती हैं, और उन राजरानियों से स्वागत सत्कार एवं खान पान प्राप्त करके सन्ध्या के समय महलों से निकलती हैं॥ १२॥

तत्र प्रणिहिता राजदासी प्रयोज्यायाः पूर्वसंसृष्टा तां तत्र सम्भाषेत॥ १३॥

राजदूती का प्रयास—उन क्रीड़ाओं में राजा द्वारा नियुक्त दासी, जो राजा की मनोवाञ्छित स्त्री से पहले ही मिल चुकी हो, उससे वार्तालाप करे॥ १३॥

रामणीयकदर्शनेन योजयेत्॥ १४॥

उसे राजभवन की रमणीय वस्तुएँ दिखाने में लगा दे॥ १४॥

प्रागेव स्वभवनस्थां ब्रूयात्। अमुष्यां क्रीडायां तव राजभवनस्थानानि रामणीयकानि दर्शयिष्यामीति काले च योजयेत्। बहिःप्रवालकुट्टिमं ते दर्शयिष्यामि॥ १५॥

राजदासी को चाहिये कि उस स्त्री में उत्सुकता उत्पन्न करने के लिये राजभवन में प्रवेश से पूर्व, उसके घर पर ही यह कह दे कि इस क्रीड़ा में मैं तुम्हें राजभवन की रमणीय वस्तुएँ दिखाऊँगी। जब वह राजभवन में आ जाये, तब उसे दिखाना प्रारम्भ कर दे। जब वह राजभवन देख चुके, तब कहे कि अब तुम्हें बाहर प्रवालकुट्टिम (मूँगों का फर्श) दिखाऊँगी॥ १५॥

मणिभूमिकां वृक्षवाटिकां मृद्वीकामण्डपं समुद्रगृहप्रासादान् गूढभित्तिसञ्चारांश्चित्रकर्माणि क्रीडामृगान् यन्त्राणि शकुनान् व्याघ्रसिंहपञ्जरादीनि च यानि पुरस्ताद्वर्णितानि स्युः॥ १६॥

मणिकुट्टिम फर्श, वृक्षवाटिकाएँ, अंगूर की लताओं से बना मण्डप, समुद्रगृह (अण्डरग्राउण्ड भवन) जिसमें गुप्त मार्गों से पानी आता-जाता हो, चित्रशाला, क्रीड़ामृग, यन्त्रचालित कौतुक जो निर्जीव होते हुए भी सजीव से लगते हों, विभिन्न प्रकार के पक्षी, पिंजड़ों में बद्ध शेर, चीते आदि, जो भी पहले कह रखा हो, सभी दिखाये॥ १६॥

एकान्ते च तद्‌गतमीश्वरानुरागं श्रावयेत्॥ १७॥

राजा के प्रेम का प्रकटीकरण—तत्पश्चात् एकान्त में, अवसर देखकर, उसमें राजा के अनुराग को प्रकट करना चाहिये॥ १७॥

सम्प्रयोगे चातुर्यं चाभिवर्णयेत्॥ १८॥

और सम्प्रयोग में राजा के कलाकौशल का भी वर्णन करे अर्थात् राजदासी उस स्त्री को यह अवश्य बताये कि राजा चौंसठ कामकलाओं में निपुण है जिससे उसका हृदय समागम हेतु उत्कण्ठित हो जाये॥ १८॥

अमन्त्रभावं च प्रतिपन्नां योजयेत्॥ १९॥

जब वह राजा के साथ समागम कर ले, तो उसे यह समझा दे कि इस बात को किसी से न कहे॥ १९॥

अप्रतिपद्यमानां स्वयमेवेश्वर आगत्योपचारैः सान्त्विता रञ्जयित्वा सम्भूय च सानुरागं विसृजेत्॥ २०॥

राजदासी की असफलता पर राजा का कर्तव्य—यदि वह स्त्री राजदूती की बात न माने और समागम हेतु तैयार न हो, तो राजा स्वयं आकर उपचारों द्वारा उसे शान्त करे एवं अनुरक्त करे। तत्पश्चात् समागम करके उसे प्रेमपूर्वक विदा कर दे॥ २०॥

प्रयोज्यायाश्च पत्युरनुग्रहोचितस्य दारान्नित्यमन्तःपुरमौचित्यात्प्रवेशयेत्। तत्र प्रणिहिता राजदासीति समानं पूर्वेण॥ २१॥

सद्भावप्रदर्शन—यदि उस स्त्री का पति राजकृपा के योग्य हो, तो राजदासी को चाहिये कि उसके घर की अन्य स्त्रियों को भी यथोचित रीति से राजभवन में ले आये। यह कार्य भी राजदासी को ही करना चाहिये॥ २१॥

अन्तःपुरिका वाप्रयोज्यया सह स्वचेटिकासंप्रेषणेन प्रीतिं कुर्यात्। प्रसृतप्रीतिं च सापदेशं दर्शने नियोजयेत्। प्रविष्टां पूजितां पीतवतीं प्रणिहिता राजदासीति समानं पूर्वेण॥ २२॥

रानी द्वारा सहयोग—राजा जिस स्त्री पर आसक्त हो, उसके पास अपनी चेरी भेजकर रानी प्रेमसम्बन्ध स्थापित कर ले। जब सम्बन्ध बन जाये, तो देखने के बहाने राजभवन में बुलाये। राजभवन में आने पर रानी उसका स्वागत-सत्कार करे और मदिरा पिलाकर प्रमत्त कर दे। तत्पश्चात् राजदासी पूर्वोक्त रीति से कार्य करे॥ २२॥

यस्मिन् वा विज्ञाने प्रयोज्या विख्याता स्यात्तद्दर्शनार्थमन्तःपुरिका सोपचारं तामाह्वयेत्। प्रविष्टां प्रणिहिता राजदासीति समान पूर्वेण॥ २३॥

कलाकौशल के बहाने बुलाना—राजा जिस स्त्री पर आसक्त हो, यदि वह नृत्यआदि

में निपुण हो, तो उस कला का प्रदर्शन करने के लिये रानी उसे राजभवन बुला ले। जब वह राजभवन में प्रवेश कर जाये तो राजदासी पूर्वोक्त रीति से उसे राजा से मिलवा दे॥ २३॥

उद्भूतानर्थस्य भीतस्य वा भार्यां भिक्षुकी ब्रूयात् असावन्तःपुरिका राजनि सिद्धा गृहीतवाक्या मम वचनं शृणोति। स्वभावतश्च कृपाशीला तामनेनोपायेनाधिगमिष्यामि। अहमेव ते प्रवेशं कारयिष्यामि। सा च ते भर्तुर्महान्तमनर्थं निवर्तयिष्यतीति प्रतिपन्नां द्विस्त्रिरिति प्रवेशयेत्। अन्तःपुरिका चास्या अभयं दद्यात्। अभयश्रवणाच्च संप्रहृष्यां प्रणिहिता राजदासीति समानं पूर्वेण॥ २४॥

पीड़ित एवं स्वार्थियों की पत्नियों को बुलाने की रीति—जिसका राजपरिवार से कुछ अनर्थ होना हो या जो उससे भयभीत हो, उसकी पत्नी से भिक्षुणी जाकर कह दे—'राजा इस रानी का कहना मानता है और यह मेरा कहा मानती है। वह तो स्वभाव से ही कृपालु है। मैं इस उपायन में उससे मिलूँगी। मैं वहाँ तुम्हारा प्रवेश करा दूँगी। वह तुम्हारे पति के इस महान् अनर्थ को रोक देगी'—इस प्रकार समझाकर तैयार हो जाने पर उसे दो तीन बार राजभवन ले आये। वह रानी उसे अभयदान दे दे। जब वह स्त्री अभयदान से प्रसन्न हो जाये तो राजा द्वारा भेजी गयी दूती पूर्वोक्त रीति से राजा से मिलवा दे॥ २४॥

एतया वृत्त्यर्थिनां महामात्राभितप्तानां बलाद्विगृहीतानां व्यवहारे दुर्बलानां सम्भोगेनासन्तुष्टानां राजनि प्रीतिकामानां राज्यजनेषु पंक्तिं (व्यक्तिं) इच्छतां सजातैर्बाध्यमानानां सजातान् बाधितुकामानां सूचकानामन्येषां कार्यवशिनां जाया व्याख्याताः॥ २५॥

इसी से जीविका चाहने वालों की, राजा के मन्त्री, सेनापति आदि से पीड़ित हुए व्यक्तियों की, बलवान् से लड़ने वालों की, व्यवहार में दुर्बल लोगों की, अपने भोगों से असन्तुष्ट व्यक्तियों की, राजा की प्रीति चाहने वाले व्यक्तियों की, राजकीय जनों में प्रसिद्धि चाहने वालों की, सजातीय व्यक्तियों द्वारा सताये गये व्यक्तियों की, सजातीय भाई बन्धुओं को पीड़ित करने वालों की, चुगलखोरों की और कार्यार्थी व्यक्तियों की स्त्रियाँ भी कह दी गयी हैं॥ २५॥

अन्येन वा प्रयोज्यां सह संसृष्टां संग्राह्य दास्यमुपनीतां क्रमेणान्तःपुरं प्रवेशयेत्॥ २६॥

रक्षिता बनाने की रीति—किसी अन्य के साथ संसर्ग करती हुई सुन्दर स्त्री को गिरफ्तार करके और दासी बनाकर अन्तःपुर में रख ले॥ २६॥

प्रणिधिना चायतिमस्याः पतिं सन्दूष्य राजनि विद्विष्ट इति कलत्रावग्रहोपायेनैनामन्तःपुरं प्रवेशयेदिति प्रच्छन्नयोगाः। एते राजपुत्रेषु प्रायेण॥ २७॥

गुप्तचरों द्वारा उसके पति को राजद्रोही सिद्ध करा दे। इस प्रकार उसके भविष्य को नष्ट करके, उसकी पत्नी को उपायों द्वारा अन्तःपुर में रख ले—ये गुप्त प्रयोग हैं जिनका प्रयोग प्रायः राजपुत्र ही करते हैं, राजा नहीं॥ २७॥

न त्वेवं परभवनमीश्वरः प्रविशेत्॥ २८॥

परगृहप्रवेश में दोष—समर्थ लोगों को इस प्रकार कदापि दूसरे के घर में प्रवेश नहीं करना चाहिये। राजा छिपकर भी कभी किसी के घर में न जाये॥ २८॥

आभीरं हि कोट्टराजं परभवनगतं भ्रातृप्रयुक्तो रजको जघान। काशिराजं जयसेनमश्वाध्यक्ष इति॥ २९॥

कोट्टराज और जयसेन के उदाहरण—परगृह में प्रविष्ट कोट्टराज आभीर को भाई द्वारा भेजे गये धोबी ने मार डाला था। इसी प्रकार काशिराज जयसेन को अश्वाध्यक्ष ने मार डाला था॥ २९॥

प्रकाशकामितानि तु देशप्रवृत्तियोगात्॥ ३०॥

सार्वजनिक प्रयोग—राजाओं को तो प्रायः सार्वजनिक प्रयोग ही देखने चाहिये। अब उन्हें कहते हैं—सार्वजनिक भोग तो देशाचार के अनुरूप ही होता है॥ ३०॥

प्रत्ता जनपदकन्या दशमेऽहनि किञ्चिदौपायनिकमुपगृह्य प्रविशन्त्यन्तःपुरमुपभुक्ता एव विसृज्यन्त इत्यान्ध्राणाम्॥ ३१॥

आन्ध्र की प्रथा— आन्ध्र देश की प्रथा है कि नवविवाहित कन्या को दसवें दिन कुछ उपहार देकर राजभवन में भेज दिया जाता है और उपभोग करके ही छोड़ते हैं॥ ३१॥

महामात्रेश्वराणामन्तःपुराणि निशि सेवार्थं राजानमुपगच्छन्ति वात्सगुलमकानाम्॥ ३२॥

वत्सगुल्म की प्रथा—दक्षिण के वत्सगुल्म देश में, राज्य के महामन्त्री, सेनापति आदि की स्त्रियाँ रात को सेवा के लिये राजा के पास जाती हैं॥ ३२॥

रूपवतीर्जनपदयोषितः प्रीत्यपदेशेन मासं मासार्धं वातिवासयन्त्यन्तःपुरिका वैदर्भाणाम्॥ ३३॥

विदर्भ की प्रथा—विदर्भ देश की यह प्रथा है कि वहाँ राजरानियाँ प्रजावर्ग की सुन्दर स्त्रियों को प्रेम के बहाने महीना महीना, पन्द्रह-पन्द्रह दिन अपने पास रख लेती हैं॥ ३३॥

दर्शनीयाः स्वभार्याः प्रीतिदायमेव महामात्रराजभ्यो ददत्यपरान्तकानाम्॥ ३४॥

अपरान्त की प्रथा—अपरान्त देश की यह प्रथा है कि वे अपनी सुन्दर पत्नी को महामन्त्री और राजा को उपहार रूप में दे देते हैं॥ ३४॥

राजक्रीडार्थं नगरस्त्रियो जनपदस्त्रियश्च सङ्घश एकशश्च राजकुलं प्रविशन्ति सौराष्ट्रकाणामिति॥ ३५॥

सौराष्ट्र की प्रथा— सौराष्ट्र देश की यह प्रथा है कि राजधानी और बाहर की स्त्रियाँ समूह के रूप में और एक एक करके राजक्रीड़ा के लिये राजभवन जाती हैं॥ ३५॥

श्लोकावत्र भवतः—

एते चान्ये च बहवः प्रयोगाः पारदारिकाः।
देशे देशे प्रवर्तन्ते राजभिः संप्रवर्तिताः॥ ३६॥

अन्य योग—इस विषय में दो आनुवंश्य श्लोक उद्‌धृत करते हैं—

राजाओं द्वारा प्रवर्तित परकीयागमन के ये तथा अन्य भी बहुत से प्रयोग विभिन्न देशों में प्रचलित हैं ॥ ३६ ॥

न त्वेवैतान् प्रयुञ्जीत राजा लोकहिते रतः ।
निगृहीतारिषड्वर्गस्तथा विजयते महीम् ॥ ३७ ॥

राजा के लिये प्रशस्त मार्ग—लोककल्याण में लगे राजाओं को इन योगों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जो राजा काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष—इन छह शत्रुओं को जीत लेता है, वही विजयी होकर राज्य करता है ॥ ३७ ॥

'ईश्वराकामित' प्रकरण नामक पञ्चम अध्याय सम्पन्न ॥

●

षष्ठ अध्याय

अन्तःपुरिकावृत्तप्रकरण

नान्तःपुराणां रक्षणयोगात् पुरुषसंदर्शनं विद्यते पत्युश्चैकत्वादनेकसाधारण-त्वाच्चातृप्तिः। तस्मात्तानि प्रयोगत एव परस्परं रञ्जयेयुः ॥ १ ॥

अन्तःपुर की लीलाएँ— राजभवन में कड़ी सुरक्षा के कारण पुरुष का दर्शन ही सम्भव नहीं हो पाता। पति (राजा) तो एक होता है और रानियाँ अनेक, अतएव उनकी सम्भोगेच्छा तृप्त नहीं हो पाती। इसी कारण वे आपस में ही तृप्त होने का प्रयास करती हैं ॥ १ ॥

धात्रेयिकां सखीं दासीं वा पुरुषवदलंकृत्याकृतिसंयुक्तैः कन्दमूलफलाव-यवैरपद्रव्यैर्वात्माभिप्रायं निवर्तयेयुः ॥ २ ॥

प्रयोग-विधि—धाय की पुत्री, सखी या दासी को पुरुषों के समान वस्त्रालङ्कार धारण करा कर समान आकृति वाले कन्द. मूल और फलों के अवयव वाले कृत्रिम शिश्न वनाकर कृत्रिम सम्भोग से तृप्ति प्राप्त करें ॥ २ ॥

पुरुषप्रतिमा अव्यक्तलिङ्गाश्चाधिशयीरन् ॥ ३ ॥

जिनके दाढ़ी-मूँछें न हो, ऐसे पुरुषों के साथ शयन करें ॥ ३ ॥

राजानश्च कृपाशीला विनापि भावयोगादायोजितापद्रव्या यावदर्थमेकया रात्र्या बह्वीभिरपि गच्छन्ति। यस्यां तु प्रीतिर्वासक ऋतुर्वा तत्राभिप्रायतः प्रवर्तन्त इति प्राच्योपचाराः ॥ ४ ॥

प्राच्यों के उपचार—कृपालु राजा विना भावयोग के कृत्रिम शिश्न लगाकर एक ही रात्रि में अनेक रानियों के साथ तृप्तिपर्यन्त सम्भोग करते हैं; किन्तु जिस पर प्रेम हो, जिसका वासक (दिन) हो या ऋतुकाल हो, वहाँ प्रेमपूर्वक सम्भोग करते हैं—यह प्राच्यों का उपचार (परम्परा) है ॥ ४ ॥

स्त्रीयोगेनेव पुरुषाणामप्यलब्धवृत्तीनां वियोनिषु विजातिषु स्त्रीप्रतिमासु केवलोपमर्दनाच्चाभिप्रायनिवृत्तिर्व्याख्याता॥ ५॥

पुरुष भी स्त्री न मिलने पर अपने भाव की निवृत्ति योनिरहित क्रियाओं में, भेड़ बकरी आदि विजातियों में, स्त्रियों की प्रतिमाओं में और केवल उपमर्दन से करें॥ ५॥

योषावेषांश्च नागरकान् प्रायेणान्तःपुरिकाः परिचारिकाभिः सह प्रवेशयन्ति॥ ६॥

नागरकों का प्रवेश—अन्तःपुर में रहने वाली रानियाँ दासियाँ के साथ प्रायः नागरकों को स्त्रीवेश में प्रवेश करा लेती हैं॥ ६॥

तेषामुपावर्तने धात्रेयिकाश्चाभ्यन्तरसंसृष्टा आयतिं दर्शयन्त्यः प्रयतेरन्॥ ७॥

उन नागरकों को तैयार करने के लिये रानियों की अन्तरंग धाय की पुत्रियों को चाहिये कि वे नागरकों को अन्तःपुर-प्रवेश के लाभों को समझायें॥ ७॥

सुखप्रवेशितामपसारभूमिं विशालतां वेश्मनः प्रमादं रक्षिणामनित्यतां परिजनस्य वर्णयेयुः॥ ८॥

वे नागरकों को तैयार करते समय अन्तःपुर में सरल प्रवेश और निकलने के सुगम मार्ग, अन्तःपुर की विशालता, सुरक्षाकर्मियों के प्रमाद तथा राजा एवं राजकुमारों के सदैव न रहने को बतायें॥ ८॥

न चासद्भूतेनार्थेन प्रवेशयितुं जनमावर्तयेयुर्दोषात्॥ ९॥

प्रबन्ध के अभाव में प्रवेश न करे—यदि आने-जाने का सुगम और निरापद मार्ग न हो तो अन्तःपुर में किसी को प्रवेश नहीं कराना चाहिये, क्योंकि इससे हानि की आशंका है॥ ९॥

नागरकस्तु सुप्रापमप्यन्तःपुरमपायभूयिष्ठत्वान्न प्रविशेदिति वात्स्यायनः॥ १०॥

अन्तःपुर में प्रवेश के विषय में महर्षि वात्स्यायन कहते हैं—अन्तःपुर में प्रवेश का मार्ग कितना भी सुगम क्यों न हो, किन्तु नागरक को उसमें कदापि प्रवेश नहीं करना चाहिये; क्योंकि इसमें महान् हानि की सम्भावना है॥ १०॥

सापसारं तु प्रमदवनावगाढं विभक्तदीर्घकक्ष्यमल्पप्रमत्तरक्षकं प्रोषितराजकं कारणानि समीक्ष्य बहुश आहूयमानोऽर्थबुद्ध्या कक्ष्याप्रवेशं च दृष्ट्वा ताभिरेव विहितोपायः प्रविशेत्॥ ११॥

विशेष बातें—नागरक अन्तःपुर में प्रवेश करने का विचार तभी बनाये जब निकलने का मार्ग हो, अन्तःपुर से लगा हुआ सघन प्रमदवन हो, रानियों के अलग अलग और बड़े-बड़े कक्ष हों, सुरक्षाकर्मी कम और असावधान हों, राजा बाहर गये हुए हों, सम्भोग हेतु रानी कई बार बुला चुकी हो, अर्थ की प्राप्ति सुनिश्चित हो और बताने वाली से सारे उपाय जान लिये हों॥ ११॥

शक्तिविषये च प्रतिदिनं निष्क्रामेत्॥ १२॥

यदि अन्तःपुर में आवागमन की सुगम सुविधा हो तो वहाँ से प्रतिदिन ही निकल आना चाहिये अर्थात् वहाँ ठहरना नहीं चाहिये॥ १२॥

बहिश्च रक्षिभिरन्यदेव कारणमपदिश्य संसृज्येत॥ १३॥

स्वेच्छा से प्रवेश की विधि—किसी काम के बहाने बाहर के सुरक्षाकर्मियों से मेलजोल कर ले॥ १३॥

अन्तश्चारिण्यां च परिचारिकायां विदितार्थायां सक्तमात्मानं रूपयेत्। तद-लाभाच्च शोकमन्तःप्रवेशिनीभिश्च दूतीकल्पं सकलमाचरेत्॥ १४॥

परिचारिका से कृत्रिम प्रेम—अन्तःपुर में आने जाने वाली किसी परिचारिका को नागरक जब यह जान ले कि यह मुझ पर आसक्त है तो बाह्य रूप से उसे अपनी अत्यधिक आसक्ति दिखाये। यदि वह किसी दिन न दीखे तो अपनी अत्यधिक व्याकुलता प्रकट करे। उससे (पूर्वोक्त) दूतीकल्प में बताये गये सारे काम ले॥ १४॥

राजप्रणिधींश्च बुध्येत॥ १५॥

गुप्तचरों से सावधान—राजा के गुप्तचतरों को अवश्य पहचान ले॥ १५॥

दूत्यास्त्वसञ्चारे यत्र गृहीताकारायाः प्रयोज्याया दर्शनयोगस्तत्राव-स्थानम्॥ १६॥

गतिविधियाँ—यदि दूती न आ सके और अनुकूल चेष्टाएँ कर दी गयी हों तो ऐसे स्थान पर खड़ा हो जाये, जहाँ से नायिका का दर्शन दूर से हो सके॥ १६॥

तस्मिन्नपि तु रक्षिषु परिचारिकाव्यपदेशः॥ १७॥

खड़े होकर भी परिचित सुरक्षाकर्मियों को उसी परिचारिका के दर्शन का बहाना करना चाहिये॥ १७॥

चक्षुरनुबध्नन्त्यामिङ्गिताकारनिवेदनम्॥ १८॥

यदि नायिका बार बार उस पर दृष्टि डाले तो नायक को भी संकेत और चेष्टाएँ दिखानी चाहिये॥ १८॥

यत्र सम्पातोऽस्यास्तत्र चित्रकर्मणस्तद्युक्तस्य द्व्यर्थानां गीतवस्तुकानां क्रीडनकानां कृतचिह्नानामापीनकस्याङ्गुलीयकस्य च निधानम्॥ १९॥

चित्र का प्रयोग—जहाँ नायिका की दृष्टि जाती हो, वहाँ दीवार पर या चित्रफलक पर उसके साथ प्रेमपूर्वक अपना चित्र बनावे, श्लिष्ट भाषा में प्रेमव्यञ्जक शब्द या छन्द लिखे, नखक्षतों एवं दन्तक्षतों से चिह्नित गेंद, गुड़िया आदि रख दे और अपने नाम वाली अँगूठी रख दे॥ १९॥

प्रत्युत्तरं तया दत्तं प्रपश्येत्। ततः प्रवेशने यतेत॥ २०॥

उसके द्वारा दिये गये उत्तर को देखे और तत्पश्चात् ही प्रवेश करे॥ २०॥

यत्र चास्या नियतं गमनमिति विद्यात्तत्र प्रच्छन्नस्य प्रागेवावस्थानम्॥ २१॥

जिस स्थान पर नायिका का निश्चित गमन होता हो, वहाँ पहले ही छिपकर बैठ जाये॥ २१॥

आस्तरणप्रावरणवेष्टितस्य वा प्रवेशनिर्हारौ॥ २३॥

अथवा उसे ओढ़ने बिछाने के कपड़ों में लपेटकर लाया और भेजा जा सकता है॥ २३॥

पुटापुटयोगैर्वा नष्टच्छायारूपः ॥ २४ ॥

अथवा पुट और अपुट के योग से अपनी छाया और रूप को लुप्त करके अन्तःपुर में जाया जा सकता है ॥ २४ ॥

तत्रायं प्रयोगाः—नकुलहृदयं चोरकतुम्बीफलानि सर्पाक्षीणि चान्तर्धूमेन पचेत्। ततोऽञ्जनेन समभागेन पेषयेत्। अनेनाभ्यक्तनयनो नष्टच्छायारूपश्चरति। अन्यैश्च जलब्रह्मक्षेमशिरःप्रणीतैर्बाह्यपानकैर्वा ॥ २५ ॥

पुटापुट योग—पुटापुट योग यह है—नकुल का हृदय, चोरक तूम्बी के फल, सर्प की आँखें—इन तीनों वस्तुओं को पुटपाक विधि से अग्नि पर पका लिया जाये। इनके बराबर अंजन मिलाकर पीस लिया जाये। इस अंजन को आँखों में लगाते ही रूप और छाया—दोनों ही तिरोहित हो जाते हैं अर्थात् न रूप किसी को दिखायी देता है और न छाया ही। इनके अतिरिक्त जलब्रह्म, क्षेमशिर प्रणीत बाह्यपानक भी है ॥ २५ ॥

रात्रिकौमुदीषु च दीपिकासम्बाधे सुरङ्गया वा ॥ २६ ॥

दीपावली की रात्रि को दीपक लेकर जब अनेक व्यक्ति इधर उधर दौड़ रहे हों तो वैसा ही वेश बनाकर उनमें मिल जाये या सुरंग के मार्ग से चला जाये ॥ २६ ॥

तत्रैतद्भवति—

द्रव्याणामपि निर्हारे पानकानां प्रवेशने।
आपानकोत्सवार्थेऽपि चेटिकानां च संभ्रमे ॥
व्यत्यासे वेश्मनां चैव रक्षिणां च विपर्यये।
उद्यानयात्रागमने यात्रातश्च प्रवेशने ॥
दीर्घकालोदयां यात्रां प्रोषिते चापि राजनि।
प्रवेशनं भवेत् प्रायो यूनां निष्क्रमणं तथा ॥ २७ ॥

अन्तःपुर में प्रवेश कराने और निकलने के उपाय—जब वस्तुओं को ठेला आदि में लादकर अन्दर से बाहर या बाहर से अन्दर ले जाया जा रहा हो, जब मदिरापान की गोष्ठी या उत्सव आदि में सम्मिलित होने के लिये व्यक्ति आ जा रहे हों, जब राजभवन की चेटियाँ कार्य से व्यग्र होकर इधर उधर भाग दौड़ कर रही हों, जब एक भवन का सामान दूसरे भवन में रखा जा रहा हो, जब सुरक्षाकर्मी बदले जा रहे हों, जब राजपरिवार उद्यानयात्रा के लिये प्रस्थान कर रहा हो या वहाँ से लौट रहा हो, और जब राजा कहीं लम्बी यात्रा के लिये बाहर जा रहे हों—ऐसे अवसरों पर तरुण नागरक अन्तःपुर में सरलता से प्रविष्ट हो सकता है और बाहर निकल सकता है ॥ २७ ॥

परस्परस्य कार्याणि ज्ञात्वा चान्तःपुरालयाः।
एककार्यास्ततः कुर्युः शेषाणामपि वेदनम् ॥
दूषयित्वा ततोऽन्योन्यमेककार्यार्पणे स्थिरः।
अभेद्यतां गतः सद्यो यथेष्टं फलमश्नुते ॥ २८ ॥

अन्तःपुर की स्त्रियाँ परस्पर एक दूसरे के रहस्य को समझकर सङ्गठित हो जायें, और

एक लक्ष्य बनाकर शेष स्त्रियों को भी अपनी ओर तोड़ लें। एक दूसरे को दूषित कर जब सबके ही चरित्र एक से हो जायें, तो कोई किसी का रहस्योद्घाटन नहीं करती और सभी अभीष्ट फल प्राप्त करती हैं॥ २८॥

तत्र राजकुलचारिण्य एव लक्षण्यान् पुरुषानन्तःपुरं प्रवेशयन्ति, नातिसुरक्षत्वादापरान्तिकानाम्॥ २९॥

रानियों के भोगविलास : अपरान्त देश की प्रवृत्ति—अपरान्त देश में राजकुलों में आने वाली स्त्रियाँ ही सुन्दर और चण्डवेग पुरुषों को अन्तःपुर में प्रविष्ट करा देती हैं; क्योंकि वहाँ के अन्तःपुर अत्यधिक सुरक्षित नहीं होते॥ २९॥

क्षत्रियसंज्ञकैरन्तःपुररक्षिभिरेवार्थं साधयन्त्याभीरकाणाम्॥ ३०॥

आभीर की प्रवृत्ति—आभीर राजा के अन्तःपुर में रानियाँ वहाँ के क्षत्रिय-रक्षकों को ही फँसाकर अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेती है॥ ३०॥

प्रेष्याभिः सह तद्वेषान्नागरकपुत्रान् प्रवेशयन्ति वात्सगुल्मकानाम्॥ ३१॥

वत्सगुल्म की प्रवृत्ति—वत्सगुल्म देश के राजकुल में दासियों के साथ दासीवेश में रानी तरुण नागरकों को प्रवेश करा लेती हैं॥ ३१॥

स्वैरेव पुत्रैरन्तःपुराणि कामचारैर्जननीवर्जमुपयुज्यन्ते वैदर्भकाणाम्॥ ३२॥

विदर्भ की प्रवृत्ति—विदर्भ के राजवंश में तो अपने औरस पुत्रों की छोड़कर रानियाँ सभी राजकुमारों से सम्भोग करा लेती हैं॥ ३२॥

तथा प्रवेशिभिरेव ज्ञातिसम्बन्धिभिर्नान्यैरुपयुज्यन्ते स्त्रैराजकानाम्॥ ३३॥

स्त्रीराज्य की प्रवृत्ति—स्त्रीराज्य की रानियाँ केवल सजातीय सम्बन्धियों से ही सम्भोगकर्म कराती हैं, अन्यों से नहीं॥ ३३॥

ब्राह्मणैर्मित्रैर्भृत्यैर्दासचेटैश्च गौडानाम्॥ ३४॥

गौड़ देश की प्रवृत्ति—गौड़ देश की रानियाँ ब्राह्मण, मित्र, भृत्य, दास और चेटों से भी सम्भोग कर लेती हैं॥ ३४॥

परिस्पन्दाः कर्मकराश्चान्तःपुरेष्वनिषिद्धा अन्येऽपि तद्रूपाश्च सैन्धवानाम्॥ ३५॥

सिन्ध देश की प्रवृत्ति—सिन्ध देश में जिन नौकरों और नागरिकों का राजभवन में प्रवेश निषिद्ध नहीं है, उन सबके साथ रानियाँ सम्भोग कर लेती हैं॥ ३५॥

अर्थेन रक्षिणमुपगृह्य साहसिकाः संहताः प्रविशन्ति हैमवतानाम्॥ ३६॥

हैमवतों की प्रवृत्ति—हैमवतों में साहसी एवं तरुण व्यक्ति सुरक्षाकर्मियों को धन से अनुकूल बनाकर, एकत्र होकर, राजभवन में प्रवेश कर जाते हैं॥ ३६॥

पुष्पदाननियोगान्नगरब्राह्मणा राजविदितमन्तःपुराणि गच्छन्ति। पटान्तरितश्चैषामालापः। तेन प्रसङ्गेन व्यतिकरो भवति वङ्गाङ्गकलिङ्गकानाम्॥ ३७॥

अंग-वंग और कलिङ्ग—अंग, वंग और कलिङ्ग देशों में नगर के ब्राह्मण पूजा के फूल देने राजभवनों में आते हैं। रानियाँ उनसे परदे के पीछे से बातें करती हैं और इसी प्रसंग में अवैध सम्बन्ध भी हो जाते हैं॥ ३७॥

संहत्य नवदशेत्येकैकं युवानं प्रच्छादयन्ति प्राच्यानामिति। एवं परस्त्रियः प्रकुर्वीत। इत्यन्तःपुरिकावृत्तम्॥ ३८॥

प्राच्यों की प्रवृत्ति—नौ-दस स्त्रियाँ मिलकर एक चण्डवेग पुरुष को छिपाकर अन्तःपुर में रख लेती हैं—यह प्राच्यों की प्रवृत्ति है। (यदि अन्तःपुर की स्त्रियों के पास जाना ही पड़े तो इस प्रकार जाना चाहिये।) इस प्रकार **अन्तःपुरिकावृत्त पूर्ण** हुआ॥ ३८॥

एभ्य एवं च कारणेभ्यः स्वदारान् रक्षेत्॥ ३९॥

स्त्रीरक्षा का उपाय—इन्हीं कारणों से अपनी स्त्री की रक्षा करे॥ ३९॥

कामोपधाशुद्धान् रक्षिणोऽन्तःपुरे स्थापयेदित्याचार्याः॥ ४०॥

जो व्यक्ति कामविषयक परीक्षा में सफल हुए हों, उन्हीं को अन्तःपुर का रक्षक नियुक्त करना चाहिये—यह **कामशास्त्र के आचार्यों** का मत है॥ ४०॥

ते हि भयेन चार्थेन चान्यं प्रयोजयेयुस्तस्मात् कामभयार्थोपधाशुद्धानिति गोणिकापुत्रः॥ ४१॥

कामविषयक परीक्षा में उत्तीर्ण व्यक्ति भी भय और लोभ से दूसरों को अन्तःपुर में प्रविष्ट करा सकते हैं, इसलिये काम, भय और धन—इन तीनों की परीक्षा में उत्तीर्ण व्यक्ति को ही अन्तःपुर में रक्षक नियुक्त करना चाहिये—यह **गोणिकापुत्र** का मत है॥ ४१॥

अद्रोहो धर्मस्तमपि भयाज्जह्यादतो धर्मभयोपधाशुद्धानिति वात्स्यायनः॥ ४२॥

स्वामिद्रोह करना अधर्म है, लेकिन व्यक्ति भय के कारण उसे भी छोड़ सकता है, अतएव जो निर्भीक और धर्मात्मा हों, उन्हें ही अन्तःपुर में रक्षक नियुक्त करे—यह आचार्य **वात्स्यायन का मत है**॥ ४२॥

परवाक्याभिधायिनीभिश्च गूढाकाराभिः प्रमदाभिरात्मदारानुपदध्याच्छौचा-शौचपरिज्ञानार्थमिति बाभ्रवीयाः॥ ४३॥

परपुरुष के कहे गये वाक्यों का बहाना करके कहने वाली और अपना अभिप्राय छिपा लेने वाली स्त्रियों से अपनी स्त्रियों की परीक्षा करा ले कि उनमें कितनी सदाचारिणी हैं और कितनी दुराचारिणी—ऐसा आचार्य **बाभ्रव्य के अनुयायियों (शिष्यों) का मत है**॥ ४३॥

दुष्टानां युवतिषु सिद्धत्वान्नाकस्माददुष्टदूषणमाचरेदिति वात्स्यायनः॥ ४४॥

दुष्ट व्यक्ति तो स्त्री को फँसाया ही करते हैं, इसलिये अकारण सदाचारियों को दूषित न किया जाये—यह आचार्य **वात्स्यायन का मत है**॥ ४४॥

अतिगोष्ठी निरङ्कुशत्वं भर्तुः स्वैरता पुरुषैः सहानियन्त्रणता प्रवासेऽवस्थानं विदेशे निवासः स्ववृत्त्युपघातः स्वैरिणीसंसर्गः पत्युरीर्ष्यालुता चेति स्त्रीणां विनाशकारणानि॥ ४५॥

विनाश के कारण—अत्यधिक गप्पें मारना, निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता, पुरुषों के साथ खुला व्यवहार, पति के विदेशगमन पर एकाकी रहना, घर से बाहर विदेश में रहना, जीविका-विहीन होना, कुलटा स्त्रियों का संसर्ग और पति से ईर्ष्या रखना—ये स्त्रियों के विनाश के कारण हैं॥ ४५॥

सन्दृश्य शास्त्रतो योगान् पारदारिकलक्षितान्।
न याति च्छलनां कश्चित् स्वदारान् प्रति शास्त्रवित्॥ ४६ ॥

उपसंहार—परकीया स्त्रियों को दुष्ट व्यक्ति जिस तरह से फँसाया करते हैं, उन सबको इस पारदारिक अधिकरण में पढ़कर, कोई भी मर्मज्ञ व्यक्ति अपनी स्त्री के विषय में धोखा नहीं खा सकता॥ ४६ ॥

पाक्षिकत्वात् प्रयोगाणामपायानां च दर्शनात्।
धर्मार्थयोश्च वैलोम्यान्नाचरेत् पारदारिकम्॥ ४७ ॥

शास्त्र में परकीयागमन जीवन को बचाने के अन्तिम उपाय के रूप में ही अनुमत है, परकीया के पीछे लोग मरते भी देखे जाते हैं, इससे धर्म और अर्थ—दोनों का ही विनाश होता है, इसलिये परकीयागमन नहीं करना चाहिये॥ ४७ ॥

तदेतद्दारगुप्त्यर्थमारब्धं श्रेयसे नृणाम्।
प्रजानां दूषणायैव न विज्ञेयोऽस्य संविधिः॥ ४८ ॥

पुरुषों के कल्याण और स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा के लिये यह अधिकरण कहा गया है। अतएव इसमें कहे गये प्रयोगों का उपयोग किसी को दूषित करने के लिये कदापि न किया जाये॥ ४८ ॥

ईश्वरकामित प्रकरण नामक पञ्चम अध्याय सम्पन्न॥

●

६.

वैशिक षष्ठ अधिकरण

प्रथम अध्याय

सहायगम्यागम्यगमनकारणचिन्ताप्रकरण

वेश्यानां पुरुषाधिगमे रतिर्वृत्तिश्च सर्गात्॥ १ ॥

वेश्याओं का काम और प्रयोजन—प्रारम्भ से ही पुरुष की प्राप्ति होने पर वेश्याओं को रतिसुख और जीविका की प्राप्ति होती है॥ १ ॥

रतितः प्रवर्तनं स्वाभाविकं कृत्रिममर्थार्थम्॥ २ ॥

स्वाभाविक और कृत्रिम प्रवृत्ति—जब वेश्या रतिसुख के लिये प्रवृत्त होती है तो उसकी प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है और जब धन के लिये प्रवृत्त होती है तो उसकी प्रवृत्ति कृत्रिम होती है॥ २ ॥

तदपि स्वाभाविकवद् रूपयेत्॥ ३ ॥

कृत्रिम राग को स्वाभाविक दिखाना—वेश्याओं को चाहिये कि जहाँ कृत्रिम राग भी

हो, उसे भी स्वाभाविक के समान ही दिखायें, कृत्रिमता न प्रतीत होने दें, यही उसकी कला-कुशलता है ॥ ३ ॥

कामपरासु हि पुंसां विश्वासयोगात्॥ ४॥

इसका कारण—पुरुष अनुरक्त स्त्री में ही कामासक्त हुआ करते हैं ॥ ४ ॥

अलुब्धतां च ख्यापयेत् तस्य निदर्शनार्थम्॥ ५॥

प्रेम के समय निर्लोभता दिखाये—केवल नायक को दिखाने के लिये वेश्या निर्लोभ बन जाये ॥ ९ ॥

न चानुपायेनार्थान् साधयेदायतिसंरक्षणार्थम्॥ ६॥

उपाय से ही धनप्राप्ति—अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखने के लिये वेश्या को चाहिये कि विना उपाय के धन प्राप्त न करे ॥ ६ ॥

नित्यमलङ्कारयोगिनी राजमार्गावलोकिनी दृश्यमाना न चातिविवृता तिष्ठेत्। पण्यसधर्मत्वात्॥ ७॥

रहन-सहन—वेश्या को चाहिये कि सदैव सजी-सँवरी रहे, सड़क की ओर देखती रहे, ऐसे स्थान पर बैठे कि सबको सरलता में दिखती रहे, लेकिन अत्यधिक खुली होकर न बैठे, क्योंकि वह बाजार में बिकने वाली वस्तु जैसी ही है ॥ ७ ॥

यैर्नायकमावर्जयेदन्याभ्यश्चावच्छिन्द्यादात्मनश्चानर्थं प्रतिकुर्यादर्थं च साधयेन्न च गम्यैः परिभूयेत तान् सहायान् कुर्यात्॥ ८॥

वेश्याओं के सहायक—वेश्याओं को अपना सहायक उन लोगों को बनाना चाहिये जो नायक को अपनी ओर आकृष्ट कर सकें, दूसरी वेश्या से नायकों को विरक्त कर दें, वेश्याओं पर आये अनर्थों को दूर कर दें, उसका प्रयोजन सिद्ध कर दें और जिन्हें वेश्यानायक दबा न सकें ॥ ८ ॥

ते त्वारक्षकपुरुषा धर्माधिकरणस्था दैवज्ञा विक्रान्ताः शूराः समानविद्याः कलाग्राहिणः पीठमर्दविटविदूषकमालाकारगान्धिकशौण्डिकरजकनापितभिक्षुकास्ते च ते च कार्ययोगात्॥ ९॥

वेश्या की रक्षा करने वाला शासकीय अधिकारी, वकील, ज्योतिषी, साहसी, शूरवीर, वेश्या के समान ही कलाकुशल, कला सीखने वाला, पीठमर्द, विदूषक, मालाकार, गन्धी, मदिरा-विक्रेता, धोबी, नाई, भिखारी और ऐसे ही अन्य पुरुष, जो उसे सहायता दे सकें, उसके सहायक बन सकते हैं ॥ ९ ॥

केवलार्थास्त्वमी गम्याः—स्वतन्त्रः पूर्वे वयसि वर्तमानो वित्तवानपरोक्षवृत्तिरधिकरणवानकृच्छ्राधिगतवित्तः। सङ्घर्षवान् सन्तताय: सुभगमानी श्लाघनकः षण्डकश्च पुंशब्दार्थी। समानस्पर्धी स्वभावतस्त्यागी। राजनि महामात्रे वा सिद्धो दैवप्रमाणो वित्तावमानी गुरूणां शासनातिगः सजातानां लक्ष्यभूतः सवित्त एकपुत्रो लिङ्गी प्रच्छन्नकामः शूरो वैद्यश्चेति॥ १०॥

धन के लिये मिलने योग्य पुरुष—वेश्या इन व्यक्तियों से धन के लिये सम्बन्ध स्थापित

करती है—जो पारिवारिक बन्धनों से पूर्णत: मुक्त हो, जो तरुण हो, धनवान् हो और तत्काल खर्च कर सके, जिसके पास अत्यधिक पैतृक सम्पदा हो, जो स्वयं न कमाकर दूसरों की कमाई खर्च करता हो, जो अन्य वेश्यागामियों से प्रतिद्वन्द्विता रखता हो, जो अपने रूप, सौन्दर्य और सम्पत्ति का अभिमान रखता हो, जो नपुंसक होकर भी अपने को समर्थ पुरुष समझता हो, जो दानशील हो, जो राजा या उसके राजपुरुषों पर अपना प्रभाव रखता हो, जो प्रख्यात ज्योतिषी, चरित्रहीन, माता पिता का इकलौता बेटा, प्रच्छन्नकाम संन्यासी, शूरवीर और वैद्य हो ॥ १० ॥

प्रीतियशोऽर्थास्तु गुणतोऽधिगम्या: ॥ ११ ॥

गुण के कारण मिलने योग्य पुरुष—जो वेश्याएँ विशुद्ध प्रीति और यश की इच्छा रखती हैं, वे गुणी पुरुषों से संसर्ग करती हैं ॥ ११ ॥

महाकुलीनो विद्वान् सर्वसमयज्ञ: कविराख्यानकुशलो वाग्मी प्रगल्भो विविधशिल्पज्ञो वृद्धदर्शी स्थूललक्षो महोत्साहो दृढभक्तिरनसूयकस्त्यागी मित्रवत्सलो घटागोष्ठीप्रेक्षणकसमाजसमस्याक्रीडनशीलो नीरुजोऽव्यङ्गशरीर: प्राणवानमद्यपो वृषो मैत्र: स्त्रीणां प्रणेता लालयिता च। न चासां वशग: स्वतन्त्रवृत्तिरनिष्ठुरोऽनीर्ष्यालुरनवशङ्की चेति नायकगुणा: ॥ १२ ॥

नायकोचित गुण—प्रतिष्ठित कुल, प्रख्यात विद्वान्, सभी प्रकार के संकेतों का ज्ञाता, कवि या कथाकार, बोलने में निपुण, चतुर, विविध शिल्पों का ज्ञानी, विनम्र, महाशय, उत्साहसम्पन्न, दृढ़भक्त, अनिन्दक, त्यागशील, मित्रवत्सल, घटा-गोष्ठी-नाटक-समाज-उत्तसव-समस्याक्रीड़ा आदि में रुचि रखने वाला, नीरोग एवं स्वस्थ शरीर, शक्तिशाली, मदिरापान से दूर, प्रचण्ड कामशक्ति वाला, दयासम्पन्न, स्त्रियों के सदाचार का समर्थक और रक्षक, स्त्रियों के वशीभूत न होने वाला, स्वतन्त्रवृत्ति वाला, सहृदय एवं ईर्ष्यारहित और नि:शंक स्वभाव वाला—ये नायक के गुण हैं ॥ १२ ॥

नायिका पुना रूपयौवनलक्षणमाधुर्ययोगिनी गुणेष्वनुरक्ता न तथार्थेषु प्रीतिसंयोगशीला स्थिरमतिरेकजातीया विशेषार्थिनी नित्यमकदर्यवृत्तिर्गोष्ठीकलाप्रिया चेति नायिकागुणा: ॥ १३ ॥

नायिका के गुण—यह सुन्दरी, लावण्यसम्पन्न, रूप और यौवन से युक्त, सौभाग्यसूचक चिह्नों वाली, माधुर्यसम्पन्न, नायक के गुणों में अनुरक्त, किन्तु उसके धन में आसक्ति न रखने वाली, प्रेमपूर्वक सम्भोग चाहने वाली, स्थिर बुद्धि वाली, माया-मोह में न पड़ने वाली, नायक की विशेषताओं पर रीझने वाली, पवित्रतापूर्वक जीवनयापन करने वाली तथा गोष्ठी एवं कलाओं से प्रेम करने वाली हो ॥ १३ ॥

नायक-नायिकयो पुनर्बुद्धिशीलाचार आर्जवं कृतज्ञता दीर्घदूरदर्शित्वं अविसंवादिता देशकालज्ञता नागरकता दैन्यातिहासपैशुन्यपरिवादक्रोधलोभस्तम्भचापलवर्जनं पूर्वाभिभाषिता कामसूत्रकौशलं तदङ्गविद्यासु चेति साधारणगुणा: ॥ १४ ॥

दोनों के सामान्य गुण—बुद्धि, शील, आचार, निश्छलता, कृतज्ञता, दूरदर्शिता, वाद-

विवाद से दूर रहना, देश और काल को समझना, नागरक के गुमों से युक्त होना एवं दीनता, अतिहास-परिहास, चुगुलखोरी, परनिन्दा, क्रोध, लोभ, अभिमान और चपलता आदि दोषों से रहित होना, विना पूछे न बोलना, कामकलानिपुणता और उसकी अंगभूत गायन, वादन, नृत्य आदि विद्याओं में अभिज्ञता—ये नायक और नायिका, दोनों के सामान्य गुण हैं ॥ १४ ॥

गुणविपर्यये दोषाः ॥ १५ ॥

नायक-नायिका के दोष—उपर्युक्त गुणों के विरुद्ध जो बातें हैं, ये दोष मानी जाती हैं ॥ १५ ॥

क्षयी रोगी कृमिशकृद्वायसास्यः प्रियकलत्रः परुषवाक्कदर्यो निर्घृणो गुरुजनपरित्यक्तः स्तेनो दम्भशीलो मूलकर्मणि प्रसक्तो मानापमानयोरनपेक्षी द्वेष्यै-रप्यर्थहार्यो विलज्ज इत्यगम्याः ॥ १६ ॥

अगम्य नायक—जो क्षयरोगी, कोढ़ी, कृमिरोगी हो, जिसके मुख से दुर्गन्ध आती हो, जिसे अपनी पत्नी प्रिय हो, जो कटुभाषी हो, दुराचारी हो, निर्दयी हो, माता पिता द्वारा बहिष्कृत हो, जो चोर, कपटी, जादू टोने वाला, मानापमान की चिन्ता न करने वाला, लोभवश शत्रुओं से भी मिल जाने वाला और निर्लज्ज हो—ऐसे पुरुष के साथ वेश्या को समागम नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥

रागो भयमर्थः सङ्घर्षो वैरनिर्यातनं जिज्ञासा पक्षः खेदो धर्मो यशोऽनुकम्पा सुहृद्वाक्यं ह्रीः प्रियसादृश्यं धन्यता रागापनयः साजात्यं साहवेश्यं सातत्यमायतिश्च गमनकारणानि भवन्तीत्याचार्याः ॥ १७ ॥

मिलन के कारण—अनुराग, भय, धन, सङ्घर्ष, वैर निकालना, जानने की इच्छा, पक्षपात, खेद (परिश्रम), धर्म, यश, अनुकम्पा, प्रियवाक्य, लज्जा, प्रियतम से समानता, दीनता, राग की शान्ति, सजातीयता, साथ रहना और प्रभाव—ये वेश्या के गमन के कारण हैं, ऐसा कामशास्त्र के आचार्यों का मत है ॥ १७ ॥

अर्थोऽनर्थप्रतीघातः प्रीतिश्चेति वात्स्यायनः ॥ १८ ॥

अर्थ (धन), अनर्थ की हानि (अनिष्ट का निवारण) और प्रीति—ये गमन के कारण हैं—ऐसा आचार्य वात्स्यायन का मत है ॥ १८ ॥

अर्थस्तु प्रीत्या न बाधितः। अस्य प्राधान्यात् ॥ १९ ॥

अर्थ तो प्रीति से बाधित नहीं होता, क्योंकि वेश्या के लिये अर्थ ही प्रधान होता है ॥ १९ ॥

भयादिषु तु गुरुलाघवं परीक्ष्यमिति सहायगम्यागम्यगमनकारण-चिन्ता ॥ २० ॥

भय आदि जो गमन के कारण बताये गये हैं, उनमें गुरुता और लघुता की परीक्षा कर ले। इस प्रकार सहाय, गम्य, अगम्य और गमन के कारणों का विचार पूर्ण हुआ ॥ २० ॥

उपमन्त्रितापि गम्येन सहसा न प्रतिजानीयात्। पुरुषाणां सुलभावमानि-त्वात् ॥ २१ ॥

गम्योपावर्तन प्रकरण—यदि समागमयोग्य पुरुष भी समागमहेतु आमन्त्रित करें, तो भी

वेश्या को सहसा नहीं मिलना चाहिये, क्योंकि पुरुषों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे सुलभ वस्तु का अपमान कर, दुर्लभ की आकांक्षा करते हैं॥ २१॥

भावजिज्ञासार्थं परिचारकमुखान् संवाहकगायनवैहासिकान् गम्ये तद्भाक्तन् वा प्रणिदध्यात्॥ २२॥

भावजिज्ञासा—नायक के भावों को जानने के लिये प्रमुख नौकर, संवाहक (हाथ-पैर दबाने वाला), गायक और विदूषक को या दूसरे जो भी उसके भक्त हों, उन्हें नियुक्त करें॥ २२॥

तदभावे पीठमर्दादीन्। तेभ्यो नायकस्य शौचाशौचं रागापरागौ सक्तासक्ततां दानादाने च विद्यात्॥ २३॥

इनके अभाव में पीठमर्द[1] आदि को नियुक्त करें। इनके माध्यम से ही नायक का अपने प्रति जो शौच-अशौच, राग-अपराग, सक्तता-असक्तता, दान-अदान का भाव हो, उन सबको जान लें॥ २३॥

सम्भावितेन च सह विटपुरोगां प्रीतिं योजयेत्॥ २४॥

जिसमें अपनी इच्छा की सभी बातों की सम्भावना हो उसके पीछे प्रेमपूर्वक विट लगा दें॥ २४॥

लावककुक्कुटमेषयुद्धशुकशारिकाप्रलापनप्रेक्षणककलाव्यपदेशेन पीठमर्दो नायकं तस्या उदवसितमानयेत्॥ २५॥

प्रेमसूत्र जोड़ने के उपाय—पीठमर्द को चाहिये कि लवा, मुर्गा और भेड़ा की लड़ाई, शुक-सारिका आदि की बातें, नाटक-तमाशा आदि दिखाने, गीत-संगीत आदि का कलाकौशल दिखाने के व्याज से नायक को वेश्या के घर ले जाये॥ २५॥

तां वा तस्य॥ २६॥

उस वेश्या को ही उस नायक के घर ले जाये॥ २६॥

आगतस्य प्रीतिकौतुकजननं किञ्चिद् द्रव्यजातं स्वयमिदमसाधारणोपभोग्यमिति प्रीतिदायं दद्यात्॥ २७॥

आगत का स्वागत—जब नायक वेश्या के घर आ जाये, तो वेश्या उसे प्रेमोपहार स्वरूप ऐसी बहुमूल्य एवं असाधारण वस्तु स्वयं भेंट करे जो प्रीति एवं विस्मय उत्पन्न करने वाली हो॥ २७॥

यत्र च रमते तया गोष्ठ्यैनमुपचारैश्च रञ्जयेत्॥ २८॥

गोष्ठी में सम्मान—और जहाँ नायक का मन रमता हो, उसी गोष्ठी में उपयुक्त उपचारों से वेश्या उसका मनोरंजन करे॥ २८॥

गते च सपरिहासप्रलापां सोपायनां परिचारिकामभीक्ष्णं प्रेषयेत्॥ २९॥

प्रेम की दृढ़ता हेतु उपाय—नायक के घर चले जाने पर वेश्या मुस्कानपूर्वक मधुर वचन बोलने वाली परिचारिका द्वारा प्रेमोपहार बार बार भिजवाये॥ २९॥

---

१. पीठमर्द, विदूषक और विट—ये सब नायक के दूत होते हैं।

सपीठमर्दायाश्च कारणापदेशेन स्वयं गमनमिति गम्योपावर्तनम्॥ ३०॥

स्वयं दर्शन—किसी बहाने से वेश्या पीठमर्द (सम्भोग की आयोजना करने वाला और परामर्शदाता) को साथ लेकर स्वयं नायक के घर जाये। नायक को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रकरण पूर्ण हुआ॥ ३०॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

ताम्बूलानि स्त्रजश्चैव संस्कृतं चानुलेपनम्।
आगतस्याहरेत् प्रीत्या कलागोष्ठीश्च योजयेत्॥ ३१॥

उपसंहार—इस विषय में तीन आनुवंश्य श्लोक उद्धृत करते हैं—

संस्कृत पान, संस्कृत माला, संस्कृत चन्दन और संस्कृत इत्र आये हुए नायक को प्रेमपूर्वक दे और कलागोष्ठियों का आयोजन करे॥ ३१॥

द्रव्याणि प्रणये दद्यात् कुर्याच्च परिवर्तनम्।
सम्प्रयोगस्य चाकूतं निजेनैव प्रयोजयेत्॥ ३२॥

आदान-प्रदान—प्रेम बढ़ाने के लिये प्रेमोपहार दे और ले। सम्भोग के गुप्त संकेतों को वेश्या स्वयं ही प्रकट करे॥ ३२॥

प्रीतिदायैरुपन्यासैरुपचारैश्च केवलैः।
गम्येन सह संसृष्टा रञ्जयेत्तं ततः परम्॥ ३३॥

प्रीतिपूर्वक दिये जाने वाले उपहारों से, पीठमर्द आदि की बातों से और सम्भोगसूचक भावों से पहले नायक को अनुरक्त करे, तत्पश्चात् सम्भोग करे॥ ३३॥

सहायगम्यागम्यगमन कारणचिन्ता प्रकरण
नामक प्रथम अध्याय सम्पन्न॥

द्वितीय अध्याय

कान्तानुवृत्तप्रकरण

संयुक्ता नायकेन तद्रञ्जनार्थमेकचारिणीवृत्तमनुतिष्ठेत्॥ १॥

एकचारिणी व्रत—नायक के साथ संयुक्त होने पर उसको अनुरक्त करने के लिये एकचारिणीवृत्त का अनुकरण करना चाहिये॥ १॥

रञ्जयेन्न तु सज्जेत सक्तवच्च विचेष्टेतेति संक्षेपोक्तिः॥ २॥

कान्तानुवृत्त—वेश्या को चाहिये कि उस नायक को पूर्णतः अनुरक्त कर ले और स्वयं भी आसक्त के समान चेष्टाएँ करे, किन्तु आसक्त न हो। यह वेश्या के अधीन होने वाला चरित्र संक्षेप में कह दिया गया है॥ २॥

मातरि च क्रूरशीलायामर्थपरायां चायत्ता स्यात्॥ ३॥

माँ के संरक्षण में कार्य—वेश्या को क्रूर स्वभाव वाली और धनलोलुप माँ के अधीन ही रहना चाहिये॥ ३॥

तदभावे मातृकायाम्॥ ४॥

यदि माँ न हो तो बनायी हुई माँ या मौसी के अधीन रहे॥ ४॥

सा तु गम्येन नातिप्रीयेत॥ ५॥

सभी माँ हो या मौसी, ये वेश्याएँ नायकों पर अतिस्नेह नहीं दिखातीं॥ ५॥

प्रसह्य च दुहितरमानयेत्॥ ६॥

नायकों के साथ देर तक बैठने पर लड़की को बलपूर्वक ले जाये॥ ६॥

तत्र तु नायिकायाः सन्ततमरतिर्निर्वेदो व्रीडा भयं च॥ ७॥

बेटी का शिष्टता-प्रदर्शन—माँ द्वारा ऐसा व्यवहार करने पर वेश्या अपने नायक के समक्ष जाने में अरुचि, लज्जा और भय दिखाये॥ ७॥

न त्वेव शासनातिवृत्तिः॥ ८॥

माँ का आज्ञापालन—कभी भी ऐसा न हो कि माँ की आज्ञा न माने॥ ८॥

व्याधिं चैकमनिमित्तमजुगुप्सितमचक्षुर्ग्राह्यमनित्यं च ख्यापयेत्॥ ९॥

व्याधि का बहाना—नायक के पास से जाने के लिये वेश्या को चाहिये कि किसी ऐसी व्याधि का बहाना बनाये जो अकारण, अनिन्दित, आँखों से न दिखने वाली और सदैव न रहने वाली हो॥ ९॥

सति कारणे तदपदेशं च नायकानभिगमनम्॥ १०॥

बहाने का फल—मिलन का कारण उपस्थित होने पर व्याधि का बहाना करना न मिलना ही है॥ १०॥

निर्माल्यस्य तु नायिका चेटिकां प्रेष्येत्ताम्बूलस्य च॥ ११॥

इसकी विधि—स्वागत सत्कार में प्रयुक्त होने वाली वस्तु पान, इलायची आदि नौकरानी के हाथों भिजवा दे॥ ११॥

व्यवाये तदुपचारेषु विस्मयः॥ १२॥

मिलनविषयक बातें—सम्भोग काल में नायक द्वारा प्रयुक्त उपचारों पर विस्मय प्रदर्शित करे॥ १२॥

चतुःषष्ट्यां शिष्यत्वम्॥ १३॥

सम्भोग की अङ्गभूत आलिङ्गन आदि चौंसठ कामकलाओं में नायक की शिष्यता स्वीकारे॥ १३॥

तदुपदिष्टानां च योगानामाभीक्ष्ण्येनानुयोगः॥ १४॥

नायक जिन जिन योगों को बताये, उस पर केवल उन्हीं योगों का प्रयोग करे॥ १४॥

तत्सात्म्याद् रहसि वृत्तिः॥ १५॥

एकान्त में नायक के अनुकूल ही व्यवहार करे॥ १५॥

मनोरथानामाख्यानम्॥ १६॥

मनोरथ कथन—एकान्त में नायक से अपनी इच्छाएँ कह दे॥ १६॥

गुह्यानां वैकृतप्रच्छादनम्॥ १७॥

दोषों को छिपाना—यदि गुह्यांगों में कोई कुरूपता, दोष या विकार हो तो उसे छिपाये रखे॥ १७॥

शयने परावृत्तस्यानुपेक्षणम्॥ १८॥

शयन-विधि—यदि नायक करवट बदलकर सोये तो वेश्या को उसकी ओर मुख करके ही सोना चाहिये॥ १८॥

आनुलोम्यं गुह्यस्पर्शने॥ १९॥

नायक द्वारा काँख, योनि आदि का स्पर्श करने पर उसे न रोके॥ १९॥

सुप्तस्य चुम्बनमालिङ्गनं च॥ २०॥

सोते हुए नायक का चुम्बन और आलिङ्गन करे॥ २०॥

प्रेक्षणमन्यमनस्कस्य। राजमार्गे च प्रासादस्थायास्तत्र विदिताया व्रीडा शाठ्यनाशः॥ २१॥

देखने की विधि—सड़क पर जाते हुए अन्यमनस्क नायक को निर्निमेष दृष्टि से देखे, दूर निकल जाने पर झरोखे से देखे और यदि उसकी दृष्टि पड़ जाये तो शरमा जाये॥ २१॥

तद्द्वेष्ये द्वेष्यता। तत्प्रिये प्रियता। तद्रम्ये रतिः। तमनु हर्षशोकौ। स्त्रीषु जिज्ञासा। कोपश्चादीर्घः॥ २२॥

व्यवहार की विधि—नायक के शत्रु को अपना शत्रु समझे, उसके प्रेमी से प्रेम रखे, उसके मनोनुकूल स्थान पर समागम करे, उसके हर्ष में हर्षित और दुःख में दुःखी हो, उसकी स्त्रियों के विषय में जानने की इच्छा रखे और क्रोध अल्पकालिक ही करे॥ २२॥

स्वकृतेष्वपि नखदशनचिह्नेष्वन्याशङ्का॥ २३॥

अपने द्वारा किये गये नखक्षतों एवं दन्तक्षतों को भी किसी अन्य के होने की शङ्का करे॥ २३॥

अनुरागस्यावचनम्॥ २४॥

अनुराग को मुख से कदापि न कहे॥ २४॥

आकारतस्तु दर्शयेत्॥ २५॥

परन्तु अपनी चेष्टाओं से प्रकट कर दे, मुख से न कहे॥ २५॥

मदस्वप्नव्याधिषु तु निर्वचनम्॥ २६॥

मदिरापान, सोने और उन्माद आदि व्याधि के बहाने अपनी सम्भोगेच्छा स्पष्ट कर दे॥ २६॥

श्लाघ्यानां नायककर्मणां च॥ २७॥

नायक के सत्कर्मों को भी इसी अवस्था में कह दे॥ २७॥

तस्मिन् ब्रुवाणे वाक्यार्थग्रहणम्। तदवधार्य प्रशंसाविषये भाषणम्। तद्वाक्यस्य चोत्तरेण योजनम्। भक्तिमाँश्चेत्॥ २८॥

बोलने की रीति—नायक के बोलने पर उसकी बातों का आशय समझे, उसकी बातों को समझकर प्रशंसा भी करे, उससे विषयों पर वार्तालाप करे और उसकी बातों का उत्तर तभी दे जब यह समझ ले कि यह स्नेहसम्पन्न है ॥ २८ ॥

कथास्वनुवृत्तिरन्यत्र सपत्न्याः ॥ २९ ॥

केवल सपत्नियों की प्रेमकथाओं को छोड़कर, नायक की प्रत्येक बात में 'हाँ' करनी चाहिये ॥ २९ ॥

निःश्वासे जृम्भिते स्खलिते पतिते वा तस्य चार्तिमाशंसीत ॥ ३० ॥

सहानुभूति के अवसर—नायक के लम्बी साँसें लेने, जँभाई लेने, धन आदि भूल जाने या गिरने पर दुःख प्रकट करे ॥ ३० ॥

क्षुतव्याहृतविस्मितेषु जीवेत्युदाहरणम् ॥ ३१ ॥

नायक के छींकने, महत्त्वपूर्ण बात कहने और आश्चर्य व्यक्त करने पर 'जीते रहो' ऐसा कहे ॥ ३१ ॥

दौर्मनस्ये व्याधिदौर्हृदापदेशः ॥ ३२ ॥

नायक का मन मलिन देखकर उसका कारण पूछे और स्वयं भी रोग और शत्रु का बहाना करे ॥ ३२ ॥

गुणतः परस्याकीर्तनम् ॥ ३३ ॥

नायक के समक्ष किसी अन्य के गुणों की प्रशंसा न करे ॥ ३३ ॥

न निन्दा समानदोषस्य ॥ ३४ ॥

जिसमें नायक के समान ही दोष हों, उसकी निन्दा कदापि न करे ॥ ३४ ॥

दत्तस्य धारणम् ॥ ३५ ॥

नायक द्वारा दी गयी वस्तु को उसके सामने सदैव धारण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

वृथापराधे तद्व्यसने वालङ्कारस्याग्रहणभोजनं च ॥ ३६ ॥

मिथ्या आरोप लगाने या नायक पर सङ्कट आने पर उसे भोजन एवं शृंगार का परित्याग कर देना चाहिये ॥ ३६ ॥

तद्युक्ताश्च विलापाः ॥ ३७ ॥

उसके लिये शोकाकुल होकर विलाप करे ॥ ३७ ॥

तेन सह देशमोक्षं रोचयेद्राजनि निष्क्रयं च ॥ ३८ ॥

नायक के साथ सहजीवन को प्राथमिकता—नायक के साथ देश छोड़कर भाग जाने की इच्छा व्यक्त करे अथवा राजकीय व्यवस्था के अनुरूप खरीद डालने की बात कहे ॥ ३८ ॥

सामर्थ्यमायुषस्तदवाप्तौ ॥ ३९ ॥

जीवनसार्थक मानना—वेश्या नायक के मिलन से ही अपना जीवन सार्थक होना कहे ॥ ३९ ॥

तस्यार्थाधिगमेऽभिप्रेतसिद्धौ शरीरोपचये वा पूर्वसम्भाषित इष्टदेवतोपहारः ॥ ४० ॥

देवपूजा—नायक को धन मिलने, मनोवाञ्छित कार्य पूरा होने और शारीरिक रोग के नष्ट हो जाने पर पहले बोली गयी देवभेंट चढ़ाये॥ ४०॥

नित्यमलङ्कारयोगः। परिमितोऽभ्यवहारः॥ ४१॥

भोजन और अलंकार की रीति—सदैव सजी-सँवरी रहना चाहिये और सन्तुलित भोजन करना चाहिये॥ ४१॥

गीते च नामगोत्रयोर्ग्रहणम्। ग्लान्यामुरसि ललाटे च करं कुर्वीत। तत्सुखमुपलभ्य निद्रालाभः॥ ४२॥

वेश्या जब गाये तो उसमें नायक का नाम और कुल रखे। अस्वस्थ होने पर उसका हाथ अपने मस्तक और वक्ष पर रख ले। उसके हाथ के स्पर्श के बहाने सो जाये॥ ४२॥

उत्सङ्गे चास्योपवेशनं स्वपनं च। गमनं वियोगे॥ ४३॥

नायक की गोद में बैठना और सोना चाहिये और जब वह जाये तो उसके पीछे पीछे भी चले॥ ४३॥

तस्मात् पुत्रार्थिनी स्यात्। आयुषो नाधिक्यमिच्छेत्॥ ४४॥

नायक से सन्तान की इच्छा—उस नायक से पुत्रप्राप्ति की कामना करे और आयु में उससे अधिक न जीना चाहे॥ ४४॥

एतस्याविज्ञातमर्थं रहसि न ब्रूयात्॥ ४५॥

आवश्यक बातें—जिस धन का नायक को पता न हो, उस धन को कभी एकान्त में भी नहीं बताना चाहिये॥ ४५॥

व्रतमुपवासं चास्य निर्वर्तयेत् मयि दोष इति। अशक्ये स्वयमपि तद्रूपा स्यात्॥ ४६॥

मुझे दोष लगेगा, यह कहकर नायक को व्रत और उपवास करने से रोक दे। यदि वह कहने से भी न रुके तो उसके साथ स्वयं भी व्रत और उपवास करे॥ ४६॥

विवादे तेनाप्यशक्यमित्यर्थनिर्देशः॥ ४७॥

यदि किसी के साथ विवाद हो जाये तो कह दे कि इसे तो वही निपटा सकता है, दूसरा कोई नहीं॥ ४७॥

तदीयमात्मीयं वा स्वयमविशेषेण पश्येत्॥ ४८॥

नायक की सम्पत्ति को अपनी ही समझे॥ ४८॥

तेन विना गोष्ठ्यादीनामगमनमिति॥ ४९॥

उसके बिना गोष्ठी या उत्सव में न जाये॥ ४९॥

निर्माल्यधारणे श्लाघ्या उच्छिष्टभोजने च॥ ५०॥

नायक की उतारी हुई वस्तुएँ धारण करने और उसका उच्छिष्ट (जूठन) खाने में गौरव का अनुभव करे॥ ५०॥

कुलशीलशिल्पजातिविद्यावर्णवित्तदेशमित्रगुणवयोमाधुर्यपूजा॥ ५१॥

नायक के कुल, शील, शिल्प, जाति, विद्या, वर्ण, धन, देश, मित्र, गुण, अवस्था और मधुरता की सदैव प्रशंसा करे॥ ५१॥

गीतादिषु चोदनमभिज्ञस्य॥ ५२॥

यदि नायक गाना बजाना जानता हो तो उसे इस कार्य में लगाये॥ ५२॥

भयशीतोष्णवर्षाण्यनपेक्ष्य तदभिगमनम्॥ ५३॥

प्रतिकूल ऋतु में भी अभिसार—यदि नायक के साथ समागम का समय निश्चित हो गया है तो भय, शीत, और वर्षा की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये॥ ५३॥

स एव च मे स्यादित्यौर्ध्वदेहिकेषु वचनम्॥ ५४॥

जन्मान्तर सम्बन्धों की कामना—'मरने के पश्चात् दूसरे जन्म में मुझे आप ही प्रियतम के रूप में प्राप्त हों'—ऐसा कहे॥ ५४॥

तदिष्टरसभावशीलानुवर्तनम्॥ ५५॥

नायक को जो रस, भाव और शील प्रिय लगता हो, उसका ही अनुकरण करे॥ ५५॥

मूलकर्माभिशङ्का॥ ५६॥

वशीकरण की शंका—नायक के ऊपर जादू-टोने की शङ्का करे॥ ५६॥

तदभिगमने च जनन्या सह नित्यं विवादः॥ ५७॥

माँ से विवाद—नायक से मिलने के लिये माँ से नित्य विवाद करे॥ ५७॥

बलात्कारेण च यद्यन्यत्र तया नीयेत तदा विषमनशनं शस्त्रं रज्जुमिति कामयेत॥ ५८॥

माँ को भयभीत करना—यदि माँ उसे बलपूर्वक किसी अन्य के साथ सम्भोग के लिये कहे तो यह कह दे—'जहर खा लूँगी, खाना नहीं खाऊँगी, चाकू मारकर आत्महत्या कर लूँगी, फाँसी लगाकर मर जाऊँगी'॥ ५८॥

प्रत्यायनं च प्रणिधिभिर्नायकस्य। स्वयं वात्मनो वृत्तिग्रहणम्॥ ५९॥

रहस्योद्घाटन पर प्रयास—यदि नायक को यह पता लग जाये कि यह अन्य से भी सम्बन्ध रखती है तो अपने आदमियों द्वारा नायक को विश्वास दिलवा दे। यदि अपने आदमियों से यह सम्भव न हो पाये तो स्वयं जाकर इस वृत्ति (वेश्यावृत्ति) की निन्दा करे॥ ५९॥

न त्वेवार्थेषु विवादः॥ ६०॥

धन के विषय में विवाद नहीं—धन के विषय में विवाद न करें॥ ६०॥

मात्रा बिना किञ्चिन्न चेष्टेत॥ ६१॥

सभी कार्यों में माता की सहमति—माँ से बिना पूछे कोई कार्य न करे अर्थात् सब काम माँ से पूछकर ही करे॥ ६१॥

प्रवासे शीघ्रागमनाय शापदानम्॥ ६२॥

नायक के विदेशगमन पर शपथ—यदि नायक किसी कार्य से विदेश जा रहा हो तो उसे शीघ्र लौटने की शपथ अवश्य दिलाये॥ ६२॥

प्रोषिते मृजानियमश्चालङ्कारस्य प्रतिषेधः। मङ्गलं त्वपेक्ष्यम्। एकं शङ्खवलयं वा धारयेत्॥ ६३॥

प्रवासवृत्त—नायक के बाहर जाने पर एकचारिणी, शरीर का संस्कार न करे अर्थात् तेल उबटन साबुन आदि छोड़ दे, अलंकार भी धारण न करे। मङ्गल की तो सतत अपेक्षा है, इसलिये माङ्गलिक चिह्न (शङ्खवलय) अवश्य करे॥ ६३॥

स्मरणमतीतानाम्। गमनमीक्षणिकोपश्रुतीनाम्। नक्षत्रचन्द्रसूर्यताराभ्यः स्पृहणम्॥ ६४॥

नायक की मधुर स्मृतियों का वर्णन कहे, शकुन बताने वाली स्त्रियों के यहाँ जाये, रात को शकुन देखे और चाँदनी रात में चमकते चन्द्रमा और नक्षत्रों से ईर्ष्या करे॥ ६४॥

इष्टस्वप्नप्रदर्शने तत्सङ्गमो ममास्त्विति वचनम्॥ ६५॥

शुभ स्वप्न देखकर सबसे यह कहे कि अब नायक से समागम होगा॥ ६५॥

उद्वेगोऽनिष्टे शान्तिकर्म च॥ ६६॥

यदि अनिष्टसूचक स्वप्न दिखे तो उद्वेग (घबड़ाहट) दिखाये और शान्तिकर्म कराये॥ ६६॥

प्रत्यागते कामपूजा॥ ६७॥

नायक के आने के बाद के कृत्य—नायक के सकुशल आ जाने पर कामदेव की पूजा करनी चाहिये॥ ६७॥

देवतोपहाराणां करणम्॥ ६८॥

प्रवासकाल में जिन जिन देवताओं की मनौती माँगी हो, उन उन के मन्दिर में जाकर भेंट चढ़ाये॥ ६८॥

सखीभिः पूर्णपात्रस्याहरणम्॥ ६९॥

सखियों के साथ पूर्णपात्र का ग्रहण करे॥ ६९॥

वायसपूजा च॥ ७०॥

काकबलि—कौओं को बलि प्रदान करे॥ ७०॥

प्रथमसमागमानन्तरं चैतदेव वायसपूजावर्जम्॥ ७१॥

कौओं की पूजा को छोड़कर, शेष सभी कार्य प्रथम समागम के बाद ही करे॥ ७१॥

सक्तस्य चानुमरणं ब्रूयात्॥ ७२॥

साथ ही मरना—आसक्त नायक के साथ ही मर जाने (सती हो जाने) की बात कहे॥ ७२॥

निसृष्टभावः समानवृत्तिः प्रयोजनकारी निराशङ्को निरपेक्षोऽर्थेष्विति सक्तलक्षणानि॥ ७३॥

आसक्त की पहचान—आसक्त नायक वही है जो नायिका पर पूर्ण विश्वास रखे, प्रवृत्ति और निवृत्ति समान बना ले, उसके प्रयोजन को तत्काल पूर्ण कर दे, उस पर किसी भी प्रकार की शङ्का न करे और धन के विषय में चिन्तित न हो॥ ७३॥

तदेतन्निदर्शनार्थं दत्तकशासनादुक्तम्। अनुक्तं च लोकतः शीलयेत् पुरुष-प्रकृतितश्च॥ ७४॥

वैशिक शास्त्र के विशेषज्ञ आचार्य दत्तक को देखकर संक्षेप में यह वेश्याचरित कह दिया गया। जो बातें यहाँ नहीं कही गयी, उन्हें लोक से और पुरुष की प्रकृति से जान लेना चाहिये॥ ७४॥

भवतश्चात्र श्लोकौ—

सूक्ष्मत्वादतिलोभाच्च प्रकृत्याज्ञानतस्तथा।
कामलक्ष्म तु दुर्ज्ञानं स्त्रीणां तद्भावितैरपि॥ ७५॥

वेश्यानायकों को शिक्षा—विद्वान् व्यक्ति भी वेश्याओं के काम के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ सकते; क्योंकि एक तो काम का स्वरूप ही अत्यन्त सूक्ष्म है, दूसरे ये इतनी लोभी होती हैं कि कृत्रिम चेष्टाओं को भी स्वाभाविक के समान दिखा देती हैं और इनका जो आसक्त है, वह तो विवेकशून्य हो ही जाता है॥ ७५॥

कामयन्ते विरज्यन्ते रञ्जयन्ति त्यजन्ति च।
कर्षयन्त्योऽपि सर्वार्थान् ज्ञायन्ते नैव योषितः॥ ७६॥

वेश्याएँ अपने नायकों को चाहती हैं, उन पर अनुरक्त भी रहती हैं और विरक्त भी, उनको अनुरक्त भी बना देती हैं और त्याग भी देती हैं। वे नायक के धन को इस प्रकार से खींचती है कि पुरुष को कुछ भी पता नहीं चलता॥ ७६॥

'कान्तानुवृत्त' प्रकरण नामक द्वितीय अध्याय सम्पन्न॥

●

तृतीय अध्याय

अर्थागमोपायप्रकरण

सक्ताद्वित्तादानं स्वाभाविकमुपायतश्च॥ १॥

आसक्त नायक से धन दो प्रकार से मिलता है—एक तो स्वाभाविक ढंग से और दूसरे प्रयत्नपूर्वक॥ १॥

तत्र स्वाभाविकं सङ्कल्पात् समधिकं वा लभमाना नोपायान् प्रयुञ्जीतेत्या-चार्याः॥ २॥

वेश्या जितना धन प्राप्त करने की इच्छा रखती हो, यदि उतना या उससे अधिक धन उसे स्वाभाविक रूप से प्राप्त हो जाये तो उसे उपायों का प्रयोग नहीं करना चाहिये—यह कामशास्त्र के आचार्यों का मत है॥ २॥

विदितमप्युपायैः परिष्कृतं द्विगुणं दास्यतीति वात्स्यायनः॥ ३॥

यदि फीस निश्चित होने पर भी उपाय किये ज़ायें तो उससे दोगुनी राशि मिल सकती है—यह आचार्य वात्स्यायन का मत है॥ ३॥

अलङ्कारभक्ष्यभोज्यपेयमाल्यवस्त्रगन्धद्रव्यादीनां व्यवहारिषु कालिकमुद्धारार्थमर्थप्रतिनयनेन ॥ ४ ॥

धन-प्राप्ति के उपाय—आभूषण, भक्ष्य (लड्डू, जलेबी आदि), भोज्य (अन्न), पेय (शर्बत, मदिरा आदि), माला, वस्त्र (सूती, रेशमी, ऊनी कपड़े) और गन्ध आदि वस्तुएँ बेचने वालों को वायदे पर जो मूल्य चुकाना है उसके लिये अथवा उसके बदले में जो वस्तु धरोहर रूप में रखी हो, उसे छुड़ाने के लिये रुपया ले ले ॥ ४ ॥

तत्समक्षं तद्वित्तप्रशंसा ॥ ५ ॥

वैशिक के धन की प्रशंसा—वैशिक के सामने उसके धन की खुलकर प्रशंसा करे ॥ ५ ॥

व्रतवृक्षारामदेवकुलतडागोद्यानोत्सवप्रीतिदायव्यपदेशः ॥ ६ ॥

व्रत, वृक्ष, उद्यान, देवमन्दिर, कुआँ, बावड़ी, उत्सव और प्रेमोपहार का बहाना करे ॥ ६ ॥

तदभिगमननिमित्तो रक्षिभिश्चौरैर्वालङ्कारपरिमोषः ॥ ७ ॥

लूट का बहाना—आप से मिलने के लिये आ रही थी कि रास्ते में रक्षकों (पहरेदारों) या चोरों ने आभूषण उतरवा लिये ॥ ७ ॥

दाहात् कुड्यच्छेदात् प्रमादाद् भवने चार्थनाशः ॥ ८ ॥

अग्निकाण्ड या विनाश का बहाना—घर में आग लग जाने, सेंध लग जाने या असावधानी से धन के नष्ट हो जाने का बहाना करे ॥ ८ ॥

तथा याचितालङ्काराणां नायकालङ्काराणां च तदभिगमनार्थस्य व्ययस्य प्रणिधिभिर्निवेदनम् ॥ ९ ॥

स्वागत-सत्कार का खर्च—इसी प्रकार माँगे हुए या नायक द्वारा दिये हुए आभूषणों के विषय में भी कह दे और फिर वेश्या उससे मिलने के समय हुए खर्च के लिये विश्वस्त नौकरों से कहलवाये ॥ ९ ॥

तदर्थमृणग्रहणम्। जनन्या सह तदुद्भवस्य व्ययस्य विवादः ॥ १० ॥

ऋण—नायक के स्वागत-सत्कार हेतु ऋण ले लेना चाहिये और फिर अपनी माँ के साथ उस व्यय पर विवाद करना चाहिये ॥ १० ॥

सुहृत्कार्येष्वनभिगमनमनभिहारहेतोः ॥ ११ ॥

प्रेमोपहार की विवशता—यदि नायक के किसी मित्र के घर उत्सव हो और वह चलने के लिये कहे तो यही कह दे कि मेरे पास देने के लिये कुछ कहीं है, इसलिये नहीं जाऊँगी ॥ ११ ॥

तैश्च पूर्वमाहृता गुरवोऽभिहाराः पूर्वमुपनीताः पूर्वं श्राविताः स्युः ॥ १२ ॥

उनके लाये हुए बड़े बड़े प्रेमोपहार आपने पहले ही ले लिये हैं, यह बात जाने से पूर्व ही सुना दे ॥ १२ ॥

उचितानां क्रियाणां विच्छित्तिः ॥ १३ ॥

आवश्यक खर्चों में कटौती—दैनिक जीवन के आवश्यक खर्चों में भी कटौती कर दे ॥ १३ ॥

नायकार्थं च शिल्पिषु कार्यम्॥ १४॥

शिल्पकारों से ऐसी वस्तुएँ बनवा ले जिसमें नायक को धन खर्च करना पड़े॥ १४॥

वैद्यमहामात्रयोरुपकारक्रिया कार्यहेतोः॥ १५॥

वैद्य और राजपुरुषों पर उपकार—अपने कार्य के लिये वैद्य और राजपुरुषों पर उपकार कर दे॥ १५॥

मित्राणां चोपकारिणां व्यसनेष्वभ्युपपत्तिः॥ १६॥

मित्रों की सहायता—नायक के मित्रों एवं उपकारियों की सङ्कट में सहायता अवश्य करे॥ १६॥

गृहकर्म सख्याः पुत्रस्योत्सञ्जनम् दोहदो व्याधिर्मित्रस्य दुःखापनयनमिति॥ १७॥

नायक से धन लेने के लिये घर बनवाने, सखी के पुत्र के उत्सञ्जन (चूड़ाकर्म, अन्नप्राशन आदि), दोहद, मित्र की व्याधि और दुःख दूर करने का बहाना करे॥ १॥

अलङ्कारैकदेशविक्रयो नायकस्यार्थे॥ १८॥

नायक के किसी कार्य के लिये अपने कुछ आभूषण बेच दे॥ १८॥

तया शीलितस्य चालङ्कारस्य भाण्डोपस्करस्य वा वणिजो विक्रयार्थं दर्शनम्॥ १९॥

प्रियवस्तु की बिक्री का बहाना—अपने प्रिय आभूषणों, बर्तनों और घर के सामान को नायक के सामने ही व्यापारी को बिक्री हेतु दिखाये॥ १९॥

प्रतिगणिकानां च सदृशस्य भाण्डस्य व्यतिकरे प्रतिविशिष्टस्य ग्रहणम्॥ २०॥

विशिष्ट बर्तनों की माँग—प्रतिवेश्याओं से समान बर्तन होने के कारण उसके बर्तन प्रायः बदल जाते हैं, इस बहाने उत्तम बर्तनों की माँग करे॥ २०॥

पूर्वोपकाराणामविस्मरणमनुकीर्तनं च॥ २१॥

नायक के प्रति कृतज्ञताज्ञापन—नायक द्वारा किये गये पहले उपकारों को न भूले और उनका प्रेमपूर्वक वर्णन करे॥ २१॥

प्रणिधिभिः प्रतिगणिकानां लाभातिशयं श्रावयेत्॥ २२॥

अपने विश्वस्त नौकरों द्वारा दूसरी प्रतिवेश्याओं को होने वाले अधिक लाभ की बात नायक को सुनवाये॥ २२॥

तासु नायकसमक्षमात्मनोऽभ्यधिकं लाभं भूतमभूतं वा व्रीडिता नाम वर्णयेत्॥ २३॥

यदि अपने यहाँ कोई वेश्या आयी हुई हो तो नायक के सामने उससे लाभ को बढ़ा-चढ़ाकर कहे और यदि कोई लाभ न हुआ हो तो नायक की ओर देखकर और लजाकर लाभ होना बताये॥ २३॥

पूर्वयोगिनां च लाभातिशयेन पुनः सन्धाने यतमानानामाविष्कृतः प्रतिषेधः ॥ २४ ॥

त्यागशीलता का दिखाना—पूर्व प्रेमी जो सम्पर्क छोड़ चुके हों और अब अधिक धन देकर सम्पर्क बनाना जाहते हों, उन्हें नायक के सामने ही स्पष्ट ना कर देना चाहिये ॥ २४ ॥

तत्स्पर्धिनां त्यागयोगिनां निदर्शनम् ॥ २५ ॥

नायक से स्पर्धा रखने वाले उन त्यागशील व्यक्तियों को उसे दिखाना चाहिये जो वेश्या के साथ संसर्ग करना चाहते हैं ॥ २५ ॥

न पुनरेष्यतीति बालयाचितकमित्यर्थागमोपायाः ॥ २६ ॥

बच्चों के समान हठपूर्वक माँगना—यदि वेश्या को यह विश्वास हो जाये कि यह अब नहीं आयेगा (क्योंकि मुझ से विरक्त हो गया है) तो बच्चों की तरह लज्जा त्याग कर हठपूर्वक माँगे। **ये अर्थागमोपाय हैं** ॥ २६ ॥ (१)

विरक्तं च नित्यमेव प्रकृतिविक्रियातो विद्यात् मुखवर्णाच्च ॥ २७ ॥

विरक्तप्रतिपत्ति प्रकरण : विरक्त के लक्षण—सब बातों में स्वभाव के बदलने और मुख के रागरंग से विरक्त हुए पुरुष को पहचान ले ॥ २७ ॥

ऊनमतिरिक्तं वा ददाति ॥ २८ ॥

विरक्त पुरुष के कार्य—जो वेश्या को दिया करता था, उससे कम या अधिक दे ॥ २८ ॥

प्रतिलोमैः सम्बध्यते ॥ २९ ॥

प्रतिवेश्याओं (स्पर्धी वेश्याओं) से सम्बन्ध बनाने लगे ॥ २९ ॥

व्यपदिश्यान्यत् करोति ॥ ३० ॥

एक काम को कहकर अन्य काम करने लगे ॥ ३० ॥

उचितमाच्छिनत्ति ॥ ३१ ॥

जो उचित कार्य हैं, उन्हें भी रोक दे ॥ ३१ ॥

प्रतिज्ञातं विस्मरति। अन्यथा वा योजयति ॥ ३२ ॥

देने को कहकर भी न दे अथवा यह कह दे कि मैंने देने के लिये कब कहा था! ॥ ३२ ॥

स्वपक्षैः संज्ञया भाषते ॥ ३३ ॥

अपने इष्ट-मित्रों से संकेत से बातें करे ॥ ३३ ॥

मित्रकार्यमपदिश्यान्यत्र शेते ॥ ३४ ॥

मित्र के कार्य का बहाना करके अन्यत्र जाकर सोये ॥ ३४ ॥

पूर्वसंसृष्टायाश्च परिजनेन मिथः कथयति ॥ ३५ ॥

पहली वेश्या के नौकरों से इस वेश्या की सारी बातें बता दे ॥ ३५ ॥

तस्य सारद्रव्याणि प्रागवबोधादन्यापदेशेन हस्ते कुर्वीत ॥ ३६ ॥

वेश्या के कार्य—जब तक नायक को इस बात का पता चले कि यह मेरी विरक्ति जान गयी है, उससे पूर्व ही वेश्या किसी बहाने से उसका धन अपने हाथ में कर ले ॥ ३६ ॥

तानि चास्या हस्तादुत्तमर्णः प्रसह्य गृह्णीयात् ॥ ३७ ॥

नायिका का सिखाया हुआ साहूकार नायक के धन को नायिका के हाथ से बलपूर्वक ले ले॥ ३७॥

विवदमानेन सह धर्मस्थेषु व्यवहरेदिति विरक्तप्रतिपत्तिः॥ ३८॥

यदि नायक साहूकार के साथ विवाद करने लगे तो उसे न्यायाधिकरण तक ले जाये। इस प्रकार विरक्तप्रतिपत्ति प्रकरण पूर्ण हुआ॥ ३८॥ (२)

सक्तं तु पूर्वोपकारिणमप्यल्पफलं व्यलीकेनानुपालयेत्॥ ३९॥

निष्कासनक्रम प्रकरण—थोड़ा देने वाले पहले उपकारी नायक को अपराध करने पर भी निभाये, धक्के देकर न निकाले॥ ३९॥

असारं तु निष्प्रतिपत्तिकमुपायतोऽपवाहयेत्। अन्यमवष्टभ्य॥ ४०॥

अकिञ्चन का निष्कासन—निर्धन एवं आसक्त नायक को किसी धनवान् एवं अनुरक्त नायक का सहारा लेकर ही निकाले॥ ४०॥

तदनिष्टसेवा। निन्दिताभ्यासः। ओष्ठनिर्भोगः। पादेन भूमेरभिघातः। अविज्ञातविषयस्य सङ्कथा। तद्विज्ञातेष्वविस्मयः। समानदोषाणां निन्दा। रहसि चावस्थानम्॥ ४१॥

निष्कासन के प्रकट उपाय—जिन्हें नायक नहीं चाहता, उनकी सेवा करना, निन्दनीय कर्मों का बार बार करना, होंठ चबाना, जमीन पर पैर पटकना, जिन बातों को नायक न जाने उनकी चर्चा करना, जिन विषयों को नायक जानता हो, उन पर विस्मय प्रकट करना और उनकी निन्दा करना, उसके अभिमान पर चोट करना, उससे बड़ों के साथ रहना, उसे अनदेखा करना, नायक में जो दोष हैं उन ही के समान दोष वालों की निन्दा करना और एकान्त में बैठना—ये निष्कासन के प्रकट उपाय हैं॥ ४१॥

रतोपचारेषूद्वेगः। मुखस्यादानम्। जघनस्य रक्षणम्। नखदशनक्षतेभ्यो जुगुप्सा। परिष्वङ्गे भुजमय्या सूच्या व्यवधानम्। स्तब्धता गात्राणाम्। सक्थ्नोर्व्यत्यासः। निद्रापरत्वं च श्रान्तमुपलभ्य चोदना। अशक्तौ हासः। शक्तावनभिनन्दनम्। दिवापि भावमुपलभ्य महाजनाभिगमनम्॥ ४२॥

सम्भोगकालीन व्यवहार—सम्भोगकाल के उपचारों को स्वीकार न करना, अधरपान या चुम्बन न करने देना, जाँघों पर हाथ न फेरने देना, नखक्षतों एवं दन्तक्षतों की निन्दा करना, आलिङ्गन का प्रयास करने पर भुजाओं की कैंची बनाकर व्यवधान उत्पन्न करना, शरीर के अंगों को कड़ा कर लेना, यन्त्रयोग करने पर एक जाँघ को दूसरी पर चढ़ा लेना, नींद का बहाना करना, थके हुए नायक को सम्भोग के लिये उकसाना, अशक्त होने पर उसकी हँसी उड़ाना, शक्ति में प्रशंसा न करना, उसके हाव-भावों को देखकर दिन में भी रतिकक्ष से बाहर निकल जाना और गुरुजनों के समीप बैठ जाना—ये उपाय सम्भोगकाल में प्रयोग किये जाते हैं॥ ४२॥

वाक्येषु च्छलग्रहणम्। अनर्मणि हासः। नर्मणि चान्यमपदिश्य हसति वदति तस्मिन् कटाक्षेण परिजनस्य प्रेक्षणं ताडनं च। आहत्य चास्य कथामन्याः कथाः।

तद्व्यलीकानां व्यसनानां चापरिहार्याणामनुकीर्तनम्। मर्मणां च चेटिकयोपक्षेपणम्॥ ४३॥

बातें करने की रीति—छल-कपटपूर्ण बातें, बिना रति के उपहास, रतिकेलि में दूसरे के बहाने नायक का उपहास, उससे बातें करते समय कटाक्ष से परिजनों को देखना और उन्हें ताड़ित करना, उसकी बातों को बीच में काटकर दूसरी बातें करना, उसके ऐसे अवगुणों और दोषों का वर्णन करना जिन्हें वह चाहकर भी न छोड़ सके, नौकरानी के बहाने उसकी गुप्त बातों का उद्घाटन—यह निकालने वाले के साथ बातें करने की रीति है॥ ४३॥

आगते चादर्शनम्। अयाच्ययाचनम्। अन्ते स्वयं मोक्षश्चेति परिग्रहकस्येति दत्तकस्य॥ ४४॥

अन्तिम उपाय—उसके आने पर न दिखना, न माँगने योग्य वस्तुएँ माँगना और अन्त में धक्के देकर निकाल देना—ये अन्तिम उपाय हैं। यह विषय आचार्य दत्तक का कहा हुआ है॥ ४४॥

भवतश्चात्र श्लोकौ—

परीक्ष्य गम्यैः संयोगः संयुक्तस्यानुरञ्जनम्।
रक्तादर्थस्य चादानमन्ते मोक्षश्च वैशिकम्॥ ४५॥

इस विषय में दो श्लोक प्राप्त होते हैं—

वेश्या नायकों की परीक्षा करके ही उनके साथ समागम करे। जिसके साथ समागम हो जाये, उसे अनुरक्त करे। अनुरक्त का धन खींचे और अन्त में उसे धक्के देकर निकाल दे—संक्षेप में वेश्याओं का आचार्य दत्तकप्रोक्त यही चरित्र है॥ ४५॥

एवमेतेन कल्पेन स्थिता वेश्या परिग्रहे।
नातिसन्धीयते गम्यैः करोत्यर्थांश्च पुष्कलान्॥ ४६॥

वेश्याओं के जो कार्य कहे गये हैं, उनका प्रयोजन क्या है, यह आगे बताते हैं—यदि वेश्या ऊपर कही गयी रीति से नायकों से संसर्ग करती है और अपने प्रेमियों को धोखा नहीं देती तो वह विपुल धन एकत्र कर लेती है। इस तरह निष्कासनक्रम पूर्ण हुआ॥ ४६॥ (३)

अर्थागमोपाय नामक तृतीय अध्याय सम्पन्न॥

●

चतुर्थ अध्याय

विशीर्णप्रतिसन्धान प्रकरण

वर्तमानं निष्पीडितार्थमुत्सृजन्ती पूर्वसंसृष्टेन सह सन्दध्यात्॥ १॥

विशीर्णप्रतिसन्धान : जिसका सारा धन निचोड़ (चूस) लिया हो, ऐसे नायक को छोड़ती हुई वेश्या पूर्व नायक से सन्धि कर ले॥ १॥

स चेदवसितार्थो वित्तवान् सानुरागश्च ततः सन्धेयः ॥ २ ॥

मिलने का कारण—यदि वह धनवान् हो, और धन देगा—यह भी निश्चित हो तथा अनुराग भी रखता हो तभी मिलना चाहिये, अन्यथा नहीं ॥ २ ॥

अन्यत्र गतस्तर्कयितव्यः। स कार्ययुक्त्या षड्विधः ॥ ३ ॥

यदि वह दूसरी वेश्या के पास गया है, तो मिलाने से पूर्व विचार कर लेना चाहिये। अपने कार्य की योजना के अनुसार वह छह प्रकार का हो सकता है ॥ ३ ॥

इतः स्वयमपसृतस्ततोऽपि स्वयमेवापसृतः ॥ ४ ॥

प्रथम : दोनों ओर से स्वयं हटने वाला—जो से स्वयं हटा हो और दूसरी वेश्या के पास से भी स्वयं ही हटा हो ॥ ४ ॥

इतस्ततश्च निष्कासितापसृतः ॥ ५ ॥

द्वितीय : दोनों ओर से धक्के देकर निकाला गया—जो यहाँ से और वहाँ से (दोनों स्थानों से ही) धक्के देकर निकाला गया हो ॥ ५ ॥

इतः स्वयमपसृतस्ततो निष्कासितापसृतः ॥ ६ ॥

तृतीय : यहाँ से स्वयं निकला और वहाँ से निकाला गया—जो यहाँ से तो स्वयं हटा हो किन्तु वहाँ से धक्के देकर निकाला गया हो ॥ ६ ॥

इतः स्वयमपसृतस्तत्र स्थितः ॥ ७ ॥

चतुर्थ : यहाँ से स्वयं हटकर वहाँ जमा—जो यहाँ से स्वयं हटकर वहाँ स्थित हो गया हो अर्थात् दूसरी के पास जाकर जम गया हो ॥ ७ ॥

इतो निष्कासितापसृतस्ततः स्वयमपसृतः ॥ ८ ॥

पञ्चम : जो यहाँ से धक्के देकर निकाला गया हो और वहाँ से स्वयं हट गया हो ॥ ८ ॥

इतो निष्कासितापसृतस्तत्र स्थितः ॥ ९ ॥

षष्ठ : यहाँ से निकाला गया और वहाँ जमा—जो यहाँ से धक्के देकर निकाला गया हो और वहाँ जाकर जम गया हो ॥ ९ ॥

इतस्ततश्च स्वयमेवापसृत्योपजपति चेदुभयोर्गुणानपेक्षी चलबुद्धिरसन्धेयः ॥ १० ॥

प्रथम : न मिलाने योग्य नायक—जो नायक यहाँ और वहाँ, दोनों स्थानों से, स्वयं ही हटकर, पुनः मिलने को कहे, दोनों नायिकाओं के गुणों की अपेक्षा न करने वाला वह चञ्चल बुद्धि वाला पुरुष है, अतएव मिलाने योग्य नहीं है ॥ १० ॥

इतस्ततश्च निष्कासितापसृतः स्थिरबुद्धिः। स चेदन्यतो बहु लभमानया निष्कासितः स्यात्ससारोऽपि तया रोषितो ममामर्षाद् बहु दास्यतीति संधेयः ॥ ११ ॥

द्वितीय : अधिक लाभ पर स्वीकार्य—जो यहाँ और वहाँ दोनों स्थानों पर, नायिका द्वारा ही निकाला गया हो, तभी हटा हो, वह स्थिरबुद्धि पुरुष है। यदि दूसरी ने उसे अन्यों की अपेक्षा अधिक लाभ उठाकर भी निकाला हो, धनवान् होने पर भी वेश्या द्वारा क्रुद्ध कर दिया गया हो, 'मुझे इस क्रोधवश अधिक देगा'—यह निश्चित हो, तभी उसके साथ सन्धि करनी चाहिये अर्थात् उसे तभी सम्भोग का अवसर देना चाहिये, अन्यथा नहीं ॥ ११ ॥

निःसारतया कदर्यतया वा त्यक्तो न श्रेयान्॥ १२॥

निर्धन या दुष्ट संसर्ग के योग्य नहीं—यदि नायक निर्धनता या दुष्टता के कारण निकाला गया हो तो उसके साथ संसर्ग करना श्रेयस्कर नहीं होता॥ १२॥

इतः स्वयमपसृतस्ततो निष्कासितापसृतो यद्यतिरिक्तमादौ च दद्यात्ततः प्रतिग्राह्यः॥ १३॥

तृतीय : अधिक धन पर स्वीकार्य—जो नायक यहाँ से स्वयं हटा हो और वहाँ से नायिका द्वारा निकाला गया हो, ऐसा नायक यदि पहले ही अतिरिक्त धन देता है, तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिये अर्थात् उसे अग्रिम अतिरिक्त धन लेकर समागम का अवसर दे देना चाहिये॥ १३॥

इतः स्वयमपसृत्य तत्र स्थित उपजपंस्तर्कयितव्यः॥ १४॥

चतुर्थ : विचारणीय—जो यहाँ से स्वयं हटकर वहाँ जम गया हो, ऐसा नायक यदि बात चलाये तो उस पर विचार करना चाहिये॥ १४॥

विशेषार्थी चागतस्ततो विशेषमपश्यन्नागन्तुकामो मयि मां जिज्ञासितुकामः स आगत्य सानुरागत्वाद्दास्यति। तस्यां वा दोषान् दृष्ट्वा मयि भूयिष्ठान् गुणानधुना पश्यति स गुणदर्शी भूयिष्ठं दास्यति॥ १५॥

संसर्गयोग्य पक्ष—यह विशेषता से प्रेम करता है, इसीलिये वहाँ गया था। वहाँ कुछ भी विशेषता न दिखने से अब वापस आना चाहता है और यहाँ आकर मुझे जानना चाहता है। प्रेमी होने के कारण यहाँ आकर कुछ अधिक ही धन देगा अथवा उसमें दोष देखकर इस समय मुझमें गुण देख रहा है। अतएव यह गुणग्राही नायक अधिक धन देगा॥ १५॥

बालो वा नैकत्रदृष्टिरतिसन्धानप्रधानो वा हरिद्रारागो वा यत्किञ्चनकारी वेत्यवेत्य सन्दध्यान्न वा॥ १६॥

असंसर्गयोग्य पक्ष—बालबुद्धि है, स्थिरचित्त वाला नहीं है, विचारशील नहीं है, हल्दी की तरह अस्थायी राग (रंग या अनुराग) वाला है अथवा जो मन में आता है, कर बैठता है—इन सब बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके ही नायिका देखे कि यदि वह संसर्ग करने योग्य है तो करे, अन्यथा नहीं॥ १६॥

इतो निष्कासितापसृतस्ततः स्वयमपसृत उपजपँस्तर्कयितव्यः॥ १७॥

पंचम : विचारणीय—यहाँ से निकाला गया और वहाँ से स्वयं हटा नायक यदि अपनी ओर से बात चलाये, तो उस पर विचार करना चाहिये॥ १७॥

अनुरागादागन्तुकामः स बहु दास्यति। मम गुणैर्भावितो योऽन्यस्यां न रमते॥ १८॥

संसर्गयोग्य पक्ष—वह मेरे अनुरागवश आना चाहता है, इसलिये अधिक देगा। वह मेरे गुणों से प्रभावित है, इसलिये दूसरी नायिका में उसका मन नहीं रम रहा है॥ १८॥

पूर्वमयोगेन वा मया निष्कासितः स मां शीलयित्वा वैरं निर्यातयितुकामो

धनमभियोगाद्वा मयास्यापहृतं तद्विश्वास्य प्रतीपमादातुकामो निर्वेष्टुकामो वा मां वर्तमानाद् भेदयित्वा त्यक्तुकाम इत्यकल्याणबुद्धिरसन्धेयः॥ १९॥

असंसर्गयोग्य पक्ष—पहले मैंने इसे अन्यायपूर्वक निकाला था, इसलिये अब यह मुझसे मिलकर अपना वैर निकालना चाहता है अथवा उपायों द्वारा मैंने इसका सारा धन खींच लिया है, इसलिये अब यह विश्वास दिखाकर उसे निकालना चाहता है; अथवा वर्तमान प्रेमी को मुझसे तोड़कर फिर मुझे छोड़ देना चाहता है, इस प्रकार यह अकल्याण बुद्धि वाला है, अतः संसर्ग नहीं करना चाहिये॥ १९॥

अन्यथाबुद्धिः कालेन लम्भयितव्यः॥ २०॥

यदि वह अनुरागवश मिलना चाहता है तो उसे कुछ समय बाद ही अवसर देना चाहिये॥ २०॥

इतो निष्कासितस्तत्र स्थित उपजपन्नेतेन व्याख्यातः॥ २१॥

षष्ठ : नायक का विचार—जो अपने यहाँ से निकाला गया हो और वहाँ जाकर जम गया हो, वह यदि अपनी ओर से बात चलाये तो संसर्ग के योग्य होने पर ही उसके संसर्ग करे, अन्यथा नहीं॥ २१॥

तेषूपजपत्स्वन्यत्र स्थितः स्वयमुपजपेत्॥ २२॥

जो यहाँ से जाकर वहाँ जम गया और सन्देश भेजने पर भी जमा रहे, उससे स्वयं बातें करनी चाहिये॥ २२॥

व्यलीकार्थं निष्कासितो मयासावन्यत्र गतो यत्नादानेतव्यः॥ २३॥

इस के कारण—मैंने इसे अपराध पर निकाला था और मेरे यहाँ से यह वहाँ जाकर जम गया है, इसलिये इसे प्रयत्नपूर्वक लाना चाहिये॥ २३॥

इतः प्रवृत्तसम्भाषो वा ततो भेदमवाप्स्यति॥ २४॥

अथवा यहाँ से बातें चलने पर वहाँ से अलग हो जायेगा॥ २४॥

तदर्थाभिघातं करिष्यति॥ २५॥

मुझसे अनुरक्त होकर वह दूसरी वेश्या को आर्थिक हानि पहुँचायेगा॥ २५॥

अर्थागमकालो वास्य। स्थानवृद्धिरस्य जाता। लब्धमनेनाधिकरणम्। दारैर्वियुक्तः। पारतन्त्र्याद् व्यावृत्तः। पित्रा भ्रात्रा वा विभक्तः॥ २६॥

यह इसकी धनप्राप्ति का समय है। इसके व्यापार या नौकरी में उन्नति हुई है, इसे धन या पद आदि का अधिकार मिल गया है, इस समय यह अपनी स्त्रियों से अलग रह रहा है, इसकी परतन्त्रता समाप्त हो गयी है, यह अपने पिता या भाई से अलग हो गया है॥ २६॥

अनेन वा प्रतिबद्धमनेन सन्धिं कृत्वा नायकं धनिनमवाप्स्यामि॥ २७॥

नायक इसका मित्र है, मैं इससे मिलकर उस धनवान् नायक को प्राप्त कर लूँगी॥ २७॥

विमानिता वा भार्यया तमेव तस्यां विक्रमयिष्यामि॥ २८॥

इसने मेरा अपमान किया है, अथवा अपनी स्त्री से जाकर मिल गया है। मैं युक्तिपूर्वक इसकी स्त्री को अलग करके इससे ही लड़ा दूँगी॥ २८॥

अस्य वा मित्रं मद्द्वेषिणीं सपत्नीं कामयते तदमुना भेदयिष्यामि॥ २९॥

अथवा इसका मित्र मुझसे वैर मानने वाली मेरी सपत्नी (सौत) को चाहता है। मैं इसके द्वारा उससे लड़वा दूँगी॥ २९॥

चलचित्ततया वा लाघवमेनमापादयिष्यामीति॥ ३०॥

अथवा इसे चञ्चल चित्तवाला सिद्ध करके अन्य वेश्याओं की दृष्टि में गिरा दूँगी॥ ३०॥

तस्य पीठमर्दादयो मातुर्दौःशील्येन नायिकायाः सत्यप्यनुरागे विवशायाः पूर्वं निष्कासनं वर्णयेयुः॥ ३१॥

नायिका के पीठमर्द आदि विश्वस्त सेवक नायक से जाकर कहें कि वह तो आज भी आपकी अनुरक्त है, किन्तु माता की कुटिलता के कारण विवश होकर आपको निकालना पड़ा था॥ ३१॥

वर्तमानेन चाकामायाः संसर्गं विद्वेषं च॥ ३२॥

वर्तमान नायक के साथ उसका संसर्ग विना अनुराग के है, दिल से तो वह उससे घृणा ही करती है और आपकी कामना करती है॥ ३२॥

तस्याश्च साभिज्ञानैः पूर्वानुरागैरेनं प्रत्यापयेयुः॥ ३३॥

उस नायिका के पहले प्रेम को पहचानपूर्वक कहकर अपनी बात का विश्वास दिलाये॥ ३३॥

अभिज्ञानं च तत्कृतोपकारसम्बद्धं स्यादिति विशीर्णप्रतिसन्धानम्॥ ३४॥

पूर्वकृत उपकारों से प्रेम की पहचान—उसके प्रेम की पहचान तो उसके द्वारा किये गये पहले के उपकारों से बँधी होनी चाहिये। इस प्रकार **'विमुक्त नायक का मिलन'** नामक प्रकरण पूर्ण हुआ॥ ३४॥

अपूर्वपूर्वसंसृष्टयोः पूर्वसंसृष्टः श्रेयान्। स हि विदितशीलो दृष्टरागश्च सूपचारो भवतीत्याचार्याः॥ ३५॥

पूर्वपरिचित की श्रेष्ठता : पहले मिले हुए और कभी न मिले हुए पुरुषों में पहले मिला हुआ श्रेष्ठ है; क्योंकि उसका शील-स्वभाव परिचित रहता है, उसका प्रेम देखा हुआ रहता है और उसका उपचार सुखपूर्वक किया जा सकता है—ऐसा कामशास्त्र के आचार्यों का मत है॥ ३५॥

पूर्वसंसृष्टः सर्वतो निष्पीडितार्थत्वान्नात्यर्थमर्थदो दुःखं च पुनर्विश्वासयितुम्। अपूर्वस्तु सुखेनानुरज्यत इति वात्स्यायनः॥ ३६॥

यदि पूर्व नायक का सारा धन लेकर ही उसे छोड़ा है, तो न तो वह अधिक धन ही दे सकेगा और न उसे विश्वास दिलाना ही सरल है; जबकि नया नायक सरलता से अनुरक्त किया जा सकता है—यह आचार्य वात्स्यायन का मत है॥ ३६॥

तथापि पुरुषप्रकृतितो विशेषः॥ ३७॥

पुरुष का स्वभाव ही प्रमुख—तथापि इसमें पुरुष का स्वभाव ही प्रमुख होता है॥ ३७॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

अन्यां भेदयितुं गम्यादन्यतो गम्यमेव वा।

स्थितस्य चोपघातार्थं पुनः सन्धानमिष्यते ॥ ३८ ॥

प्रतिसन्धान के कारण : वियुक्तगत कारण—इस विषय में आनुवंश्य श्लोक उद्धृत करते हैं—

गम्य नायक से अन्य वेश्या को अलग करने के लिये, अन्य वेश्या से मिलने वाले नायक को अलग करने के लिये और उसको धन की हानि पहुँचाने के लिये वियुक्त नायक पुनः मिलाया जाता है ॥ ३८ ॥

बिभेत्यन्यस्य संयोगाद् व्यलीकानि च नेक्षते।
अतिसक्तः पुमान् यत्र भयाद् बहु ददाति च ॥ ३९ ॥

वर्तमानगत कारण—जो अत्यन्त आसक्त नायक, नायिका के साथ अन्य के संसर्ग से डरता है और उसके अपराधों को भी नहीं देखता, ऐसा पुरुष डरते डरते बहुत धन दे देता है ॥ ३९ ॥

असक्तमभिनन्देत सक्तं परिभवेत् तथा।
अन्यदूतानुपाते च यः स्यादतिविशारदः ॥ ४० ॥

नायक को परामर्श—जो नायक अत्यन्त निपुण हो, उसे चाहिये कि किसी अन्य के दूत के आ जाने पर, उसके सामने असमर्थ की प्रशंसा और समर्थ की निन्दा करे ॥ ४० ॥

तत्रोपयायिनं पूर्वं नारी कालेन योजयेत्।
भवेच्चाच्छिन्नसन्धाना न च सक्तं परित्यजेत् ॥ ४१ ॥

नायिका को परामर्श—वेश्या को चाहिये कि यदि नया समर्थ और वियुक्त प्रेमी, दोनों आ रहे हों तो दोनों को समय समय पर ही मिलाये अर्थात् पहले नये धनवान् को समागम का अवसर दे और फिर वियुक्त प्रेमी को। न वियुक्त नायक के साथ ही मिलन में हिचकिचाहट करे और न ही नये धनवान् नायक का ही परित्याग करे ॥ ४१ ॥

सक्तं तु वशिनं नारी सम्भाव्याप्यन्यतो व्रजेत्।
ततश्चार्थमुपादाय सक्तमेवानुरञ्जयेत् ॥ ४२ ॥

समर्थ और अनुरक्त को प्राथमिकता—वेश्या वशीभूत समर्थ पुरुष से कहकर अन्य के पास चली जाये और वहाँ से धन लाकर समर्थ पुरुष को विधिवत् प्रसन्न करे ॥ ४२ ॥

आयतिं प्रसमीक्ष्यादौ लाभं प्रीतिं च पुष्कलाम्।
सौहृदं प्रतिसन्दध्याद्विशीर्णं स्त्री विचक्षणा ॥ ४३ ॥

वियुक्त को मिलाते समय ध्यातव्य बातें—चतुर वेश्या को चाहिये कि सर्वप्रथम प्रभाव, लाभ, अत्यधिक प्रेम और सौहार्द को देख ले, तभी वियुक्त नायक को मिलाये ॥ ४३ ॥

अर्थागमोपाय प्रकरण नामक तृतीय अध्याय सम्पन्न ॥

●

पञ्चम अध्याय
लाभविशेषप्रकरण

गम्यबाहुल्ये बहु प्रतिदिनं च लभमाना नैकं प्रतिगृह्णीयात्॥ १॥

अपरिग्रह का कारण—मिलने वाले पुरुषों की अधिकता होने पर प्रतिदिन बहुत मिलें, तो एक को ही न स्वीकारे अर्थात् नित्य नये नये पुरुषों को सम्भोग का अवसर प्रदान करें॥ १॥

देशं कालं स्थितिमात्मनो गुणान् सौभाग्यं चान्याभ्यो न्यूनातिरिक्ततां चावेक्ष्य रजन्यामर्थं स्थापयेत्॥ २॥

एक रात की फीस (शुल्क)—देश, काल, अपनी स्थिति, गुण, सौभाग्य और दूसरी वेश्याओं से अपने रूप, सौन्दर्य, गुण आदि की अधिकता या न्यूनता देखकर ही अपनी एक रात का शुल्क नियत करे॥ २॥

गम्ये दूताँश्च प्रयोजयेत्। तत्प्रतिबद्धाँश्च स्वयं प्रहिणुयात्॥ ३॥

दूत भेजने की रीति—समागम योग्य पुरुषों का अभिप्राय जानने के लिये अपने दूत लगा दे और नायक के सम्पर्क वाले व्यक्तियों से स्वयं कहे॥ ३॥

द्विस्त्रिश्चतुरिति लाभातिशयग्रहार्थमेकस्यापि गच्छेत्। परिग्रहं च चरेत्॥ ४॥

अधिक लाभ की रीति—एक से अधिक लाभ पाने की इच्छा से दो, तीन चार रात एक नियत शुल्क पर ही समागम करे ओर पत्नी की तरह उसकी सेवा करता रहे॥ ४॥

गम्ययौगपद्ये तु लाभसाम्ये यद्द्रव्यार्थिनी स्यात्तद्दायिनि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः॥ ५॥

एक साथ आने वालों से अधिक लाभ—मिलने योग्य पुरुषों के एक साथ आने पर और समान लाभ (फीस) होने पर भी वेश्या जिसका धन ले लेगी, वह दूसरों से अधिक ही देगा, यह स्पष्ट है—ऐसा कामशास्त्र के पूर्व आचार्यों का मत है॥ ५॥

अप्रत्यादेयत्वात् सर्वकार्याणां तन्मूलत्वाद्धिरण्यद इति वात्स्यायनः॥ ६॥

क्योंकि सिक्का (धन) अविश्वास की अवस्था में भी नहीं लौटाया जा सकता और वही सारे कार्य सम्पन्न करने का साधन है, इसलिये सिक्का देने वाला ही गम्य है—ऐसा आचार्य वात्स्यायन का मत है॥ ६॥

सुवर्णरजतताम्रकांस्यलोहभाण्डोपस्करास्तरणप्रावरणवासोविशेषगन्धद्रव्य-कटुकभाण्डघृततैलधान्यपशुजातीनां पूर्वपूर्वतो विशेषः॥ ७॥

फीस का स्वरूप—सोना, चाँदी, ताँबा, कांसा, लोहा, बर्तन, सामान, बिस्तर, लिहाफ, अन्य वस्त्र, द्रव्य, काली मिर्च, घड़ा (कलश), घी, तेल, अन्न, पशु—इन वस्तुओं में उत्तरोत्तर की अपेक्षा पूर्व पूर्व उत्तम हैं॥ ७॥

यत्तत्र साम्याद्वा द्रव्यसाम्ये मित्रवाक्यादतिपातित्वादायतितो गम्यगुणतः प्रीतितश्च विशेषः॥ ८॥

समानता में प्राथमिकता—यदि दो समान प्रेमी हों या समान धन देने वाले हों तो मित्र

लोग जिसे अभीष्ट समझें अथवा जिस नायक को अधिक गुणी, सुन्दर और प्रभावशाली समझें, उसी की दी हुई वस्तु ग्रहण करे॥ ८॥

रागित्यागिनोस्त्यागिनि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः॥ ९॥

रागी से त्यागी की श्रेष्ठता—अनुरक्त नायक की अपेक्षा दानशील त्यागी से अधिक लाभ प्रत्यक्ष ही है—ऐसा कामशास्त्र के आचार्यों का मत है॥ ९॥

शक्यो हि रागिणि त्याग आधातुम्॥ १०॥

उपायों द्वारा रागी की त्यागशीलता भी सम्भव—अनुरक्त नायक को उपायों द्वारा त्यागशील बनाया जा सकता है॥ १०॥

लुब्धोऽपि हि रक्तस्त्यजति न तु त्यागी निर्बन्धाद्रज्यत इति वात्स्यायनः॥ ११॥

अनुरक्त होने पर तो लोभी पुरुष भी धन दे सकता है, किन्तु त्यागशील को उपायों द्वारा अनुरक्त नहीं किया जा सकता—यह आचार्य वात्स्यायन का मत है॥ ११॥

तत्रापि धनवदधनवतोर्धनवति विशेषः। त्यागप्रयोजनकर्त्रोः प्रयोजनकर्तरि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः॥ १२॥

निर्धन से धनवान् और त्यागशील से कार्यसाधक श्रेष्ठ—इसमें भी निर्धन की अपेक्षा धनवान् श्रेष्ठ है और त्यागशील की अपेक्षा वेश्या का स्वार्थसाधक श्रेष्ठ है—ऐसा कामशास्त्र के पूर्व आचार्यों का मत है॥ १२॥

प्रयोजनकर्ता सकृत्कृत्वा कृतिनमात्मानं मन्यते त्यागी पुनरतीतं नापेक्षत इति वात्स्यायनः॥ १३॥

वेश्या का कार्य सिद्ध करने वाला तो एक बार कार्य सिद्ध करके अपने को कृती मान लेता है, किन्तु त्यागशील तो अतीत में दिये गये धन के विषय में सोचता ही नहीं है—ऐसा आचार्य वात्स्यायन का मत है॥ १३॥

तत्राप्यात्ययिकतो विशेषः॥ १४॥

आवश्यकतानुसार विशिष्ट—आवश्यकतानुसार इन दोनों में भी विशेषता होती है॥ १४॥

कृतज्ञत्यागिनोस्त्यागिनि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः॥ १५॥

कृतज्ञ और त्यागी—कृतज्ञ और त्यागी—दोनों में त्यागी से विशेष लाभ प्राप्त किया जा सकता है—ऐसा कामशास्त्र के आचार्यों का मत है॥ १५॥

चिरमाराधितोऽपि त्यागी व्यलीकमेकमुपलभ्य प्रतिगणिकया वा मिथ्यादूषितः श्रममतीतं नापेक्षते॥ १६॥

त्यागी की न्यूनता—बहुत समय तक उपायों द्वारा सिद्ध किया गया त्यागी, वेश्या के एक ही अपराध को देखकर अथवा प्रतिगणिका (स्पर्धी वेश्या) द्वारा बहकाये जाने पर वेश्या द्वारा उठाये गये कष्टों को नहीं देखता॥ १६॥

प्रायेण हि तेजस्विन ऋजवोऽनादृताश्च त्यागिनो भवन्ति॥ १७॥

त्यागियों का स्वभाव—प्रायः त्यागी तेजस्वी, सरल (निष्कपट) और अनादर को न सह पाने वाले होते हैं॥ १७॥

कृतज्ञस्तु पूर्वश्रमापेक्षी न सहसा विरज्यते। परीक्षितशीलत्वाच्च न मिथ्या दूष्यत इति वात्स्यायनः॥ १८॥

कृतज्ञ—कृतज्ञ नायिका के परिश्रम को समझता है इसलिये अकस्मात् विरक्त नहीं होता। क्योंकि वह नायिका के शील की परीक्षा किये रहता है इसलिये स्पर्धी वेश्या के बहकावे में नहीं आता—ऐसा आचार्य वात्स्यायन का मत है॥ १८॥

तत्राप्यायतितो विशेषः॥ १९॥

रागी, त्यागी, कृतज्ञ—तीनों में विशेष—रागी, त्यागी और कृतज्ञ—इन तीनों में से भविष्य के प्रभाव को देखकर ही लाभ उठाना चाहिये॥ १९॥

मित्रवचनार्थागमयोरर्थागमे विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः॥ २०॥

मित्रवाक्य और अर्थप्राप्ति में प्राथमिकता—मित्रों के परामर्श और अर्थप्राप्ति—इन दोनों में अर्थप्राप्ति में विशेष लाभ तो प्रत्यक्ष ही है—ऐसा कामशास्त्र के पूर्व आचार्यों का मत है॥ २०॥

सोऽपि ह्यर्थागमो भविता। मित्रं तु सकृद्वाक्ये प्रतिहते कलुषितं स्यादिति वात्स्यायनः॥ २१॥

मित्रों का परामर्श न मानने पर धन तो मिलेगा ही, पर अपनी बात न मानने पर वे अप्रसन्न हो जायेंगे—यह आचार्य वात्स्यायन का मत है॥ २१॥

तत्राप्यतिपाततो विशेषः॥ २२॥

इस अर्थसञ्चय में भी फिर न मिलने वाले को प्राप्त कर लेना चाहिये। उस समय की अपेक्षा से जो अर्थ फिर हाथ न आये, उसे प्राप्त कर लेना चाहिये, यह विशेष लाभ है॥ २२॥

तत्र कार्यसन्दर्शनेन मित्त्रमनुनीय श्वोभूते वचनमस्त्विति ततोऽतिपातिनमर्थं प्रतिगृह्णीयात्॥ २३॥

मित्रों से अनुनय-विनय—कार्य के बहाने मित्र से अनुनय विनय कर तात्कालिक लाभ प्राप्त कर ले और उनसे कहे कि कल आपकी बात अवश्य मानूँगी॥ २३॥

अर्थागमानर्थप्रतीघातयोरर्थागमे विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः॥ २४॥

अर्थप्राप्ति और अनर्थनिवारण—अर्थ की प्राप्ति और अनर्थ के निवारण में अर्थ की प्राप्ति में ही विशेष लाभ है—ऐसा कामशास्त्र के आचार्यों का मत है॥ २४॥

अर्थः परिमितावच्छेदः, अनर्थः पुनः सकृत्प्रसृतो न ज्ञायते क्वावतिष्ठत इति वात्स्यायनः॥ २५॥

अर्थ की प्राप्ति तो नियमित रूप से होती ही रहती है, किन्तु यदि अनर्थ एक बार प्रारम्भ हो जाये तो पता नहीं कब तक चलता रहे, इसलिये पहले उस पर ही ध्यान देना चाहिये—ऐसा आचार्य वात्स्यायन का मत है॥ २५॥

तत्रापि गुरुलाघवकृतो विशेषः ॥ २६ ॥

व्यवस्थाविषयक विचार—यहाँ भी न्यूनाधिक समझकर ही विशेष को ग्रहण करना चाहिये ॥ २६ ॥

एतेनार्थसंशयादनर्थप्रतीकारे विशेषो व्याख्यातः ॥ २७ ॥

सिद्धान्त का स्पष्टीकरण—इस कथन से यह बात भी कह दी गयी है कि अर्थ के संशय से अनर्थ के निवारण में ही विशेष लाभ है ॥ २७ ॥

देवकुलतडागारामाणां करणम्, स्थलीनामग्निचैत्यानां निबन्धनम्, गोसहस्राणां पात्रान्तरितं ब्राह्मणेभ्यो दानम्, देवतानां पूजोपहारप्रवर्तनम्, तद्व्ययसहिष्णोर्वा धनस्य परिग्रहणमित्युत्तमगणिकानां लाभातिशयः ॥ २८ ॥

उत्तम गणिकाओं के लाभ—देवमन्दिर बनवाना, कूआ-बावड़ी खुदवाना, बाग लगवाना, आवागमन के लिये पुल बनवाना, निवासस्थान के बाहर मिट्टी का घर या मन्दिर बनवाकर अग्निहोत्र कराना, किसी को माध्यम बनाकर ब्राह्मणों को एक हजार गायें दान देना, देवताओं के भोग एवं प्रसाद का प्रबन्ध करना—इन धार्मिक और लोकोपकारी कार्यों के व्यय को सहन कर ले, इतना धन उत्तम गणिकाओं का अतिशय लाभ है ॥ २८ ॥

सार्वाङ्गिकोऽलङ्कारयोगो गृहस्योदारस्य करणम्। महार्हैर्भाण्डैः परिचारकैश्च गृहपरिच्छदस्योज्ज्वलतेति रूपाजीवानां लाभातिशयः ॥ २९ ॥

रूपाजीवा के लाभ—सम्पूर्ण शरीर पर आभूषण धारण करना, निवासस्थान को कलात्मक ढंग से सजाकर रखना और उसमें बहुमूल्य बर्तनों और नौकरों द्वारा गृह के भीतरी भाग को साफ-सुथरा और सुसज्जित रखना—ये रूपाजीवा के विशेष लाभ हैं ॥ २९ ॥

नित्यं शुक्लमाच्छादनमपक्षुधमन्नपानं नित्यं सौगन्धिकेन ताम्बूलेन च योगः सहिरण्यभागमलङ्करणमिति कुम्भदासीनां लाभातिशयः ॥ ३० ॥

कुम्भदासी के लाभ—नित्य साफ सुथरे कपड़े पहनना, भरपेट स्वादिष्ठ भोजन करना, सुगन्धित तेल प्रयोग करना, सुवासित पान खाना, चाँदी के आभूषणों के साथ एकाध सोने का आभूषण भी पहनना—ये कुम्भदासियों के अतिशय लाभ हैं ॥ ३० ॥

एतेन प्रदेशेन मध्यमाधमानामपि लाभातिशयान् सर्वासामेव योजयेदित्याचार्याः ॥ ३१ ॥

लाभ पर आचार्यों का मत—जो ऊपर गणिका, रूपाजीवा और कुम्भदासी के विशेष लाभ बताये गये हैं, उनको इसी रीति से मध्यम और अधम के साथ भी समझ लेना चाहिये—यह कामशास्त्र के पूर्वाचार्यों का मत है ॥ ३१ ॥

देशकालविभवसामर्थ्यानुरागलोकप्रवृत्तिवशादनियतलाभादियमवृत्तिरिति वात्स्यायनः ॥ ३२ ॥

देश, काल, वैभव, सामर्थ्य, अनुराग और लोकप्रवृत्ति (लोकाचार) के कारण लाभ निश्चित नहीं रहता, अतएव वेश्या की वृत्ति सदैव अनियत और अनियमित रहती है—यह आचार्य वात्स्यायन का मत है ॥ ३२ ॥

गम्यमन्यतो निवारयितुकामा सक्तमन्यस्यामपहर्तुकामा वा अन्यां वा लाभतो वियुयुक्षमाणागम्यसंसर्गादात्मनः स्थानं वृद्धिमायतिमभिगम्यतां च मन्यमाना अनर्थप्रकारे वा साहाय्यमेनं कारयितुकामा सक्तस्य वान्यस्य व्यलीकार्थिनी पूर्वोपकारमकृतमिव पश्यन्ती केवलप्रीत्यर्थिनी वा कल्याणबुद्धेरल्पमपि लाभं प्रतिगृह्णीयात्॥ ३३॥

अल्प लाभ के स्थान—यदि वेश्या अपने नायक को किसी अन्य वेश्या के पास जाने से रोकना चाहे, अन्य नायिका के धनवान् नायक को आकृष्ट करना चाहे, अन्य नायिका को आर्थिक हानि पहुँचाना चाहे, नायक के साथ संसर्ग से उचित स्थान, वृद्धि, उज्ज्वल भविष्य और नायकों की इच्छा की वस्तु बनवाना चाहे, अनर्थों के निवारण में उसकी सहायता की इच्छा रखे अथवा पहले किये गये उपकारों को भूलकर निर्धन नायक को निकलवाना चाहे और किसी शुभचिन्तक प्रेमी को अपना बनाना चाहे तो वेश्या अल्प लाभ भी ले सकती है॥ ३३॥

आयत्यर्थिनी तु तमाश्रित्य चानर्थं प्रतिचिकीर्षन्ती नैव प्रतिगृह्णीयात्॥ ३४॥

लाभ न लेने के स्थान—भविष्य में प्रभाव चाहने वाली वेश्या, जिसके बल पर अनर्थों को रोकना चाहे, उससे कुछ न ले॥ ३४॥

त्यक्ष्याम्येनमन्यतः प्रतिसन्धास्यामि, गमिष्यति दारैर्योक्ष्यते नाशयिष्यत्यनर्थान्, अङ्कुशभूत उत्तराध्यक्षोऽस्यागमिष्यति स्वामी पिता वा, स्थानभ्रंशो वास्य भविष्यति चलचित्तश्चेति मन्यमाना तदात्वे तस्माल्लाभमिच्छेत्॥ ३५॥

तत्काल लाभ के स्थान—इस नायक को छोड़कर अन्य से सम्बन्ध बनाऊँगी, यह स्वयं चला जायेगा, अपनी स्त्रियों से मिल जायेगा, यह अनर्थों को नष्ट कर देगा, इसके ऊपर स्वामी या पिता का अंकुश विद्यमान है अथवा इसका पद या अधिकार भ्रष्ट हो जायेगा,यह चञ्चल चित्त का व्यक्ति है—यदि वेश्या ऐसा समझे तो तत्काल जो लाभ मिल सकता हो, प्राप्त कर ले॥ ३५॥

प्रतिज्ञातमीश्वरेण प्रतिग्रहं लप्स्यते अधिकरणं स्थानं वा प्राप्स्यति वृत्तिकालोऽस्य वा आसन्नः वाहनमस्यागमिष्यति स्थलपत्रं वा सस्यमस्य पक्ष्यते कृतमस्मिन्न नश्यति नित्यमविसंवादको वेत्यायत्यामिच्छेत्। परिग्रहकल्पं वाचरेत्॥ ३६॥

भविष्य में लाभ के स्थान— राज्य या शासन से इसे धन की प्राप्ति निश्चित रूप से होगी, इसको महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त होगा या इसे किसी प्राधिकरण का प्रमुख बनाया जायेगा, इसकी जीविकाप्राप्ति का समय निकट ही है, इसका वाहन व्यापारिक वस्तुएँ बेचकर शीघ्र ही आने वाला है, इसकी भूमि ऊर्वर है, इसकी फसल पक रही है, यह कृतज्ञ है, इसलिये इसके साथ संसर्ग हानिकारक नहीं है, यह कभी झूठ नहीं बोलता, इसलिये कहकर अवश्य देगा—यदि ऐसी स्थिति हो तो भविष्य में लाभ की इच्छा रखे और पत्नी के समान उसकी सेवा करे॥ ३६॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

कृच्छ्राधिगतवित्तांश्च राजवल्लभनिष्ठुरान्।
आयत्यां च तदात्वे च दूरादेव विवर्जयेत्॥ ३७॥

अग्राह्य पुरुष—जिन्हें कठिनता से धन मिला हो, जो राजा को प्रसन्न करने के लिये क्रूर कर्म करते हों, उनसे तत्काल या भविष्य में अधिक लाभ की सम्भावना भी हो तब भी उनसे दूर ही रहना चाहिये ॥ ३७ ॥

अनर्थो वर्जने येषां गमनेऽभ्युदयस्तथा।
प्रयत्नेनापि तान् गृह्य सापदेशमुपक्रमेत्॥ ३८ ॥

ग्राह्य पुरुष—जिनको ना करने पर अनर्थ की सम्भावना हो और मिलने पर अभ्युदय की प्राप्ति निश्चित हो, ऐसे नायकों को प्रयत्नपूर्वक आकृष्ट करके समागम का अवसर देना चाहिये ॥ ३८ ॥

प्रसन्ना ये प्रयच्छन्ति स्वल्पेऽप्यगणितं वसु।
स्थूललक्ष्यान्महोत्साहाँस्तान् गच्छेत् स्वैरपि व्ययैः ॥ ३९ ॥

अर्थप्रयोजन के पूरक नायक—जो अल्प प्रसन्नता पर भी असीमित धन दे देते हैं, ऐसे स्थूल लक्ष्य वाले पुरुषों को अपना धन खर्च करके भी मिलाना चाहिये ॥ ३९ ॥

लाभविशेषप्रकरण नामक पञ्चम अध्याय पूर्ण हुआ ॥

●

षष्ठ अध्याय

अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारप्रकरण

अर्थानाचर्यमाणाननर्था अप्यनूद्भवन्त्यनुबन्धाः संशयाश्च ॥ १ ॥

अर्थोपाजन के लिये प्रयास करती हुई वेश्या के समक्ष अनेक प्रकार के अनर्थ, अनुबन्ध और संशय उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

ते बुद्धिदौर्बल्यादतिरागादत्यभिमानादतिदम्भादत्यार्जवादतिविश्वासादति-क्रोधात् प्रमादात् साहसाद्दैवयोगाच्च स्युः ॥ २ ॥

अनर्थत्रिवर्ग की उत्पत्ति के कारण—अनर्थ, उनके अनुबन्ध और संशय इन कारणों से उत्पन्न होते हैं—बुद्धि की दुर्बलता से, अधिक प्रेम से, अतिशय अभिमान से, अत्यधिक सरलता से, अत्यन्त विश्वास करने से, अतिक्रोध से, प्रमाद (असावधानी) से, अविवेकपूर्ण कार्य करने से और दैवयोग से ॥ २ ॥

तेषां फलम्—कृतस्य व्ययस्य निष्फलत्वमनायतिरागमिष्यतोऽर्थस्य निवर्तन-मासस्य निष्क्रमणं पारुष्यस्य प्राप्तिर्गम्यता शरीरस्य प्रघातः केशानां छेदनं पातनमङ्गवैकल्यापत्तिः ॥ ३ ॥

दुष्परिणाम—इनके ये दुष्परिणाम हैं—किये गये खर्च का निष्फल हो जाना, प्रभाव और अनुराग का मिट जाना, हाथ आते धन का न मिलना और प्राप्त धन का हाथ से निकल जाना,

स्वभाव में कठोरता आना, अपनी गम्यता और शरीर का उपघात (विनाश), बालों का काट लिया जाना, बन्धन एवं ताड़न तथा अङ्ग-भङ्ग कर देना॥ ३॥

तस्मात्तानादित एव परिजिहीर्षेदर्थभूयिष्ठाँश्चोपेक्षेत॥ ४॥

उपाय का समुचित समय—अतएव वेश्या को चाहिये कि बुद्धि की दुर्बलता आदि अनर्थ के कारणों को प्रारम्भ से ही दूर कर दे और यदि उनसे अधिक धन भी मिलता हो तो भी उनकी उपेक्षा कर दे॥ ४॥

अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः॥ ५॥

अर्थ, धर्म और काम—यह **अर्थत्रिवर्ग** कहलाता है॥ ५॥

अनर्थोऽधर्मो द्वेष इत्यनर्थत्रिवर्गः॥ ६॥

अनर्थत्रिवर्ग—अनर्थ, अधर्म और द्वेष—यह अनर्थत्रिवर्ग है॥ ६॥

तेष्वाचर्यमाणेष्वन्यस्यापि निष्पत्तिरनुबन्धः॥ ७॥

अनुबन्ध-स्वरूप—अर्थ आदि को सिद्ध करते हुए, उसके साथ जो दूसरा स्वतः सिद्ध हो जाये, उसे 'अनुबन्ध' कहते हैं॥ ७॥

सन्दिग्धायां तु फलप्राप्तौ स्याद्वा न वेति शुद्धसंशयः॥ ८॥

शुद्धसंशय—'यह होगा या नहीं'? इस प्रकार फलप्राप्ति में सन्देह होना 'शुद्ध संशय' कहलाता है॥ ८॥

इदं वा स्यादिदं वेति सङ्कीर्णः॥ ९॥

संकीर्णसंशय—'यह फल होगा या यह फल'?—यह सङ्कीर्णसंशय है॥ ९॥

एकस्मिन् क्रियमाणे कार्ये कार्यद्वयस्योत्पत्तिरुभयतोयोगः॥ १०॥

उभयतोयोग—जब एक कार्य करने पर दूसरे कार्य की उत्पत्ति स्वतः हो जाये तो उसे 'उभयतो योग' कहते हैं॥ १०॥

समन्तादुत्पत्तिः समन्ततोयोग इति तानुदाहरिष्यामः॥ ११॥

समन्ततोयोग—जब चारों ओर से उत्पत्ति हो तो उसे 'समन्ततो योग' कहते हैं। इसके उदाहरण आगे देंगे॥ ११॥

विचारितरूपोऽर्थत्रिवर्गः। तद्विपरीत एवानर्थत्रिवर्गः॥ १२॥

दोनों त्रिवर्ग—जिसके स्वरूप पर विचार किया जा चुका है वह अर्थत्रिवर्ग है। इसके विपरीत अनर्थत्रिवर्ग है॥ १२॥

यस्योत्तमस्याभिगमने प्रत्यक्षतोऽर्थलाभो ग्रहणीयत्वमायतिरागमः प्रार्थनीयत्वं चान्येषां स्यात्सोऽर्थोऽर्थानुबन्धः॥ १३॥

अर्थ के साथ अर्थ का अनुबन्ध—जिस उत्तम नायक के साथ समागम करने पर नायिका को केवल अर्थलाभ ही न हो, अपितु उस का प्रभाव बढ़ जाये, वह अन्य नायकों के लिये आकांक्षा की वस्तु बन जाये, वे समागम हेतु प्रार्थना करें और नायिका को अर्थ की प्राप्ति हो तो यह अर्थ प्रथम या प्रधान अर्थ के साथ सम्बद्ध होने के कारण अर्थोऽर्थानुबन्धः (अर्थ का अर्थ के साथ अनुबन्ध) कहलाता है॥ १३॥

लाभमात्रे कस्यचिदन्यस्य गमनं सोऽर्थो निरनुबन्धः॥ १४॥

अनुबन्धरहित अर्थ—केवल अर्थलाभ की दृष्टि से किसी से भी समागम कर लेना अनुबन्धरहित अर्थ है॥ १४॥

अन्यार्थपरिग्रहे सक्तादायतिच्छेदनमर्थस्य निष्क्रमणं लोकविद्विष्टस्य वा नीचस्य गमनमायतिघ्नमर्थोऽनर्थानुबन्धः॥ १५॥

अर्थ के साथ अनर्थ का अनुबन्ध—नायक के हाथों पराया (चुराया हुआ) अर्थ लेने से वेश्या का प्रभाव कम होता है और वह अर्थ भी निकल जाता है अथवा लोकद्रोही या अधम पुरुष के साथ समागम करने से प्रभाव कम होता है और ऐसा अर्थ अनेक अनर्थों को उत्पन्न करता है, अतएव इसे अर्थोऽनुर्थानुबन्धः (अर्थ के साथ अनर्थ का अनुबन्ध) कहते हैं॥ १५॥

स्वेन व्ययेन शूरस्य महामात्रस्य प्रभवतो वा लुब्धस्य गमनं निष्फलमपि व्यसनप्रतीकारार्थं महतश्चार्थघ्नस्य निमित्तस्य प्रशमनमायतिजननं वा सोऽनर्थोऽर्थानुबन्धः॥ १६॥

अनर्थ के साथ अर्थ का अनुबन्ध—अपने व्यय पर किसी शूरवीर, प्रभावशाली पुरुष, महामन्त्री या लोभी के साथ समागम निष्फल (तत्काल अर्थहीन) होने पर भी सङ्कट के निवारण के लिये, महान् अर्थनाशक कारणों को शान्त करने के लिये और प्रभाव बढ़ाने के लिये तो है। इस प्रकार अर्थप्राप्ति रूप एक प्रयोजन के सिद्ध न होने पर भी अनेक प्रयोजन सिद्ध करने वाला है—इसे ही 'अनर्थोऽर्थानुबन्धः'—अनर्थ का अर्थ से अनुबन्ध कहा जाता है॥ १६॥

कदर्यस्य सुभगमानिनः कृतघ्नस्य वातिसन्धानशीलस्य स्वैरपि व्ययैस्तथाराधनमन्ते निष्फलं सोऽनर्थो निरनुबन्धः॥ १७॥

अनुबन्धरहित अनर्थ—अपने को सुन्दर समझने वाले, कृपण, कृतघ्न या अत्यधिक चाटुकारिता चाहने वाले पुरुष के साथ जब वेश्या अपने व्यय पर समागम करती है तो उसका धन और अनुराग, दोनों ही निष्फल हो जाते हैं। किसी के भी साथ सम्बद्ध न होने के कारण ऐसा अनर्थ अनुबन्धरहित कहलाता है॥ १७॥

तस्यैव राजवल्लभस्य क्रौर्यप्रभावाधिकस्य तथैवाराधनमन्ते निष्फलं निष्कासनं च दोषकरं सोऽनर्थोऽनर्थानुबन्धः॥ १८॥

अनर्थ के साथ अनर्थ का अनुबन्ध—कृपण पुरुषों से केवल अनुबन्धरहित अनर्थ ही उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है; कभी-कभी अनर्थ से सम्बन्धित अनर्थ भी उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार किसी क्रूर राजपुरुष या प्रशासनिक अधिकारी के साथ समागम करना निष्फल होता है और उसे निकाल देना अनेक अनर्थों को उत्पन्न करने वाला बन जाता है। इस प्रकार यह अनर्थ अपने साथ अनेक अनर्थों का सम्बन्ध रखने के कारण 'अनर्थोऽनर्थानुबन्धः' (अनर्थ का अनर्थ के साथ अनुबन्ध) कहलाता है॥ १८॥

एवं धर्मकामयोरप्यनुबन्धान् योजयेत्॥ १९॥

धर्म और काम की अनुबन्ध योजना—इसी प्रकार धर्म और काम के अनुबन्धों की भी योजना कर लेनी चाहिये॥ १९॥

परस्परेण च युक्त्या सङ्किरेदित्यनुबन्धाः ॥ २० ॥

इनको परस्पर युक्तिपूर्वक मिलाये। इस प्रकार अनुबन्ध पूर्ण हुए ॥ २० ॥

परितोषितोऽपि दास्यति न वेत्यर्थसंशयः ॥ २१ ॥

शुद्धसंशय : अर्थसंशय—सन्तुष्ट होने पर भी देगा या नहीं ? यह अर्थसंशय है ॥ २१ ॥

निष्पीडितार्थमफलमुत्सृजन्त्या अर्थमलभमानाया धर्मः स्यान्न वेति धर्मसंशयः ॥ २२ ॥

धर्मसंशय—जिसका समस्त धन निचोड़ लिया हो और उससे कुछ धन का मिल पाने के कारण उसे छोड़ने को उद्यत हो, अर्थ न मिल पाने पर उसे छोड़ना वेश्या के लिये धर्म होगा या नहीं ?—इस प्रकार का संशय धर्मसंशय है ॥ २२ ॥

अभिप्रेतमुपलभ्य परिचारकमन्यं वा क्षुद्रं गत्वा कामः स्यान्न वेति कामसंशयः ॥ २३ ॥

कामसंशय—अभीष्ट नायक को पाकर भी किसी अन्य आत्मीय सेवक या क्षुद्रव्यक्ति के निकट जाकर 'इसके साथ समागम करने पर काम होगा या नहीं'? इस प्रकार का सन्देह करना कामसंशय कहलाता है ॥ २३ ॥

प्रभाववान् क्षुद्रोऽनभिगतोऽनर्थं करिष्यति न वेत्यनर्थसंशयः ॥ २४ ॥

अनर्थसंशय—प्रभावशाली नीच पुरुष समागम का अवसर न मिलने पर अनर्थ करेगा या नहीं ?—यह अनर्थसंशय है ॥ २४ ॥

अत्यन्तनिष्फलः सक्तः परित्यक्तः पितृलोकं यायात्तत्राधर्मः स्यान्न वेत्यधर्मसंशयः ॥ २५ ॥

अधर्मसंशय—समागम के लिये उत्सुक निर्धन नायक को प्रयोजनहीन मानकर छोड़ दिया गया हो और फिर यह सोचा जाये कि यदि यह मर जाये तो अधर्म होगा या नहीं ?—ऐसा सन्देह अधर्मसंशय कहलाता है ॥ २५ ॥

रागस्यापि विवक्षायामभिप्रेतमनुपलभ्य विरागः स्यान्न वेति द्वेषसंशयः। इति शुद्धसंशयाः ॥ २६ ॥

द्वेषसंशय—कामव्यथा से पीड़ित वेश्या अभीष्ट नायक को न पाकर जब कामव्यथा के शमन के लिये छटपटाती है, उस समय उसे बिना मिले विराग होगा या नहीं, यह सन्देह द्वेषसंशय कहलाता है। इस प्रकार शुद्ध संशयवर्णन पूर्ण हुआ। ॥ २६ ॥

अथ सङ्कीर्णाः ॥ २७ ॥

सङ्कीर्णसंशय—अब सङ्कीर्णसंशयों को कहते हैं ॥ २७ ॥

आगन्तोरविदितशीलस्य वल्लभसंश्रयस्य प्रभविष्णोर्वा समुपस्थितस्याराधनमर्थोऽनर्थ इति संशयः ॥ २८ ॥

अर्थ और अनर्थ की संकीर्णता—आश्रित या प्रभावशाली नायक की उपस्थिति में यदि अपरिचित पुरुष समागम के लिये आ जाये तो उसका आराधन अर्थकर है या अनर्थकर ?—यह सन्देह होना—यह अर्थ और अनर्थ का संशय है ॥ २८ ॥

श्रोत्रियस्य ब्रह्मचारिणो दीक्षितस्य व्रतिनो लिङ्गिनो वा मां दृष्ट्वा जातरागस्य मुमूर्षोर्मित्रवाक्यादानृशंस्याच्च गमनं धर्मोऽधर्म इति संशयः ॥ २९ ॥

धर्म और अधर्म की संकीर्णता—अपने को देखकर अनुरक्त हुए वेदपाठी ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, दीक्षित, व्रती, साधु या मरने की इच्छा रखने वाले पुरुष के साथ मित्र के कथन पर अथवा अपनी दयालुता के कारण वेश्या का समागम करना धर्म होगा या अधर्म ?—यह धर्माधर्मसंशय कहलाता है ॥ २९ ॥

लोकादेवाकृतप्रत्ययादगुणो गुणवान् वेत्यनवेक्ष्य गमनं कामो द्वेष इति संशयः ॥ ३० ॥

काम और द्वेष की सङ्कीर्णता—'यह गुणवान् है अथवा गुणहीन है' इस बात का स्वयं विचार करके केवल लोकप्रवाद (संसार के कहने पर) से नायक के साथ समागम करने पर काम होगा या द्वेष ?—इस प्रकार का सन्देह काम और द्वेष की सङ्कीर्णता कहलाता है ॥ ३० ॥

सङ्किरेच्च परस्परेणेति सङ्कीर्णसंशयाः ॥ ३१ ॥

जो परस्पर मिलने से संशय हो, वे सङ्कीर्णसंशय हैं। इस प्रकार सङ्कीर्णसंशय पूर्ण हुए ॥ ३१ ॥

यत्र परस्याभिगमनेऽर्थः सक्ताच्च सङ्घर्षतः स उभयतोऽर्थः ॥ ३२ ॥

उभयतः अर्थयोग—दूसरे नायक से अर्थ लेकर समागम करने से वेश्या पर आसक्त नायक भी दूसरे नायक से सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिये अर्थ देता है, तो दोनों ओर से अर्थ का योग होने से यह 'उभयतो अर्थयोग' हुआ ॥ ३२ ॥

यत्र स्वेन व्ययेन निष्फलमभिगमनं सक्ताच्चामर्षिताद्वित्तप्रत्यादानं स उभयतोऽनर्थः ॥ ३३ ॥

उभयत : अनर्थयोग—जहाँ नायिका अपना धन व्यय करके नायक के साथ समागम करती है और निष्फल रहता है तथा दूसरी ओर अप्रसन्न अनुरक्त नायक से उसके द्वारा दिये गये अर्थ के छिन जाने का भय हो तो इसे 'उभयतः अनर्थयोग' कहते हैं ॥ ३३ ॥

यत्राभिगमनेऽर्थो भविष्यति न वेत्याशङ्का सक्तोऽपि सङ्घर्षाद्दास्यति न वेति स उभयतोऽर्थसंशयः ॥ ३४ ॥

उभयतः अर्थसंशय—जिस समागम में 'अर्थ प्राप्त होगा या नहीं' ? यह शंका हो और अनुरक्त नायक भी संघर्ष के कारण देगा या नहीं—यह संशय हो तो इसे 'उभयतः अर्थसंशय' कहा जाता है ॥ ३४ ॥

यत्राभिगमने व्ययवति पूर्वो विरुद्धः क्रोधादपकारं करिष्यति न वेति सक्तो वामर्षितो दत्तं प्रत्यादास्यति न वेति स उभयतोऽनर्थसंशयः। इत्यौद्दालकेरुभयतो योगाः ॥ ३५ ॥

उभयतो अनर्थसंशय—अपने पास से व्यय करके अपूर्व नायक के साथ समागम करना पड़े, इससे पूर्व नायक क्रोधवश अपकार कर देगा या नहीं ?—यह संशय हो अथवा अनुरक्त नायक भी अप्रसन्न होकर दिये गये धन को वापस न ले ले ?—यह संशय हो। इस प्रकार दोनों

ओर से अनर्थ का संशय होने पर 'उभयतः अनर्थसंशय' होता है। उद्दालक के पुत्र श्वेकेतु द्वारा कहे गये उभयतो योग पूर्ण हुए॥ ३५ ॥

बाभ्रवीयास्तु॥ ३६ ॥

इस विषय में आचार्य बाभ्रव्य के अनुयायी यह बताते हैं ॥ ३६ ॥

यत्राभिगमनेऽर्थोनभिगमने च सक्तादर्थः स उभयतोऽर्थः ॥ ३७ ॥

उभयतः अर्थयोग—जिस उभयतो योग में पूर्व नायक से समागम किये विना ही दूसरे (अपूर्व) से अर्थ प्राप्त कर लिया जाये और बाद में अनुरक्त नायक को भी प्रसन्न कर अर्थ प्राप्त किया जाये तो वह 'उभयतः अर्थयोग' कहलाता है ॥ ३७ ॥

यत्राभिगमने निष्फलो व्ययोऽनभिगमने च निष्प्रतीकारोऽनर्थः स उभयतोऽनर्थः ॥ ३८ ॥

उभयतः अनर्थयोग—जिस समागम में निष्फल व्यय हो और समागम न करने पर अपरिहार्य संकट आने की आशंका हो, वह 'उभयतः अनर्थयोग' कहलाता है ॥ ३८ ॥

यत्राभिगमने निर्व्ययो दास्यति न वेति संशयोऽनभिगमने सक्तो दास्यति न वेति स उभयतोऽर्थसंशयः ॥ ३९ ॥

उभयतो अर्थसंशय—जिस समागम में अपना तो कुछ खर्च न हो, लेकिन देगा या नहीं? यह सन्देह बना हुआ हो और अनुरक्त नायक भी विना समागम के देगा या नहीं?—यह संशय हो तो यह 'उभयतः अर्थसंशय' कहलाता है ॥ ३९ ॥

यत्राभिगमने व्ययवति पूर्वो विरुद्धः प्रभाववान् प्राप्स्यते न वेति संशयोऽनभिगमने च क्रोधादनर्थं करिष्यति न वेति स उभयतोऽनर्थसंशयः ॥ ४० ॥

उभयतः अनर्थसंशय—अपने पास से व्यय करके किये गये जिस समागम में यह संशय हो कि पूर्व नायक जो प्रभावशाली पुरुष है, अब मिलेगा या नहीं और न करने पर यह संशय हो कि क्रोध से वह अनर्थ करेगा या नहीं, दोनों ओर से अनर्थ का सन्देह होने के कारण यह उभयतः अनर्थसंशय कहलाता है ॥ ४० ॥

एतेषामेव व्यतिकरेऽन्यतोऽर्थोऽन्यतोऽनर्थः, अन्यतोऽर्थोऽन्यतोऽर्थसंशयः, अन्यतोऽर्थोऽन्यतोऽनर्थसंशय इति षट्सङ्कीर्णयोगाः ॥ ४१ ॥

उभयतः संकीर्ण योग—इन्हीं के विषम प्रयोगों से एक-एक के छह-छह संकीर्ण योग बनते हैं—एक से अर्थ एक से अनर्थ, एक से अर्थ एक से अर्थसंशय और एक से अर्थ एक से अनर्थ-संशय—ये तीन श्वेतकेतु के मत से और तीन ही बाभ्रवीय मत से, दोनों मिलाकर छह सङ्कीर्ण योग हुए। इस प्रकार छह सङ्कीर्ण योगों का विवेचन पूर्ण हुआ ॥ ४१ ॥

तेषु सहायैः सह विमृश्य यतोऽर्थभूयिष्ठोऽर्थसंशयो गुरुरनर्थप्रशमो वा ततः प्रवर्तेत ॥ ४२ ॥

विवेचन का प्रयोजन—इन संशयों के उपस्थित होने पर अपने सहायकों के साथ विचार कर, जिससे अधिक अर्थवाला संशय हो अथवा जिसमें महान् अनर्थ की शान्ति हो, उसी के साथ समागम में प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ४२ ॥

एवं धर्मकामावप्यनयैव युक्त्योदाहरेत्। सङ्कीरेच्च परस्परेण व्यतिषञ्ज-येच्चेत्युभयतोयोगाः ॥ ४३ ॥

अवशिष्टों के शुद्ध, सङ्कीर्ण और संश्लिष्ट—जिस युक्ति से अर्थ के शुद्ध उभयतो योग बताये गये हैं उसी युक्ति से धर्म और काम के भी शुद्ध उभयतो योग बना लें, अर्थ के समान ही इनके सङ्कीर्ण उभयतो योग भी बना लें, और फिर उनके विरोधी भाव हटाकर उन्हें परस्पर संश्लिष्ट भी कर दें ॥ ४३ ॥

सम्भूय च विटाः परिगृह्णन्त्येकामसौ गोष्ठीपरिग्रहः ॥ ४४ ॥

गोष्ठीपरिग्रह—बहुत से विट (रसलम्पट) मिलकर एक वेश्या के साथ रतिक्रीड़ा करें तो उसे 'गोष्ठीपरिग्रह' कहते हैं ॥ ४४ ॥

सा तेषामितस्ततः संसृज्यभाना प्रत्येकं सङ्घर्षादर्थं निर्वर्तयेत् ॥ ४५ ॥

समन्ततो योग में वेश्या का कर्तव्य—गोष्ठीपरिग्रह वाली वेश्या को चाहिये कि इधर उधर मिलती हुई, नायकों से स्पर्धा कराकर उनसे धन प्राप्त कर ले ॥ ४५ ॥

सुवसन्तकादिषु च योगे यो मे इममम् च सम्पादयिष्यति तस्याद्य गमिष्यति मे दुहितेति मात्रा वाचयेत् ॥ ४६ ॥

स्पर्धा का कारण—वेश्या की माँ उसके नायकों से यह कहलवा दे कि सुवसन्तक आदि उत्सव पर यह उसी के साथ प्रथम समागम करेगी, जो इन इन वस्तुओं को लाकर उसे देगा ॥ ४६ ॥

तेषां च सङ्घर्षजेऽभिगमने कार्याणि लक्षयेत् ॥ ४७ ॥

उस समय जब नायक वेश्या से मिलने के लिये स्पर्धा करने लगे तो अपने लक्ष्य (लाभ) पर ही ध्यान रखे ॥ ४७ ॥

एकतोऽर्थः सर्वतोऽर्थः, एकतोऽनर्थः सर्वतोऽनर्थः, अर्धतोऽर्थः सर्वतोऽर्थः, अर्धतोऽनर्थः सर्वतोऽनर्थः— इति समन्ततो योगाः ॥ ४८ ॥

लाभनिर्देश—एक से अर्थ सबसे अर्थ, एक से अनर्थ सबसे अनर्थ, आधों से अर्थ सबसे अर्थ, आधों से अनर्थ सबसे अनर्थ—ये समन्ततो योग हैं ॥ ४८ ॥

अर्थसंशयमनर्थसंशयं च पूर्ववद्योजयेत्। सङ्कीरेच्च तथा धर्मकामावपि। इत्यर्थानर्थानुबन्धसंशयविचाराः ॥ ४९ ॥

पूर्ववत् अर्थसंशय और अनर्थसंशय की योजना कर लेनी चाहिये, साथ ही संकीर्ण को भी समझ लेना चाहिये। इसी प्रकार धर्म और काम के समन्ततो योग भी समझ लेने चाहिये। इस प्रकार अनुबन्ध, अर्थ, अनर्थ और संशयों के विचार पूर्ण हुए ॥ ४९ ॥

कुम्भदासी परिचारिका कुलटा स्वैरिणी नटी शिल्पकारिका प्रकाशविनष्टा रूपाजीवा गणिका चेति वेश्याविशेषाः ॥ ५० ॥

कुम्भदासी, परिचारिका, कुलटा, स्वैरिणी, नटी, शिल्पकारिका, प्रकाशविनष्टा, रूपाजीवा और गणिका—ये वेश्या के भेद हैं ॥ ५० ॥

सर्वासां चानुरूपेण गम्याः सहायास्तदुपरञ्जनमर्थागमोपाया निष्कासनं पुनः सन्धानं लाभविशेषानुबन्धा अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचाराश्चेति वैशिकम्॥ ५१ ॥

जितने प्रकार की वेश्याएँ बतायी गयी हैं, उतने ही प्रकार के उनके मिलने वाले भी होते हैं। वेश्याएँ, उनके नायक, उनके सहायक, अनुरक्त करने के उपाय, अर्थप्राप्ति के उपाय, धनहीन नायकों को निकालने की रीति, वियुक्त को मिलाने की रीति; लाभविशेष, अर्थ, अनर्थ, अनुबन्ध और संशयों का विचार—यही इस अधिकरण के प्रमुख प्रतिपाद्य (विषय) हैं॥ ५१॥

भवतश्चात्र श्लोकौ—

रत्यर्थाः पुरुषा येन रत्यर्थाश्चैव योषितः।
शास्त्रस्यार्थप्रधानत्वात्तेन योगोऽत्र योषिताम्॥ ५२ ॥

इस विषय में दो आनुवंश्य श्लोक उद्धृत करते हैं—

पुरुष और स्त्री, दोनों ही रतिसुख की कामना करते हैं, दोनों का प्रयोजन रतिसुख ही होता है। क्योंकि रतिसुख का केन्द्र स्त्री है, इसलिये स्त्रियों के रति प्रयोजन पर यहाँ विस्तार से विचार किया गया है॥ ५२॥

सन्ति रागपरा नार्यः सन्ति चार्थपरा अपि।
प्राक्तत्र वर्णितो रागो वेश्यायोगाश्च वैशिके॥ ५३ ॥

उपसंहार—कुछ स्त्रियाँ शुद्ध राग की ही कामना करती हैं और कुछ रति के साथ धन की भी इच्छा करती हैं। रागिणी स्त्रियों का वर्णन तो पिछले अधिकरणों में कर दिया गया है और जो रति (राग) के साथ धन की भी इच्छा करती हैं, उनका वर्णन इस अधिकरण में किया गया है॥ ५३॥

अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारप्रकरण
नामक षष्ठ अध्याय सम्पन्न॥

●

७.

औपनिषदिक नामक सप्तम अधिकरण

प्रथम अध्याय

सुभगङ्करणादिप्रकरण

व्याख्यातं च कामसूत्रम्॥ १ ॥

स्वयं शास्त्रकार महर्षि वात्स्यायन इस प्रकरण का सम्बन्ध बताते हुए कहते हैं—कामसूत्र की व्याख्या समाप्त हुई॥ १॥

तत्रोक्तेस्तु विधिभिरभिप्रेतमर्थमनधिगच्छन्नौपनिषदिकमाचरेत्॥ २ ॥

यदि पूर्वोक्त विधियों (तन्त्र[1] और आवाप[2])से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति न हो सके तो इस औपनिषदिक[3] अधिकरण में बताये गये उपायों को प्रयोग में लाना चाहिये ॥ २ ॥

रूपं गुणो वयस्त्याग इति सुभगङ्करणम् ॥ ३ ॥

सुभगङ्करण (सौन्दर्यवर्धक) योग—रूप, गुण, अवस्था और उदारता—ये चार बातें मनुष्य को सौभाग्यशाली बनाती हैं ॥ ३ ॥

तगरकुष्ठतालीसपत्रकानुलेपनं सुभगङ्करणम् ॥ ४ ॥

सौन्दर्यवर्धक योग—तगर, कूट और तालीशपत्र का लेप करना सौन्दर्य बढ़ाता है ॥ ४ ॥

एतैरेव सुपिष्टैर्वर्तिमालिम्प्याक्षतैलेन नरकपाले साधितमञ्जनं च ॥ ५ ॥

सुभगङ्ककरण काजल—उपर्युक्त वस्तुओं को पीसकर और रूई को बत्ती में लपेटकर बहेड़े के तैल में जलाकर नरकपाल में अंजन बना ले ॥ ५ ॥

पुनर्नवासहदेवीसारिवाकुरण्टोत्पलपत्रैश्च सिद्धं तैलमभ्यञ्जनम् ॥ ६ ॥

सुभगङ्करण तैल—पुनर्नवा, सहदेवी, अनन्तमूल, कुरण्ट (पियाबाँसा) और उत्पल (नीलकमल)—इन सबका तैल बनाकर लगाने से सौभाग्य-सौन्दर्य बढ़ता है ॥ ६ ॥

तद्युक्ता एव स्रजश्च ॥ ७ ॥

सुभगङ्कर माला—पुनर्नवा आदि वस्तुओं को माला में लगाकर पहने ॥ ७ ॥

पद्मोत्पलनागकेसराणां शोषितानां चूर्णं मधुघृताभ्यामवलिह्य सुभगो भवति ॥ ८ ॥

सुभगङ्कर चटनी—पद्म (लाल कमल), उत्पल (नील कमल) और नागकेसर के चूर्ण को शहद और घी के साथ मिलाकर चाटने से भी सौन्दर्य (सौभाग्य) बढ़ता है ॥ ८ ॥

तान्येव तगरतालीसतमालपत्रयुक्तान्यनुलिप्य ॥ ९ ॥

सुभगङ्कर लेप—इन वस्तुओं में तगर, तालीशपत्र और तमालपत्र मिलाकर सुभगङ्कर लेप भी तैयार होता है ॥ ९ ॥

मयूरस्याक्षि तरक्षोर्वा सुवर्णेनावलिप्य दक्षिणहस्तेन धारयेदिति सुभगङ्करणम् ॥ १० ॥

सुभगङ्कर यंत्रधारण—मोर और चीते की आँखें सोने के ताबीज में भरकर दाहिने हाथ में बाँधें—ये सुभग बनाने के उपाय हैं ॥ १० ॥

तथा बादरमणिं शङ्खमणिं च तथैव तेषु चाथर्वणान्योगान् गमयेत् ॥ ११ ॥

इसी प्रकार बादरमणि और शङ्खमणि भी हैं। अथर्ववेद में लिखे ऐसे प्रयोगों को समझ लेना चाहिये ॥ ११ ॥

विद्यातन्त्राच्च विद्यायोगात् प्राप्तयौवनां परिचारिकां स्वामी संवत्सर-

---

१. पूर्वोक्त रत्युत्पादक आलिङ्गन, चुम्बन आदि तन्त्र कहलाते हैं।

२. पूर्वोक्त स्त्री आदि की प्राप्ति आवाप कही जाती है।

३. गूढ या गोपनीय सिद्धान्त औपनिषदिक कहलाते हैं।

मात्रमन्यतो वारयेत्। ततो वारितां बालां वामत्वाल्लालसीभूतेषु गम्येषु योऽस्यै संघर्षेण बहु दद्यात्तस्मै विसृजेदिति सौभाग्यवर्धनम्॥ १२॥

विद्यातन्त्र और विद्यायोग से यौवनावस्था को प्राप्त परिचारिका को स्वामी एक वर्ष तक समागम से रक्षित रखे। इस प्रकार रक्षित परिचारिका को दूसरे पुरुष बाला मानकर समागम और विवाह की इच्छा प्रकट करेंगे। इस प्रकार लालसा की स्पर्धा में जो अधिक धन दे, उसी को परिचारिका सौंप दे, यह परिचारिका के सौभाग्यवर्धन की विधि है॥ १२॥

गणिका प्राप्तयौवनां स्वां दुहितरं तस्या विज्ञानशीलरूपानुरूप्येण तान-भिनिमन्त्र्य सारेण योऽस्या इदमिदं च दद्यात् स पाणिं गृह्णीयादिति सम्भाष्य रक्षयेदिति॥ १३॥

वेश्यापुत्री के विवाह की विधि—गणिका अपनी युवा पुत्री को समान शील, रूप, गुण और यौवनसम्पन्न युवकों को आमन्त्रित कर उनकी गोष्ठी में यह घोषणा करे कि जो मेरी पुत्री को ये ये वस्तुएँ देगा उसी के साथ उसका विवाह कर दिया जायेगा—इस प्रकार अपनी पुत्री का विवाह कर उसके चरित्र की रक्षा करें॥ १३॥

सा च मातुरविदिता नाम नागरिकपुत्रैर्धनिभिरत्यर्थं प्रीयेत॥ १४॥

वेश्यापुत्री का कर्तव्य—और उस वेश्यापुत्री को चाहिये कि वह उन धनी नागरिक पुत्रों के साथ इस प्रकार प्रेम प्रदर्शित करे मानो माँ को कुछ पता ही नहीं है॥ १४॥

तेषां कलाग्रहणे गन्धर्वशालायां भिक्षुकीभवने तत्र तत्र च सन्दर्शन-योगाः॥ १५॥

रसिकों का दर्शन—जब वे युवक कलाज्ञान के लिये अपने घर आयें तो लड़की उनसे मिले और तत्पश्चात् गन्धर्वशाला, भिक्षुकी के घर, सरस्वतीभवन, उद्यान आदि में मिलती रहे॥ १५॥

तेषां यथोक्तदायिनां माता पाणिं ग्राहयेत्॥ १६॥

पाणिग्रहण—जो युवक कही हुई वस्तु लाकर दे दे, उसके साथ वेश्या अपनी पुत्री का पाणिग्रहण करा दे॥ १६॥

तावदर्थमलभमाना तु स्वेनाप्येकदेशेन दुहित्र एतद्दत्तमनेनेति ख्यापयेत्॥ १७॥

विना धन मिले भी प्रदर्शन—जो जो वस्तुएँ उससे पहले नियत हुई हों, यदि वे सब न भी मिलें तो वेश्या अपनी ओर से दिखाकर यह कह दे कि यह भी इस युवक ने मेरी पुत्री को दिया है॥ १७॥

ऊढाया वा कन्याभावं विमोचयेत्॥ १८॥

अथवा कन्या के युवा हो जाने पर उपर्युक्त रीति से युवकों को फँसाकर उसका कौमार्यभङ्ग करा दे॥ १८॥

प्रच्छन्नं वा तैः संयोज्य स्वयमजानती भूत्वा ततो विदितेष्वेतं धर्मस्थेषु निवेदयेत्॥ १९॥

धन वसूलने की रीति—अथवा प्रच्छन्न रूप से उन युवकों से मिलाकर उनके प्रेम को राजकीय अधिकारियों तक पहुँचा दे और फिर उन रसिकों के विरुद्ध न्यायाधिकरण में पहुँच जाये॥ १९॥

सख्यैव तु दास्या वा नोचितकन्याभावां सुगृहीतकामसूत्रामाभ्यासिकेषु योगेषु प्रतिष्ठितां प्रतिष्ठिते वयसि सौभाग्ये च दुहितरमवसृजन्ति गणिका इति प्राच्योपचारा:॥ २०॥

प्राच्य देश की वेश्याओं की रीति—पूर्व प्रदेशों की वेश्याएँ सखी या दासी से लड़की का कौमार्यहरण कराकर काम के रहस्यों और योगों का अभ्यास कराती हैं। उन योगों और कामकलाओं में दक्षता प्राप्त कर लेने पर यौवन के साथ ही उनका भाग्य भी चमक उठता है और तत्पश्चात् युवती को वेश्याचरित के लिये स्वतन्त्र कर देती हैं॥ २०॥

पाणिग्रहश्च संवत्सरमध्यभिचार्यस्ततो यथा कामिनी स्यात्॥ २१॥

एक वर्ष तक पत्नीव्रत का निर्वाह—जिस युवक ने वेश्यापुत्री का पाणिग्रहण किया हो उसके साथ वह एक वर्ष सदाचारिणी बनकर रहे। तत्पश्चात् जहाँ वह चाहे या जो उसे चाहे वहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक भोग करे॥ २१॥

ऊर्ध्वमपि संवत्सरात् परिणीतेन निमन्त्र्यमाणा लाभमप्युत्सृज्य तां रात्रिं तस्या-गच्छेदिति वेश्यायाः पाणिग्रहणविधिः सौभाग्यवर्धनं च॥ २२॥

निमन्त्रण पर उपस्थिति आवश्यक—एक वर्ष बाद भी जब पति बुलाये तब भी वेश्यापुत्री अर्थलाभ को छोड़कर उस रात उसके साथ समागम के लिये अवश्य आये। **वेश्या के विवाह और सौभाग्यवर्धन का विषय पूर्ण हुआ॥ २२॥**

एतेन रङ्गोपजीविनां कन्या व्याख्याताः॥ २३॥

अभिनेत्री कन्याओं की विवाह की रीति—इससे ही रङ्गमञ्च पर अभिनय करने वाली कन्याओं की बात भी कह दी गयी है अर्थात् रङ्गमञ्च पर नृत्य और अभिनय करने वाली कन्याओं की विवाह की भी यही रीति है॥ २३॥

तस्मै तु तां दद्युर्य एषां तूर्ये विशिष्टमुपकुर्यात्। इति सुभगङ्करणम्॥ २४॥

वैशिष्ट्यकथन—नट, नर्तक आदि अपनी पुत्री का विवाह उसी पुरुष से करें, जो उसके नृत्य-गान आदि को उन्नत बनाने में सहायक हो। **सुभगङ्करण प्रकरण पूर्ण हुआ॥ २४॥**

धत्तूरकमरिचपिप्पलीचूर्णैर्मधुमिश्रैर्लिप्तलिङ्गस्य सम्प्रयोगो वशीकरणम्॥ २५॥

वशीकरण प्रकरण : वशीकरण लेप—धतूरा, काली मिर्च और छोटी पीपल के चूर्ण में शहद मिलाकर शिश्न पर लेप करके जिस स्त्री से समागम किया जाये वह वशीभूत हो जाती है॥ २५॥

वातोद्भ्रान्तपत्रं मृतकनिर्माल्यं मयूरास्थिचूर्णावचूर्णं वशीकरणम्॥ २६॥

वशीकरण चूर्ण—हवा से उड़ा हुआ पत्ता, शव पर चढ़ाया गया फूल और मोर की हड्डी के चूर्ण का अवचूर्ण (सूक्ष्म चूर्ण) उत्तम वशीकरण है॥ २६॥

स्वयं मृताया मण्डलकारिकायाश्चूर्णं मधुसंयुक्तं सहामलकैः स्नानं वशीकरणम्॥ २७॥

वशीकरण स्नान—स्वयं मरे हुए गिद्ध (मादा) के चूर्ण में शहद मिलाकर और आँवले के रस के साथ उबटन की तरह लगाकर स्नान करने से भी स्त्री वशीभूत हो जाती है॥ २७॥

वज्रस्नुहीगण्डकानि खण्डशः कृतानि मनःशिलागन्धपाषाणचूर्णेनाभ्यज्य सप्तकृत्वः शोषितानि चूर्णयित्वा मधुना लिप्तलिङ्गस्य सम्प्रयोगो वशीकरणम्॥ २८॥

शिश्नलेप—थूहर की गाँठें टुकड़े-टुकड़े करके उनमें मैनशिल और गन्धक को लपेटकर सात बार सुखाये, फिर उसका चूर्ण बनाकर शिश्न पर लेप करके जिस स्त्री से समागम किया जाये वह वशीभूत हो जाती है॥ २८॥

एतेनैव रात्रौ धूमं कृत्वा तद्धूमतिरस्कृतं सौवर्णं चन्द्रमसं दर्शयति॥ २९॥

उपर्युक्त वस्तुओं के चूर्ण का रात्रि में धुआँ करने पर धुएँ से ढका चन्द्र सोने का-सा दिखायी देता है॥ २९॥

एतैरेव चूर्णितैर्वानरपुरीषमिश्रितैर्यां कन्यामवकिरेत् साऽन्यस्मै न दीयते॥ ३०॥

वाञ्छित कन्या से विवाह की रीति—इन्हीं वस्तुओं के चूर्ण में बन्दर की विष्ठा मिलाकर जिस कन्या पर छिड़क दी जाये, वह किसी अन्य को नहीं दी जा सकती अर्थात् वह वशीभूत हो जाती है और प्रयोक्ता से ही विवाह करती है॥ ३०॥

वचागण्डकानि सहकारतैललिप्तानि शिंशपावृक्षस्कन्धमुत्कीर्य षण्मासं निदध्यात् ततः षड्भिर्मासैरपनीतानि देवकान्तमनुलेपनं वशीकरणं चेत्याचक्षते॥ ३१॥

देवकान्त अनुलेप—वचा की गाँठें आम के तैल में भिगोकर शीशम के तने में खोदकर रख दे। छह मास पश्चात् निकाले। यह देवकान्त अनुलेप उत्तम वशीकरण है—ऐसा क़हा जाता है॥ ३१॥

तथा खदिरसारजानि शकलानि तनूनि यं वृक्षमुत्कीर्य षण्मासं निदध्यात् तत्पुष्पगन्धानि भवन्ति गन्धर्वकान्तमनुलेपनं वशीकरणं चेत्याचक्षते॥ ३२॥

गन्धर्वकान्त अनुलेप—इसी प्रकार खदिरसार (कत्था) के टुकड़ों को पतला करके और आम के तैल में भिगोकर जिस वृक्ष के तने में छह मास के लिये रख देंगे, वे उसी के समान सुगन्ध वाले हो जायेंगे। यह गन्धर्वकान्त अनुलेप उत्तम वशीकरण है—ऐसा कहा जाता है॥ ३२॥

प्रियङ्गवस्तगरमिश्राः सहकारतैलदिग्धा नागवृक्षमुत्कीर्य षण्मासं निहिता नागकान्तमनुलेपनं वशीकरणमित्याचक्षते॥ ३३॥

नागकान्त अनुलेप—तगर और काँगनी को मिलाकर और आम के तेल में भिगोकर नागकेसर के तने में छह मास के लिये दबा दे। नागकान्त नामक यह अनुलेप उत्तम वशीकरण है—ऐसा कहा जाता है॥ ३३॥

उष्ट्रास्थि भृङ्गराजरसेन भावितं दग्धमञ्जनं नलिकायां निहितमुष्ट्रास्थि-शलाकयैव स्त्रोतोऽञ्जनसहितं पुण्यं चक्षुष्यं वशीकरणं चेत्याचक्षते॥ ३४॥

पुण्य अंजन—ऊँट की हड्डियों में भृङ्गराज के रस की भावना देकर अंजन के समान पुटपाक विधि से जलाकर काजल बना ले। इसे ऊँट की हड्डियों से बनी सुरमादानी में रखे और ऊँट की हड्डी से बनी सलाई से आँखों में लगावे। यह नेत्रों के लिये हितकारी और उत्तम वशीकरण है—ऐसा कहा जाता है॥ ३४॥

एतेन श्येनभासमयूरास्थिमयान्यञ्जनानि व्याख्यातानि॥ ३५॥

इसी प्रकार श्येन, भास, मयूर आदि पक्षियों की हड्डियों का अंजन भी उपर्युक्त विधि से बनाया जा सकता है॥ ३५॥

उच्चटाकन्दश्चव्या यष्टीमधुकं च सशर्करेण पयसा पीत्वा वृषीभवति॥ ३६॥

बल-वीर्यवर्धक (वृष्य) प्रकरण : उच्चटा और मुलहठी—उच्चटा (उटंगण) और मुलहठी के चूर्ण को शक्कर मिले दूध के साथ पीने से पुरुष के बलवीर्य में वृद्धि होती है॥ ३६॥

मेषवस्तमुष्कसिद्धस्य पयसः सशर्करस्य पानं वृषत्वयोगः॥ ३७॥

मेढ़ा और बकरे का अण्डकोश—मेढ़ा या बकरे के अण्डकोशों को दूध में पकाकर और शक्कर डालकर पीने से भी बलवीर्य की वृद्धि होती है॥ ३७॥

तथा विदार्याः क्षीरिकायाः स्वयंगुप्तायाश्च क्षीरेण पानम्॥ ३८॥

विदारीकन्द, वंशलोचन और क्रौंच—विदारीकन्द, वंशलोचन और क्रौंच के बीजों के चूर्ण को दूध के साथ पीने से बलवीर्य की वृद्धि होती है॥ ३८॥

तथा प्रियालबीजानां मोरटाविदार्योश्च क्षीरेणैव॥ ३९॥

चिरौंजी, मुहार और श्वेत विदारी—इसी प्रकार चिरौंजी, मुहार (मुरहरी) और श्वेत विदारी—इनका चूर्ण दूध के साथ पीने से बलवीर्य की वृद्धि होती है॥ ३९॥

शृङ्गाटककसेरुकामधूलिकानि क्षीरकाकोल्या सह पिष्टानि सशर्करेण पयसा घृतेन मन्दाग्निनोत्करिकां पक्त्वा यावदर्थं भक्षित्वानन्ताः स्त्रियो गच्छतीत्याचार्याः प्रचक्षते॥ ४०॥

क्षीरकाकोली, सिंघाड़ा, कसेरू और महुआ—सिंघाड़ा, कसेरू और महुआ के फूलों को क्षीरकाकोली के कन्द के साथ पीसकर शक्करमिश्रित दूध के साथ मिलाकर, घी में मन्द मन्द अग्नि पर हलुआ बनाकर नित्य खाने से इतना बलवीर्य बढ़ता है कि पुरुष अनन्त रमणियों के साथ रमण कर सकता है—ऐसा आचार्य कहते हैं॥ ४०॥

माषकमलिनीं पयसा धौतामुष्णेन घृतेन मृदूकृत्योद्धृतां वृद्धवत्सायाः गोः पयःसिद्धं पायसं मधुसर्पिर्भ्यामशित्वाऽनन्ताः स्त्रियो गच्छतीति आचार्याः प्रचक्षते॥ ४१॥

उड़द की दाल की खीर—उड़द की धुली दाल को रात में दूध में भिगो दे और प्रातः पीसकर घी में लाल होने तक भूने। फिर बाखरी गाय या बकरी का दूध डालकर खीर बना लें। विषम मात्रा में घी और शहद डालकर खाने से पुरुष में अनन्त स्त्रियों के साथ सम्भोग करने की शक्ति आ जाती है—ऐसा आचार्य कहते हैं॥ ४१॥

विदारी स्वयंगुप्ता शर्करा मधुसर्पिभ्यां गोधूमचूर्णेन पोलिकां कृत्वा यावदर्थं भक्षित्वानन्ताः स्त्रियो गच्छतीत्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ४२ ॥

विदारीकन्द और क्रौंच की पूड़ियाँ—विदारीकन्द और क्रौंच के बीजों के चूर्ण में गेहूँ का आटा, शहद और शक्कर मिलाकर घी में पूड़ियाँ सेंक लें। इन्हें नित्य खाने से पुरुष में इतना बलवीर्य बढ़ता है कि वह अनन्त स्त्रियों के साथ सम्भोग कर सकता है—ऐसा आचार्य कहते हैं ॥ ४२ ॥

चटकाण्डरसभावितैस्तण्डुलैः पायसं सिद्धं मधुसर्पिभ्यां प्लावितं यावदर्थमिति समानं पूर्वेण ॥ ४३ ॥

गौरैया के अण्डों से भावित खीर—चिड़िया के अण्डों के रस की भावना देकर तैयार किये गये चावलों की खीर बनाये। उसे विषम मात्रा में घी और शहद डालकर खाने से पुरुष में अनन्त स्त्रियों के साथ सम्भोग करने की शक्ति आ जाती है ॥ ४३ ॥

चटकाण्डरसभावितानपगतत्वचस्तिलान् शृङ्गाटककसेरुकस्वयंगुप्ता-फलानि गोधूममाषचूर्णं सशर्करेण पयसा सर्पिषा च पक्वं संयावं यावदर्थं प्राशित्वा—इति समानं पूर्वेण ॥ ४४ ॥

उक्त रीति से भावित तिलों की खीर—काले तिलों को भिगोकर उनका छिलका अलग कर लिया जाये और फिर गौरैया के अण्डों के रस की भावना दे। तत्पश्चात् सिंघाड़ा, कसेरू और क्रौंच के बीजों का चूर्ण तैयार करे। गेहूँ का आटा और उड़द की दाल की पिट्ठी मिलाकर तथा शक्कर, घी से जल के स्थान पर दूध डालकर लप्सी तैयार कर ले। इसे नित्य खाने से रतिमल्लता बढ़ती है ॥ ४४ ॥

सर्पिणो मधुनः शर्कराया मधुकस्य च द्वे द्वे पले मधुरसायाः कर्षः प्रस्थं पयस इति षडङ्गममृतं मेध्यं वृष्यमायुष्यं युक्तरसमित्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ४५ ॥

मुलहठी आदि का षडङ्ग अमृत—घी, शहद, शक्कर और मुलहठी दो-दो पल, एक कर्ष मधुरसा और एक प्रस्थ दूध—यह छह अंगों वाला अमृतमेध्य है, वाजीकरण है, आयुर्वर्धक हैं। इसे युक्तरस कहते हैं ॥ ४५ ॥

शतावरीश्वदंष्ट्रागुडकषाये पिप्पलीमधुकल्के गोक्षीरच्छागघृते पक्वे तस्य पुष्यारम्भेणान्वहं प्राशनं मेध्यं वृष्यमायुष्यं युक्तरसमित्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ४६ ॥

शतावरी और गोखरू—शतावरी और पहाड़ी गोखरू—इन दोनों वस्तुओं के कषाय में पीपल और शहद का कल्क मिलाकर गाय के घी में भूनकर दूध में पका लें। इसे पुष्य नक्षत्र में नित्य चाटना बलबुद्धिवर्धक है, वाजीकारक है, आयुर्वर्धक है। इसे आचार्य 'युक्तरस' कहते हैं ॥ ४६ ॥

शतावर्याः श्वदंष्ट्रायाः श्रीपर्णीफलानां च क्षुण्णानां चतुर्गुणितजलेन पाक आप्रकृत्यवस्थानात् तस्य पुष्यारम्भेण प्रातः प्राशनं मेध्यं वृष्यमायुष्यं युक्तरस-मित्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ४७ ॥

शतावरी, गोखरू और श्रीपर्णी—शतावरी, पहाड़ी गोखरू और श्रीपर्णी (कसेरू) के

फूल कूटकर चार गुने जल में अग्नि पर चढ़ा दें। जब पानी जल जाये तो उतार लें। इसे पुष्य नक्षत्र से प्रातःकाल चाटना प्रारम्भ कर दे। यह बलबुद्धिवर्धक, वाजीकरण और आयुर्वर्धक है। इसे आचार्य युक्तरस कहते हैं ॥ ४७ ॥

श्वदंष्ट्राचूर्णसमन्वितं तत्सममेव यवचूर्णं प्रातरुत्थाय द्विपलकमनुदिनं प्राश्नीयान्मेध्यं वृष्यं युक्तरसमित्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ४८ ॥

गोखरू और जौ—पहाड़ी गोखरू का चूर्ण और जौ का आटा सममात्रा में लेकर प्रातः दो पल प्रतिदिन खाये। यह बलबुद्धिवर्धक, वाजीकरण और आयुर्वर्धक है। इसे आचार्यों ने 'युक्तरस' कहा है ॥ ४८ ॥

आयुर्वेदाच्च वेदाच्च विद्यातन्त्रेभ्य एव च।
आप्तेभ्यश्चावबोद्धव्या योगा ये प्रीतिकारकाः ॥ ४९ ॥

उपसंहार—पूर्वोक्त वाजीकारक योगों के अतिरिक्त अन्य भी रागरतिवर्धक योग हैं। उन्हें आयुर्वेद, वेद, विद्यातन्त्र और विज्ञ पुरुषों से जान लेना चाहिये ॥ ४९ ॥

न प्रयुञ्जीत सन्दिग्धान्न शरीरात्ययावहान्।
न जीवघातसम्बद्धान्नाशुचिद्रव्यसंयुतान् ॥ ५० ॥

अग्राह्य योग—जो योग सन्दिग्ध हों, शरीर को हानि पहुँचाने वाले हों, जीवों को मारकर बनाये जाने वाले हों और जिनमें अपवित्र वस्तुओं का मिश्रण न हो, ऐसे योगों का प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ५० ॥

तपोयुक्तः प्रयुञ्जीत शिष्टैरनुगतान् विधीन्।
ब्राह्मणैश्च सुहृद्भिश्च मङ्गलैरभिनन्दितान् ॥ ५१ ॥

ग्राह्य योग—उन शुद्ध और पवित्र योगों का ही प्रयोग करना चाहिये जिनकी सज्जन निन्दा न करें तथा विद्वान् ब्राह्मण और मित्र भी प्रशंसा ही करे ॥ ५१ ॥

शुभगङ्करण, वशीकरण एवं वृष्ययोग बोधक प्रथम अध्याय सम्पन्न ॥

●

द्वितीय अध्याय

नष्टरागप्रत्यानयनप्रकरण

चण्डवेगां रञ्जयितुमशक्नुवन् योगानाचरेत् ॥ १ ॥

चण्डवेगा का प्रसादन—चण्डवेगा स्त्री को प्रसन्न और अनुरक्त करने में असमर्थ पुरुष को योगों का प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

रतस्योपक्रमे सम्बाधस्य करेणोपदर्मनं तस्या रसप्राप्तिकाले च रतयोजनमिति रागप्रत्यानयनम् ॥ २ ॥

नष्ट राग की पुनः प्राप्ति का उपाय—स्त्री से पूर्व स्खलित होने वाला पुरुष, स्त्री के

मदनमन्दिर में अंगुली डालकर उसे भली भाँति रससिक्त कर ले, तत्पश्चात् समागम प्रारम्भ करे। इससे वह स्त्री को पहले स्खलित करके उसका नष्ट राग पुनः प्राप्त कर सकता है॥ २॥

औपरिष्टकं मन्दवेगस्य गतवयसो व्यायतस्य रतश्रान्तस्य च रागप्रत्यानयनम्॥ ३॥

जो पुरुष मन्दवेग है, जिसका यौवन ढल गया हो, जो बहुत मोटा हो और जो समागम में थक गया हो, उसे चाहिये कि साम्प्रयोगिक अधिकरण में कही गयी औपरिष्टक (मुखमैथुन) विधि से अपने में उत्तेजना प्राप्त कर ले॥ ३॥

अपद्रव्याणि वा योजयेत्॥ ४॥

अपद्रव्यों का प्रयोग—अथवा अपद्रव्यों का प्रयोग करे अर्थात् कृत्रिम साधनों से काम चलाये॥ ४॥

तानि सुवर्णरजतताम्रकालायसगजदन्तगवलद्रव्यमयानि॥ ५॥

अपद्रव्य—इस प्रकार के कृत्रिम साधन सोना, चाँदी, ताबाँ, लोहा, हाथीदाँत और सीग से बनाये जाते हैं॥ ५॥

त्रापुषाणि सैसकानि च मृदूनि शीतवीर्याणि कर्मणि च धृष्णूनि भवन्तीति बाभ्रवीया योगाः॥ ६॥

क्योंकि राँगे और सीसे से बने कृत्रिम साधन कोमल, शीतल और घर्षणशील होते हैं—ऐसा आचार्य बाभ्रव्य के शिष्यों का मत है॥ ६॥

दारुमयानि साम्यतश्चेति वात्स्यायनः॥ ७॥

यदि अनुकूल पड़े तो लकड़ी का कृत्रिम साधन भी प्रयोग किया जा सकता है—यह आचार्य वात्स्यायन का मत है॥ ७॥

लिङ्गप्रमाणान्तरं बिन्दुभिः कर्कशपर्यन्तं बहुलं स्यात्॥ ८॥

कृत्रिम साधन पुरुष के शिश्न की माप का ही होना चाहिये और इसके अग्रभाग पर बहुत से विन्दु होने चाहिये जिससे स्त्री की खाज मिट सके॥ ८॥

एते एव द्वे सङ्घाटी॥ ९॥

कृत्रिम साधन में कम से कम दो जोड़ या उतार चढ़ाव अवश्य होने चाहिये॥ ९॥

त्रिप्रभृति यावत्प्रमाणं वा चूडकः॥ १०॥

चूड़क—शश से लेकर अश्व तक पुरुष के शिश्न के जो प्रमाण बताये गये हैं, उतने प्रमाण वाला कृत्रिम साधन चूड़क कहलाता है॥ १०॥

एकामेव लतिकां प्रमाणवशेन वेष्टयेदित्येकचूडकः॥ ११॥

एकचूड़क—जो अपने प्रमाण से एक ही लता को लपेट सके, ऐसा कृत्रिम साधन एकचूड़क कहलाता है॥ ११॥

उभयतोमुखच्छिद्रः स्थूलकर्कशवृषणगुटिकायुक्तः प्रमाणवशयोगी कट्यां बद्धः कञ्चुको जालकं वा॥ १२॥

कञ्चुक या जालक—जिसके दोनों ओर छेद किये गये हों, जो स्थूल और कर्कश हो,

जिसमें अण्डकोश भी लगाये गये हों, जो शिश्न के समान आाकार का हो और जिसे कमर में पहना जा सके—ऐसा कृत्रिम साधन कञ्चुक या जालक कहलाता है॥ १२॥

तदभावेऽलाबूनालकं वेणुश्च तैलकषायैः सुभावितः सूत्रेण कट्यां बद्धः श्लक्ष्णा काष्ठमाला वा ग्रथिता बहुभिरामलकास्थिभिः संयुक्तेत्यपविद्ध-योगाः॥ १३॥

यदि इस प्रकार के कृत्रिम साधन सम्भव न हों तो अपने शिश्न के प्रमाण के अनुरूप तूम्बी या बाँस का साधन (लिङ्ग) बनाकर तेल और उबटन से चिकना करके कमर में बाँध ले अथवा आँवले के समान चिकनी काष्ठ गोलियों की माला शिश्न में पहन लेनी चाहिये—ये **अपविद्ध (त्यक्त) योग** हैं॥ १३॥

न त्वविद्धस्य कस्यचिद्व्यवहृतिरस्तीति॥ १४॥

क्योंकि इन कृत्रिम साधनों का सम्बन्ध समागम से नहीं है। ये तो केवल असमर्थों के योग हैं॥ १४॥

दाक्षिणात्यानां लिङ्गस्य कर्णयोरिव व्यधनं बालस्य॥ १५॥

छेदनकर्म—दक्षिण भारत में बच्चों के कर्णछेदन के समान शिश्न का छेदन भी होता है॥ १५॥

युवा तु शस्त्रेण च्छेदयित्वा यावद्रुधिरस्यागमनं तावदुदके तिष्ठेत्॥ १६॥

छेदनविधि—यदि युवा पुरुष अपना छेदन कराये तो सुपारी की चमड़ी सरकाकर, नसों को बचाकर, तीक्ष्ण शस्त्र से कुशलतापूर्वक तिरछा छेदे और जब तक रक्त बहता रहे तब तक उसे पानी में डुबोये रखे॥ १६॥

वैशद्यार्थं च तस्यां रात्रौ निर्बन्धाद्व्यवायः॥ १७॥

और उस छिद्र को बड़ा करने के लिये, उसी रात को कई बार स्त्री के साथ समागम करे॥ १७॥

ततः कषायैरेकदिनान्तरितं शोधनम्॥ १८॥

फिर पञ्चकषायों (अमलतास, ब्राह्मी, कनेर, मालती और शङ्खपुष्पी) से एक एक दिन के अन्तर से धोना चाहिये॥ १८॥

वेतसकुटजशङ्कुभिः क्रमेण वर्धमानस्य वर्धनैर्बन्धनम्॥ १९॥

छिद्रवर्धन—बेंत और कुटज के शंकुओं (कीलों) से उस छिद्र को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये॥ १९॥

यष्टीमधुकेन मधुयुक्तेन शोधनम्॥ २०॥

व्रणशोधन—मुलहठी और शहद मिलाकर घाव में लगाना चाहिये॥ २०॥

ततः सीसकपत्त्रकर्णिकया वर्धयेत्॥ २१॥

तत्पश्चात् शीशम के पत्तों की कर्णिका से इसे बढ़ाना चाहिये॥ २१॥

म्रक्षयेद्भल्लातकतैलेनेति व्यधनयोगाः॥ २२॥

इसके बाद भिलावे के तेल से इसे भिगोते रहना चाहिये। व्यधनयोग समाप्त हुए॥ २२॥

तस्मिन्ननेकाकृतिविकल्पान्यपद्रव्याणि योजयेत्॥ २३॥

तत्पश्चात् उसमें अपद्रव्यों को पहना देना चाहिये॥ २३॥

वृत्तमेकतो वृत्तमुदूखलकं कुसुमकं कण्टकितं कङ्कास्थि गजकर-कमष्टमण्डलकं भ्रमरकं शृङ्गाटकमन्यानि वोपायतः कर्मतश्च बहुकर्मसहता चैषां मृदुकर्कशता यथासात्म्यमिति नष्टरागप्रत्यानयनं द्विषष्टितमं प्रकरणम्॥ २४॥

अपद्रव्य का प्रयोग—जिस प्रकार का अपद्रव्य स्त्री के अनुकूल पड़े, उसके साथ समागम में वैसा ही अपद्रव्य प्रयुक्त करना चाहिये। गोल, एक ओर से गोल, ऊखल (ओखली) जैसा गोल, कमल जैसा, करेले जैसा काँटेदार, कंक की हड्डी जैसा, हाथीदांत के समान, अष्टकोण, चक्करदार, सिंघाड़े की आकृति का, कोमल या कठोर, जैसा स्त्री चाहे या जैसा उसके अनुकूल पड़े, वैसा ही बनाया जा सकता है। **'नष्टप्रेम के पुनः प्राप्ति की विधि' नामक बासठवाँ प्रकरण पूर्ण** हुआ॥ २४॥

एवं वृक्षजानां जन्तूनां शूकैरुपहितं लिङ्गं दशरात्रं तैलेन मृदितं पुनरुपवृंहितं पुनः प्रमृदितमिति जातशोफं खट्वायामधोमुखस्तदन्तरे लम्बयेत्॥ २५॥

शिश्नवर्धक उपाय—इसी प्रकार वृक्ष में उत्पन्न होने वाले रोमदार जन्तुओं (कन्दलिका) के रोमों का शिश्न पर लेप करे और तेल मले। यह क्रिया दस रात तक निरन्तर करने पर जब शिश्न में सूजन आ जाये तो चारपाई के छेद से उसे नीचे लटका दे और फिर औंधे मुँह सो जाये॥ २५॥

तत्र शीतैः कषायैः कृतवेदनानिग्रहं सोपक्रमेण निष्पादयेत्॥ २६॥

तत्पश्चात् शीतल लेप लगाकर इसकी वेदना मिटानी चाहिये॥ २६॥

स यावज्जीवं शूकजो नाम शोफो विटानाम्॥ २७॥

इस प्रकार रसलम्पटों के शिश्न की मोटाई आजीवन बनी रहती है॥ २७॥

अश्वगन्धाशबरकन्दजलशूकबृहतीफलमाहिषनवनीतहस्तिकर्णवज्रवल्ली - रसैरेकैकेन परिमर्दनं मासिकं वर्धनम्॥ २८॥

अश्वगन्धा, बड़े लोध की जड़, जलशंकु, बड़ी कटेरी के पके फल, भैंस का मक्खन, ढाक के पत्ते और वज्रवल्ली (हड़जोड़) का रस—इनमें से किसी एक को लगाने से शिश्न एक मास तक मोटा बना रहता है॥ २८॥

एतैरेव कषायैः पक्वेन तैलेन परिमर्दनं षाण्मास्यम्॥ २९॥

अश्वगन्धा आदि के कल्क द्वारा सिद्ध किये गये तेल की मालिश करने से शिश्नवृद्धि छह मास तक बनी रहती है॥ २९॥

दाडिमत्रापुषबीजानि बालुका बृहतीफलरसश्चेति मृद्वग्निना पक्वेन तैलेन परिमर्दनं परिषेको वा॥ ३०॥

अनार, बालमखीरा के बीज, एलुवा और कटेरी के फलों के रस—इन सबको मन्द मन्द अग्नि पर बनाये गये तैल की मालिश करने से या इनकी पोटली बनाकर सेंकने से छह मास तक शिश्नवृद्धि रहती है॥ ३०॥

तॉंस्ताँश्च योगानाप्तेभ्यो बुध्येतेति वर्धनयोगा: ॥ ३१ ॥

अन्य भी वर्धनयोग हैं। उन्हें आप्त पुरुषों से जान लें। शिश्नवृद्धियोग पूर्ण हुए॥ ३१ ॥

अथ स्नुहीकण्टकचूर्णैः पुनर्नवावानरपुरीषलाङ्गलिकामूलमिश्रैर्यामवकिरेत् सा नान्यं कामयेत॥ ३२ ॥

चित्रयोगप्रकरण : कन्यामोहन—थूह के काँटों का चूर्ण, पुनर्नवा, लाल मुख वाले बन्दर का विष्ठा और इन्द्रायन (कलिहारी) की जड़—इन सबको सममात्रा में पीसकर बनाया गया चूर्ण जिसके सिर पर डाल दिया जाये वह कन्या किसी अन्य को नहीं चाहती॥ ३२ ॥

तथा सोमलताऽवल्गुजाभृङ्गलोहोपजिह्विकाचूर्णैर्व्याधिघातकजम्बूफलरस-निर्यासेन घनीकृतेन च लिप्तसम्बाधां गच्छतो रागो नश्यति॥ ३३ ॥

रागनाशनलेप—इसी प्रकार सोमलता, बाकुची के बीच, भाँगरा, लौहभस्म और उपजिह्विका का चूर्ण तथा अमिलतास और जामुन के फल की गुठली को पीसकर मदनमन्दिर में लेप करने से जो भी पुरुष उस स्त्री के साथ सम्भोग करता है उसका राग नष्ट हो जाता है॥ ३३ ॥

गोपालिकाबहुपादिकाजिह्विकाचूर्णैर्माहिषतक्रयुक्तैः स्नातां गच्छतो रागो नश्यति॥ ३४ ॥

गोपालिका, बहुपादिका (पोदीना) और जिह्विका (गोजिया) का चूर्ण भैंस के मट्ठे में मिलाकर स्नान करने वाली स्त्री के साथ जो भी पुरुष सम्भोग करता है उसका राग नष्ट हो जाता है॥ ३४ ॥

नीपाम्रातकजम्बूकुसुमयुक्तमनुलेपनं दौर्भाग्यकरं स्रजश्च॥ ३५ ॥

दौर्भाग्यकरण—कदम्ब, आँवड़ा और जामुन के फूलों को घिसकर चन्दन लगाना या इनकी माला पहनना दौर्भाग्यवर्धक होता है॥ ३५ ॥

कोकिलाक्षप्रलेपो हस्तिन्याः संहतमेकरात्रे करोति॥ ३६ ॥

योनि-संकोचन—तालमखाने को पानी में पीसकर लेप करने से हस्तिनी नायिका की योनि भी एक ही रात में सिकुड़ जाती है॥ ३६ ॥

पद्मोत्पलकदम्बसर्जकसुगन्धचूर्णानि मधुना पिष्टानि लेपो मृग्या विशाली-करणम्॥ ३७ ॥

योनि-विस्तार—लाल कमल, नीलकमल, कदम्ब, विजयसार और नेत्रवाला—इनके चूर्ण को शहद के साथ घोलकर लेप करने से मृगी नायिका की योनि भी गहरी और विशाल हो जाती है॥ ३७ ॥

स्नुहीसोमार्कक्षीरैरवल्गुजाफलैर्भावितान्यामलकानि केशानां श्वेती-करणम्॥ ३८ ॥

बाल सफेद करना—थूहर, पुतली और आक के पत्तों को जलाकर राख बना ले और फिर उसमें बाकुची के बीज और आँवले की भावना देकर बालों में लगाने से काले बाल भी सफेद हो जाते हैं॥ ३८ ॥

मदयन्तिकाकुटजकाञ्जनिकागिरिकर्णिकाश्लक्ष्णपर्णीमूलैः स्नानं केशानां प्रत्यानयनम्॥ ३९॥

बाल काले करना—मेंहदी, कुटज, अंजनिका, पहाड़ी चमेली और माषपर्णी की जड़—इन पाँचों का चूर्ण सिर पर मलकर कुछ समय बाद स्नान करने से सफेद बाल भी काले हो जाते हैं॥ ३९॥

एतैरेव सुपक्वेन तैलेनाभ्यङ्गात् कृष्णीकरणात् क्रमेणास्य प्रत्यानयनम्॥ ४०॥

इन पदार्थों से बने तैल से भी सफेद बाल काले हो जाते हैं॥ ४०॥

श्वेताश्वस्य मुष्कस्वेदैः सप्तकृत्वो भावितेनालक्तकेन रक्तोऽधरः श्वेतो भवति॥ ४१॥

ओष्ठ सफेद करना—पूर्वोक्त वस्तुओं में सफेद घोड़ों के अण्डकोश के पसीने की सात भावनाएँ देने पर जो योग तैयार होता है वह लाल होठों को भी सफेद बना देता है॥ ४१॥

मदयन्तिकादीन्येव प्रत्यानयनम्॥ ४२॥

होंठ लाल करना—मेंहदी आदि को पीसकर लगाने से सफेद होंठ पुनः लाल हो जाते हैं॥ ४२॥

बहुपादिकाकुष्ठतगरतालीसदेवदारुवज्रकन्दकैरुपलिप्तं वंशं वादयतो या शब्दं शृणोति सा वश्या भवति॥ ४३॥

मोहक वंशी—बहुपादिका (पोदीना), कुष्ठ, तगर, तालीशपत्र, देवदारू और वज्रकन्द—इनका लेप करके वंशी बजाने वाले की ध्वनि जो भी स्त्री सुनेगी वही वशीभूत हो जायेगी॥ ४३॥

धत्तूरफलयुक्तोऽभ्यवहार उन्मादकः॥ ४४॥

पागल बनाना—खाद्य या पेय पदार्थों में धतूरे के बीज मिलाकर खिला पिला देने से व्यक्ति पागल हो जाता है॥ ४४॥

गुडो जीर्णितश्च प्रत्यानयनम्॥ ४५॥

उसको स्वस्थ करना—पुराना गुड़ खिला देने से धतूरे का विष उतर जाता है॥ ४५॥

हरितालमनःशिलाभक्षिणो मयूरस्य पुरीषेण लिप्तहस्तो यद् द्रव्यं स्पृशति तन्न दृश्यते॥ ४६॥

अदृश्य करना—हरताल और मैनसिल खाने वाले मोर की विष्ठा को हाथ में लगाकर जिस वस्तु को छू दोगे, वही अदृश्य हो जायेगी॥ ४६॥

अङ्गारतृणभस्मना तैलेन विमिश्रमुदकं क्षीरवर्णं भवति॥ ४७॥

पानी को दूध के समान सफेद करना—खस की भस्म को तैल में मिलाकर पानी में डाल देने से पानी दूध के समान सफेद हो जाता है॥ ४७॥

हरीतकाम्रातकयोः स्रवणप्रियङ्गुकाभिश्च पिष्टाभिर्लिप्तानि लोहभाण्डानि ताम्रीभवन्ति॥ ४८॥

लोहे को ताँबे के समान करना—हरड़ और आँवले को मालकाँगनी के साथ पीसकर लोहे के बर्तन पर लेप करने से वह ताँबे के रंग का हो जाता है ॥ ४८ ॥

श्रवणप्रियङ्गुकातैलेन दुकूलसर्पनिर्मोकेण वर्त्त्या दीपं प्रज्वाल्य पार्श्वे दीर्घीकृतानि काष्ठानि सर्पवद् दृश्यन्ते ॥ ४९ ॥

लकड़ियों का सर्प दिखना—सर्प की केंचुली और कपड़े को लपेटकर, बत्ती बनाकर, मालकाँगुनी के तैल में भिगोकर दीपक की तरह जलाये तो आस पास में पड़ी लकड़ियाँ उसके प्रकाश में सर्पों के समान दीखेंगीं ॥ ४९ ॥

श्वेतायाः श्वेतवत्साया गोः क्षीरस्य पानं यशस्यमायुष्यम् ॥ ५० ॥

यश और आयुवर्धक दूध—सफेद बछड़े वाली सफेद गाय का दूध पीने से यश और आयु की वृद्धि होती है ॥ ५० ॥

ब्राह्मणानां प्रशस्तानामाशिषः ॥ ५१ ॥

ब्राह्मणों का आशीर्वाद सदैव हितकर—प्रशस्त ब्राह्मणों का आशीर्वाद भी यश और आयु को बढ़ाता है ॥ ५१ ॥

पूर्वशास्त्राणि सन्दृश्य प्रयोगाननुसृत्य च।
कामसूत्रमिदं यत्नात् संक्षेपेण निवेदितम् ॥ ५२ ॥

उपसंहार—पूर्वाचार्यों के शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन कर और उनके प्रयोगों का अनुसरण कर प्रयत्नपूर्वक संक्षेप में इस कामसूत्र को कहा गया है ॥ ५२ ॥

धर्ममर्थं च कामं च प्रत्ययं लोकमेव च।
पश्यत्येतस्य तत्त्वज्ञो न च रागात् प्रवर्तते ॥ ५३ ॥

शास्त्र का उद्देश्य रागोद्दीपन नहीं—इस कामशास्त्र के तत्त्व को जानने वाला व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम, विश्वास और लोकाचार को देखकर ही प्रवृत्त होता है, राग या कामुकतावश नहीं ॥ ५३ ॥

अधिकारवशादुक्ता ये चित्रा रागवर्द्धनाः।
तदनन्तरमत्रैव ते यत्नाद्विनिवारिताः ॥ ५४ ॥

अशिष्टसम्मत योगों का प्रयोग उचित नहीं—इस शास्त्र में प्रकरणवश राग को बढ़ाने वाले विचित्र योग कहे गये हैं, लेकिन विवेचन के पश्चात् यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कौन कौन से प्रयोग किये जायें और कौन से नहीं ॥ ५४ ॥

न शास्त्रमस्तीत्येतेन प्रयोगो हि समीक्ष्यते।
शास्त्रार्थान् व्यापिनो विद्यात् प्रयोगाँस्त्वैकदेशिकान् ॥ ५५ ॥

ये बातें शास्त्र में कही गयी हैं, इसीलिये उन्हें प्रयोग नहीं कर बैठना चाहिये, क्योंकि शास्त्र का विषय तो सार्वभौम होता है, लेकिन उसके प्रयोग एकदेशीय ही होते हैं ॥ ५५ ॥

बाभ्रवीयाँश्च सूत्रार्थानागमय्य विमृश्य च।
वात्स्यायनश्चकारेदं कामसूत्रं यथाविधि ॥ ५६ ॥

शास्त्रसम्मत ग्रन्थ—बाभ्रवीय सूत्रों को समझकर और कामशास्त्र का गुरुओं से अध्ययन कर एवं स्वबुद्धि से चिन्तन मनन करके ही आचार्य वात्स्यायन ने इस 'कामसूत्र' को शास्त्रीय विधि से लिखा है॥ ५६॥

तदेतद् ब्रह्मचर्येण परेण च समाधिना।
विहितं लोकयात्रार्थं न रागार्थोऽस्य संविधिः॥ ५७॥

निर्माण की अवस्था और प्रयोजन—इस 'कामसूत्र' की रचना अमोघ ब्रह्मचर्य और निर्विकल्प समाधि द्वारा महर्षि वात्स्यायन ने लोकव्यवहार को सुचारु रूप से चलाने के लिये की है, इसका विधान राग के निमित्त नहीं किया गया॥ ५७॥

रक्षन् धर्मार्थकामानां स्थितिं स्वां लोकवर्तिनीम्।
अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रियः॥ ५८॥

कामतत्त्वज्ञ कामुक नहीं होता—इस शास्त्र के तत्त्व को समझने वाला पुरुष धर्म, अर्थ एवं काम तथा लोक में अपनी स्थिति की रक्षा करता हुआ निश्चय ही जितेन्द्रिय हो जाता है॥ ५८॥

तदेतत्कुशलो विद्वान् धर्मार्थाववलोकयन्।
नातिरागात्मकः कामी प्रयुञ्जानः प्रसिध्यति॥ ५९॥

सिद्धि के लिये रागात्मकता का अभाव आवश्यक—जो कामी पुरुष रागात्मक भाव से इस शास्त्र का अध्ययन एवं प्रयोग करता है, उसे कदापि सिद्धि नहीं मिलती; किन्तु जो विवेकवान् पुरुष धर्म और अर्थ को दृष्टि में रखकर इसका प्रयोग करता है उसे पूर्ण सिद्धि मिलती है॥ ५९॥

नष्टरागप्रत्यानयन से चित्रयोग तक
व्याख्यानात्मक द्वितीय अध्याय पूर्ण॥

॥ वात्स्यायनकृत कामसूत्र पूर्ण॥

साम्प्रयोगिक आसनों के
कतिपय चित्र

[इस ग्रन्थ के द्वितीय साम्प्रयोगिक अधिकरण की षष्ठ, अष्टम एवं नवम अध्यायों में नायक-नायिका द्वारा साम्प्रयोगिकावस्था (सम्भोगावस्था) में प्रयुक्त किये जाने वाले सभी आसनों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है।

पाठकों को इन का सरलतापूर्वक ज्ञान हो जाय—इस आशा से यहाँ कुछ आसनों के चित्र दिये जा रहे हैं।

प्रत्येक चित्र पर आसन का नाम तथा इस ग्रन्थ की पृष्ठ-संख्या दे दी गयी है। तत्सम्बद्ध विस्तृत विवरण उस उस पृष्ठ पर देखना चाहिये।]

मृगी आसन
विवरण पृष्ठ ५२

हस्तिनी आसन
विवरण पृष्ठ ५२

इन्द्राणी आसन
विवरण पृष्ठ ५३

वाडवक आसन
विवरण पृष्ठ ५३, ५४
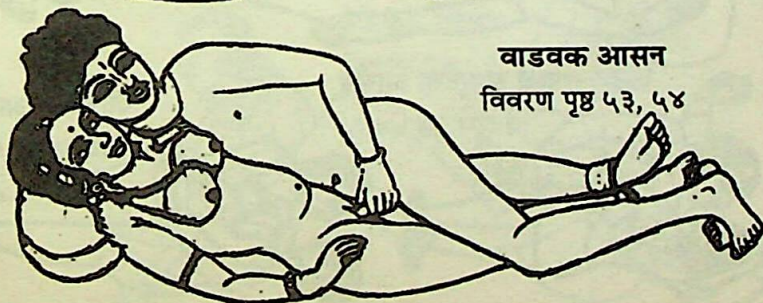
उत्फुल्लक आसन
विवरण पृष्ठ ५३
उत्तानसम्पुटक आसन
विवरण पृष्ठ ५४
उत्तानसम्पुटक आसन
विवरण पृष्ठ ५४
पार्श्व सम्पुटक आसन
विवरण पृष्ठ ५४
पीडितक आसन
विवरण पृष्ठ ५४
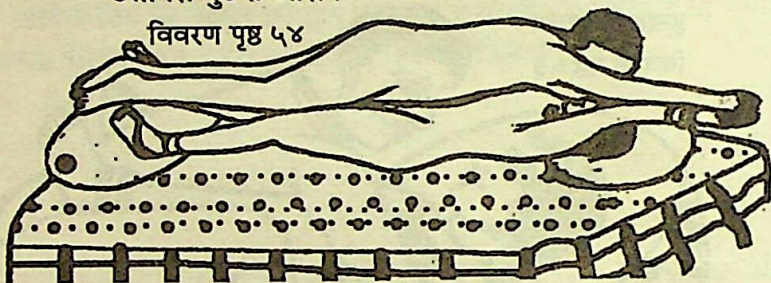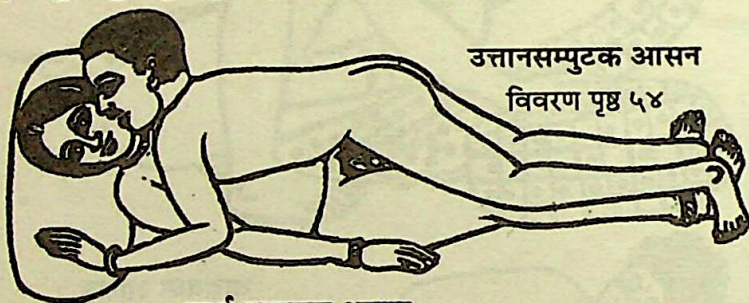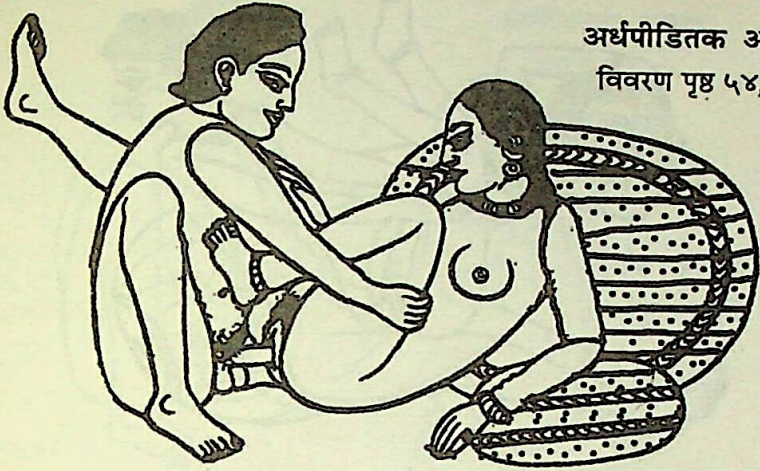
अर्धपीडितक आसन
विवरण पृष्ठ ५४,५५
वेष्टितक आसन
विवरण पृष्ठ ५४
वेष्टितक आसन
विवरण पृष्ठ ५४
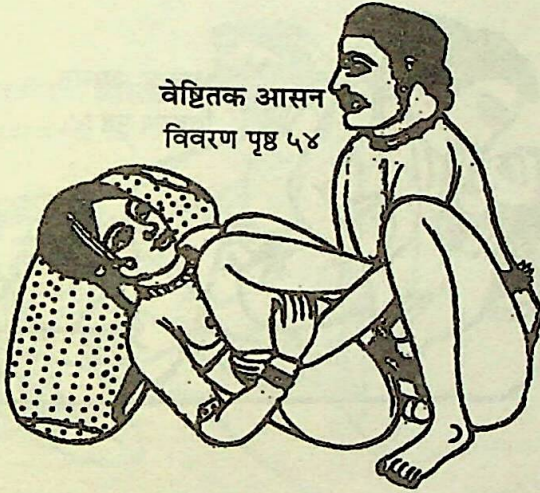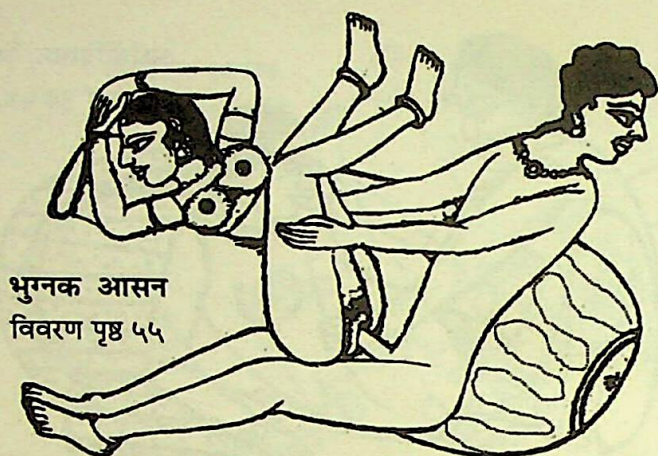
भुग्नक आसन
विवरण पृष्ठ ५५
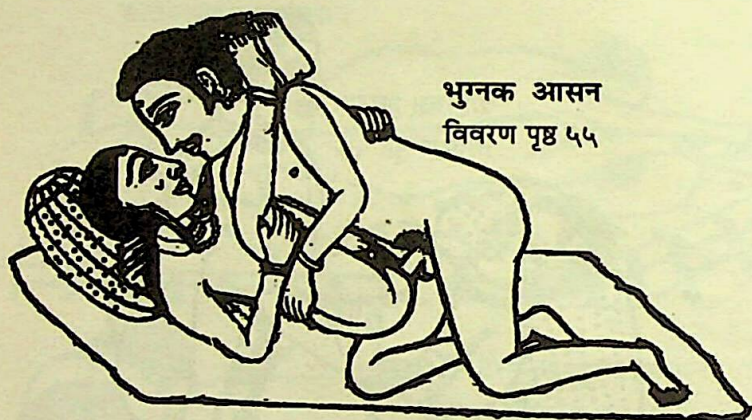
भुग्नक आसन
विवरण पृष्ठ ५५
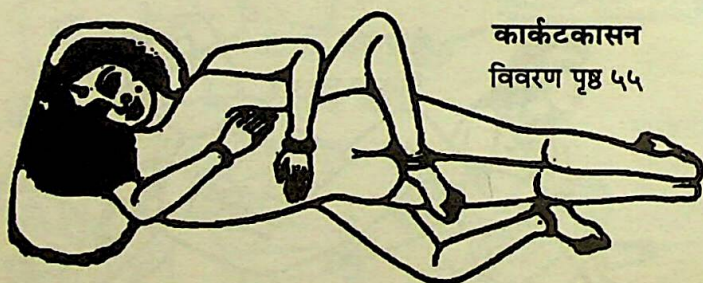
कार्कटकासन
विवरण पृष्ठ ५५
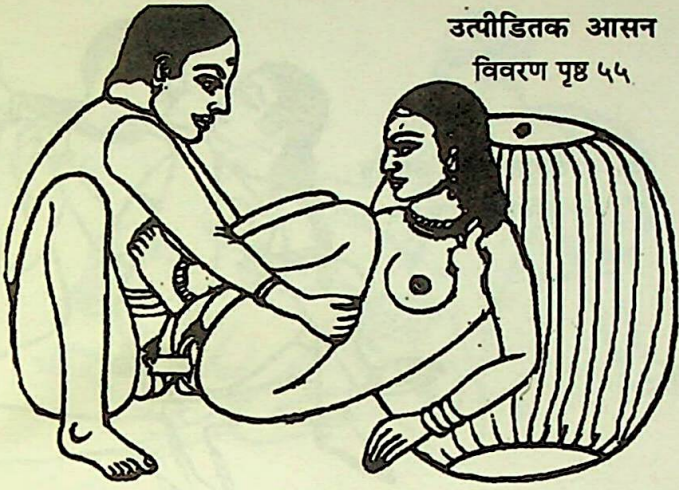
उत्पीडितक आसन
विवरण पृष्ठ ५५
वेणुदारितक आसन
विवरण पृष्ठ ५५
भुग्नक आसन
विवरण पृष्ठ ५५

वेणुदारितक आसन
विवरण पृष्ठ ५५
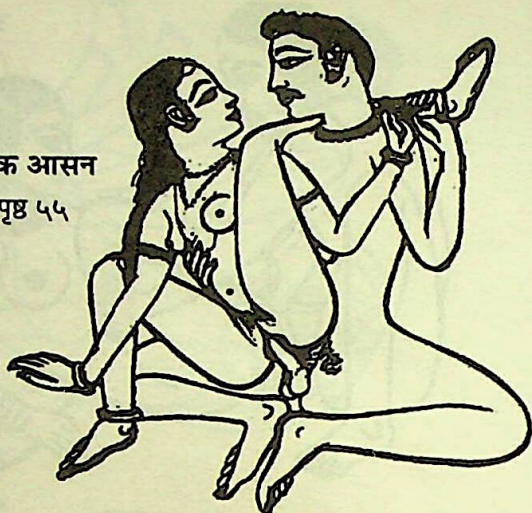
पद्मासन
विवरण पृष्ठ ५५
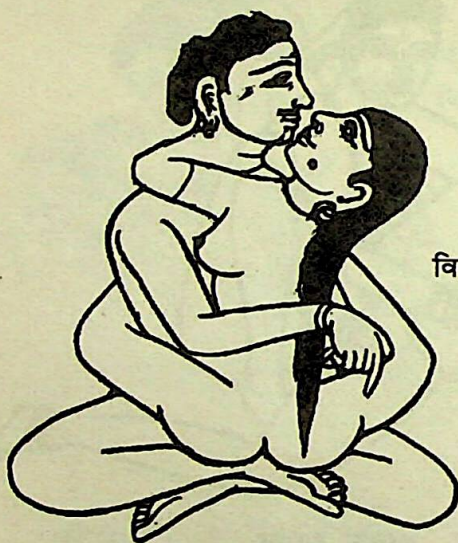
परावृत्तक आसन
विवरण पृष्ठ ५५
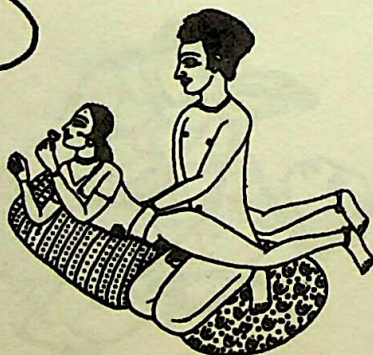
परावृत्तक आसन
विवरण पृष्ठ ५५
जलसम्भोगासन
विवरण पृष्ठ ५६
स्थितरत आसन
विवरण पृष्ठ ५६
धेनुक आसन
विवरण पृष्ठ ५६
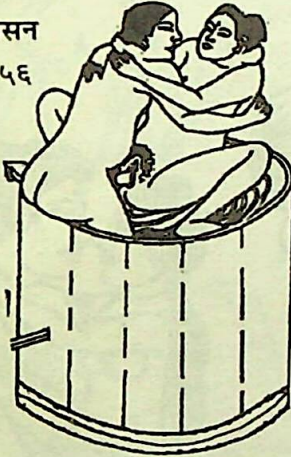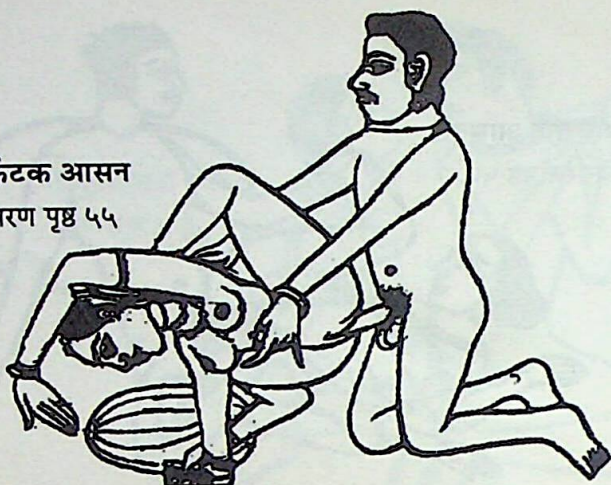
कार्कटक आसन
विवरण पृष्ठ ५५
परावृत्तक आसन
विवरण पृष्ठ ५५
धेनुक आसन
विवरण पृष्ठ ५६
अवलम्बितक आसन
विवरण पृष्ठ ५६
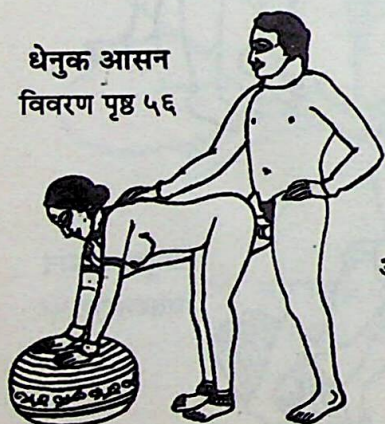
शौन आसन
विवरण पृष्ठ ५६

ऐणेय आसन
विवरण पृष्ठ ५६
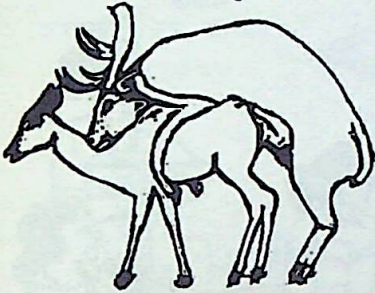
ऐणेय आसन
विवरण पृष्ठ ५६

सङ्घाटक आसन
विवरण पृष्ठ ५७

मार्जारललितक आसन
विवरण पृष्ठ ५६

सङ्घाटक आसन
विवरण पृष्ठ ५७

व्याघ्रावस्कन्द आसन
विवरण पृष्ठ ५६

गोयूथिक आसन
विवरण पृष्ठ ५७
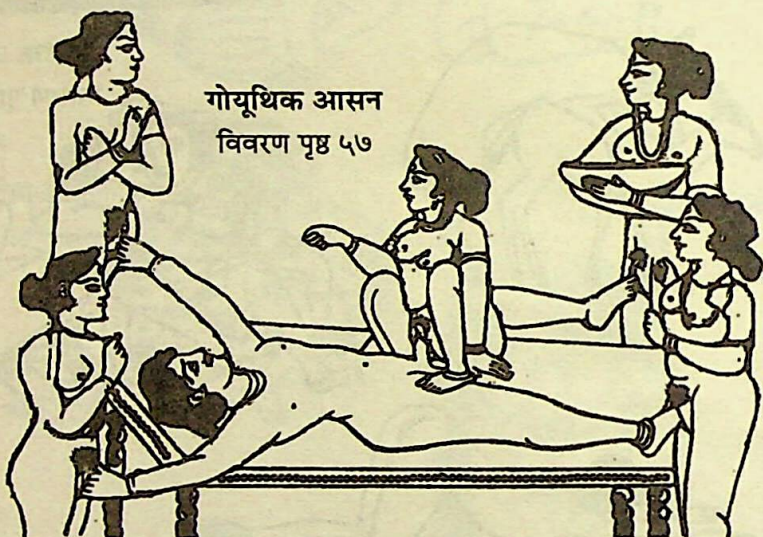
पुरुषायित आसन
विवरण पृष्ठ ००

पुरुषायित आसन
विवरण पृष्ठ ००

वारिक्रीडितक आसन
विवरण पृष्ठ ५७
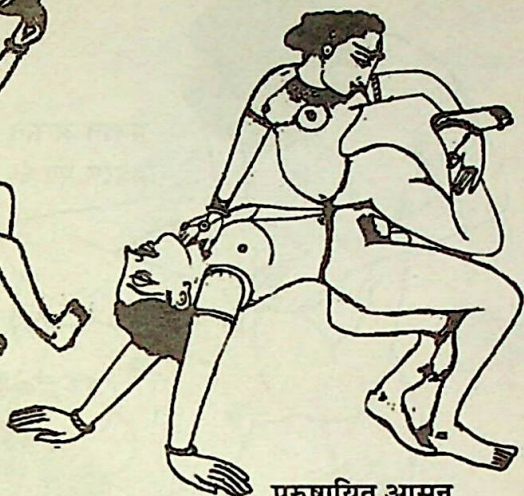
पुरुषायित आसन
विवरण पृष्ठ ६३

पुरुषायित आसन
विवरण पृष्ठ ६३
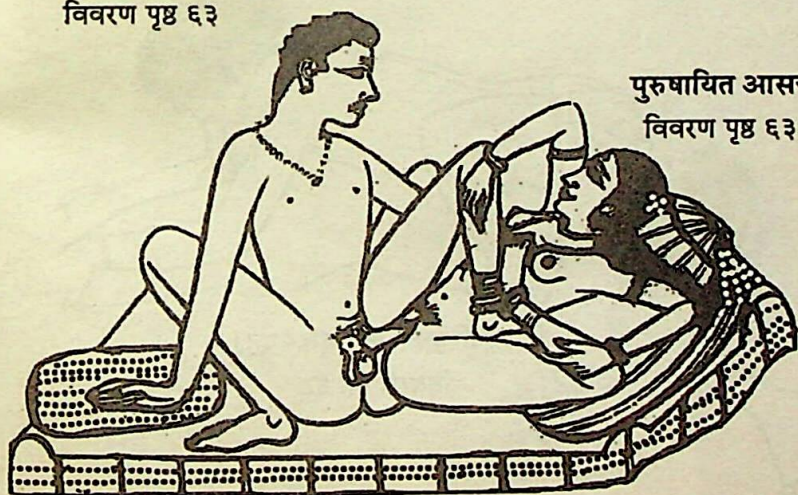
पुरुषायित आसन
विवरण पृष्ठ ६३

मन्थन आसन
विवरण पृष्ठ ६५
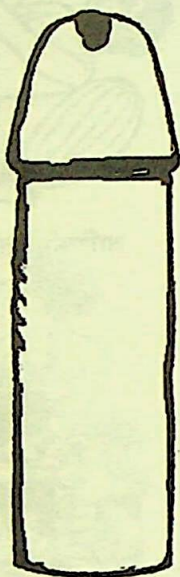
अपद्रव्य
विवरण पृष्ठ १९८

औपरिष्टकासन (मुखमैथुन)
विवरण पृष्ठ ६८

अवमर्दनासन
विवरण पृष्ठ ५६

कच्छपासन
विवरण पृष्ठ ५६

गजोपमर्दितासन
विवरण पृष्ठ ५६

उत्पीडितक आसन
विवरण पृष्ठ ५५

स्थितरत आसन
विवरण पृष्ठ ५६

प्रेङ्खोलित आसन
विवरण पृष्ठ ६६
औपरिष्टकासन
विवरण पृष्ठ ६८
उपसृप्तक आसन
विवरण पृष्ठ ६५
कार्कटक आसन
विवरण पृष्ठ ५५

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

फोन : ३३३४५८

अपरञ्च पुस्तक-प्राप्तिस्थानम्

(सहयोगी संस्था)

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन, गोलघर (मैदागिन) के पास

पो. बा. नं. १००८, वाराणसी-२२१ ००१ (भारत)

E-mail : cssoffice@satyam.net.in